[स]हजानन्द शास्त्रमाला

परमात्म प्रकाश प्रवचन

(प्रथम भाग)

प्रवक्ता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्त न्याय साहित्यशास्त्री

पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशकीय

प्रस्तुत ग्रन्थ महाराज श्री सहजानन्द जी, द्वारा श्री योगीन्दु आचार्य प्रणीत "परमात्म प्रकाश" नामक रचना पर प्रवचनो का सग्रह है।

गुरुवर्य्य ने कहा है कि "इस ही निज निज आत्मा मे परमात्व अनादि सिद्ध है। इसका परिज्ञान न होने से आत्मा ने अनेक कष्टो को भोगा है। परमात्म स्वरूप के अवलोकन से समस्त आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं।"

मूल रचना प्राकृत मे है। उस पर गहन गम्भीर परन्तु बोधगम्य प्रवचन करना महाराज सहजानन्द जी के ही वश था।

प्रवचनो के पढने से धर्मप्रेमी व्यक्तियो का कल्याण हो इस भावना के साथ ही यह परमात्म प्रकाश प्रवचन का प्रकाशन किया गया है। विश्वास है हमारा प्रयास सफल होगा।

हितैषी
मन्त्री
सहजानन्द शास्त्रमाला

सदर, मेरठ।

परमात्मप्रकाश प्रवचन

— प्रवक्ता —

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ

[पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज]

—(★)—

ॐ नम सिद्धेभ्य । ॐकार विन्दुसयुक्त नित्य ध्यायन्ति योगिन । कामद मोक्षद चैव ॐकाराय नमो नम अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का । मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ।। अज्ञान-तिमिरान्धाना ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नम । परमगुरवे नम परम्पराचार्यगुरुभ्यो नम सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसा परिवर्द्धक धर्मं सम्बन्धक भव्यजीवमन प्रतिबोधकारकमिद शास्त्र श्री परमात्म-प्रकाशनामधेय, अस्य मूलग्रन्थकर्तार श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तार गणधरदेवा प्रतिगणधरदेवास्तेषा वचोऽनुमार-मासाद्य श्रीमद्योगीन्दुदेवेन विरचितम् ।।

मगल भगवान् वीरो मगल गौतमो गणी । मगल कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मगल ।। श्रोतार सावधा-नतया शृण्वन्तु । सर्वमगलमागल्य सवकल्याणकारक । प्रधान सर्वधर्माणा जैन जयतु शासनम् ।

—(★)—

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने,

परमात्मप्रकाशाय नित्य सिद्धात्मने नम ।

यह ग्रन्थ परमात्मप्रकाश है इसमे परमात्माका स्वरूप दिखाया है। यह दर्शन अध्यात्मदृष्टिसे होता है, सो सहज आनन्द और चैतन्यभावमय निज स्वरूपकी प्राप्तिके कारणभूत सहज अध्यात्मदृष्टिको, जैसा कि आत्म-स्वभाव है उसकी सिद्धिके लिये, मेरा नमस्कार हो। आत्माका स्वरूप सहज आनन्दमय सहज चैतन्यभाव है किन्तु वर्तमानमें ससारी जीवोको उसकी प्राप्ति कठिन हो रही है। इसका कारण यह है कि उन्हे अध्यात्मदृष्टि प्राप्त नही है। स्वस्वरूपकी प्राप्तिका कारण अध्यात्मदृष्टि है। अध्यात्मदृष्टि आवे तो स्वरूपकी प्राप्ति होवे, स्वरूपकी प्राप्ति होवे तो सहज ही आनन्दकी प्राप्ति हो।

इस लोकमे निर्विघ्न सत्य आनन्दका देनेवाला परमात्मस्वरूप ही है। परिवार लोक प्रतिष्ठा, वैभव आदि तो आनन्द क्या हैं, केवल क्लेशके ही कारण होते हैं। इस लोकमे सर्वोत्कृष्ट पदार्थ परमात्स्वरूप ही है। परिवार लोकप्रतिष्ठा, वैभव आदि तो विनाशीक और दु खके कारण होते हैं। परमात्मस्वरूपकी शरण ग्रहण करना

ही हितकर है, परिवार, लोकप्रतिष्ठा, वैभव आदि तो खुद अशरण हैं। इनमे शरणबुद्धि करना ही महान् सकट है।

इस कारण जैसा कि परमात्मस्वरूप (आत्मस्वभाव) है उसकी सिद्धि (प्राप्ति) के लिये अध्यात्म-दृष्टिको सन्मुख करना, अध्यात्मदृष्टिका अवलम्बन लेना परम आवश्यक है।

"परमात्म प्रकाश" ग्रन्थमें श्री पूज्यवर योगीन्दुदेवने इस परमात्मस्वरूपका अच्छा प्रकाश किया है। इसमे व्यक्त परमात्माका वणन नही किया है, किन्तु सब आत्माओमे वतमान सदा अन्त प्रकाशमान अतुल महिमानिधान परमात्मस्वरूपका वणन किया है। ज्ञान और आनन्दका पुञ्ज यह आत्मा है। इस ही निज निज आत्मामे परमात्मत्व अनादिसिद्ध है। इसका परिज्ञान न होनेसे आत्माने अनेक कष्टोको भोगा है। परमात्मस्वरूपके अवलोकनसे समस्त आपदायें नष्ट हो जाती हैं। अत जीवोके सुखके लिये परमात्मस्वरूपका ज्ञान अनिवार्य अत्यावश्यक समझ कर श्री योगीन्दु आचार्य महाराजने परमात्मस्वरूपका प्रकाश करना पूण उपयोगी समझा है और उसी उद्यमके प्रारम्भमे यह मगलाचरण किया है—

जे जाया झाणग्गियए कम्मकलक डहेवि।
णिच्च णिरजण णाणमय ते परमप्प णवेवि ॥१॥

जो ध्यानरूपी अग्निके द्वारा कमकलकका जलाकर नित्य निरञ्जन ज्ञानमय हुए हैं उन परमात्माको नमस्कार करके (आगेके दोहासे सम्बन्ध है कि श्री सिद्धगणको नमस्कार करता हू)। यहां जैसा निज परमात्मतत्त्वका शक्तिरूप स्वरूप है, स्वभाव है वैसा जिनका पूर्ण विकास हो गया है उन परमात्माको नमस्कार किया है। जैसा अपनेको बनना है वैसे स्वरूपका ध्यान किये बिना मार्ग स्पष्ट नही होता है। जो जैसा होना चाहता है वह वैसेको ही उपासना करता है। तथा अपने आपमें विराजमान नित्य निरञ्जन ज्ञानमय परमात्मस्वभावका स्मरण शुद्ध-विकासमय परमात्माके स्मरणसे होता है। इस कारण यहा परमात्माको नमस्कार किया है। जो कारणपरमात्मा कार्यपरमात्मा बन गये हैं उन्हें यहां नमस्कार किया है।

कारणपरमात्मा तो हम सब जीव हैं, क्योकि इस जीवका स्वभाव ही आवरणरहित होकर परमात्माके रूपमे प्रकट होता है। कोई नवीन चीज (सत्) परमात्मा नही होता अभी हम सब आत्मा कारणरूप परमात्मा हैं अर्थात् परमात्मा बननेके उपादान कारण हैं। अथवा हम सब परमात्मत्वस्वभावरूप हैं, परमात्मशक्तिरूप है, यदि हम परमात्मस्वभावी न हों तो कभी भी परमात्मत्व मुझमें प्रकट नही हो सकेगा। ऐसी ही बात सब आत्माओकी बनेगी। सो परमात्माके अभावका प्रसग हो जायगा, इस कारण यह पूर्ण नि सन्देह बात है कि हम सब कारण-परमात्मा हैं। एक कारण परमात्मा पर्यायरूप भी है कि जिस पर्यायके बाद सकल परमात्मा हो जाते हैं वह कारण-परमात्मा बारहवें गुणस्थानमे कहा जाता है। उसकी अभी यहा चर्चा नही की जा रही है, किन्तु द्रव्यदृष्टिके कारण परमात्माकी बात कही जा रही है, जो कि अनाद्यनन्त चित्स्वभावमय है।

कार्यपरमात्मा उन्हें कहते हैं जिनका ज्ञान अनन्त ज्ञान है जो समस्त लोक (विश्व) व अलोकको प्रत्यक्ष जानता है, जिनका दर्शन है, जिनका आनन्द अनन्त आनन्द है, जिनकी शक्ति अनन्त शक्ति है। ऐसे ही अनन्त ज्ञान दर्शन आनन्द शक्ति रूप अपना स्वभाव है। इस अनन्त स्वभावके विकासको रोकनेवाला साक्षात् आवरण तो राग द्वेष मोह भाव है और निमित्तभूत आवरण ज्ञानावरणादि कर्म हैं। सो राग द्वेश मोह भाव व ज्ञानावरणादि कर्मोंके दूर होते ही यह आत्मा कार्यपरमात्मा हो जाता है जैसे कि सूयकी किरण प्रभा तो अतुल सामथ्यवाली है, परन्तु मेघपटलका आवरण होनेसे उसका विकाश रुका हुआ है, ज्यो ही मेघपटल दूर हो जाता है त्यो ही वह सूर्य-प्रभा अतुल विकसित हो जाती है।

लोकमे भी ऐसी प्रसिद्धि है कि परमात्मा घट-घटमे रहता है अर्थात् प्रत्येक देहोमे बसता है। सो इन देहों आत्माओसे भिन्न कोई एक परमात्मा इन देहोमे नही बस रहा है, क्योकि यदि ऐसा कोई एक इन देहोमे बस रहा होवे तो प्रथक् प्रथक् देहोके बीचमे अन्तराल होनेसे परमात्मा खण्ड खण्ड रूपमे हो जायेगा। ये आत्मा (देहो) ही परमात्मस्वभावको रख रहे हैं यह परमात्मस्वभाव हम सबमे शक्तिरूपसे है, व्यक्तिरूप (पर्यायरूप) से तो हम सब ससारी दुखी हैं। फिर भी जो महात्मा अपनेमे अनादिसिद्ध बसे हुए शक्तिरूप परमात्मतत्त्वका दर्शन अर्न्तज्ञानसे कर लेते हैं वे आनन्दमग्न हो जाते हैं। ऐसा परमात्मा हम सबमे, घट घटमे रहता है। उसके दर्शनका उपाय अन्तर्ज्ञान है। इसका वर्णन इस ग्रन्थमे विस्तृत किया है। सो इस ग्रन्थका स्वाध्याय प्रमादरहित होकर रुचि-पूर्वक करना चाहिए। अन्तर्ज्ञानसे ही सत्य आनन्दकी प्राप्ति होगी। यहा पुत्र, मित्र, बन्धु, स्त्री, वैभव, इज्जत आदि जिन जिन चीजोका सयोग हुआ है उनका वियोग नियमसे होगा अत इन समागमोमे आसक्त नही होना और ध्रुव, सहज स्वभाव रूप निज परमात्मज्योतिके दर्शन करनेके लिये अन्तर्ज्ञानकी प्राप्तिमे उद्यम करना मुमुक्षुका मुख्य कर्तव्य है।

जैसे धातुपाषाणमे (स्वर्णपाषाणमे) सुवर्णको आखोंसे देखो तो नही मिलेगा, हाथोसे बटोरना चाहो तो सुवर्ण नही बटोरा जा सकता, किन्तु औषधि, अग्नि ताप आदि उपाय करनेसे जब उसमेसे परवस्तुका सयोग दूर हो जाता है तब उसमेसे स्वर्ण प्रकट हो जाता है और धातु पाषाणके समय भी विवेचक यन्त्रो द्वारा सुवर्णत्व अश समझना चाहो तो समझा जा सकता है। इसी प्रकार हम सब कारण परमात्माओमे परमात्माको किसी इन्द्रियसे जानना चाहो या ग्रहण करना चाहो तो न जाना जा सकता है और न ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु ज्ञान, श्रद्धान, ध्यान समाधिके उपाय बननेसे जब पर वस्तु व परभावका सयोग दूर हो जाता है तब कारणपरमात्मा (आत्मा) मे से कार्य परमात्मा प्रकट हो जाता है अर्थात् यह आत्मा परमात्मा बन जाता है और इससमय भी विवे-चक अन्तर्ज्ञान द्वारा समझना चाहो तो यह परमात्मस्वरूप समझा जा सकता है।

जैसे स्वर्णपाषाणमे स्वर्णत्व शक्ति है तभी स्वर्णपाषाणमेसे सुवर्ण प्रकट होता है इस प्रकार हम सब आत्माओमे परमात्मत्वशक्ति है तभी हममेसे परमात्मत्व प्रकट हो सकता है। परमात्मा कहते किसे हैं? जिस आत्मा मे गुण तो परिपूर्ण विकसित हो गये हो और दोष लेश भी न हो वह परम आत्मा अर्थात् परमात्मा है। देखो—जीवोमे से किसीमें रागद्वेष आदि दोष कम है, किसीमे और कम है, किसीमे और कम है तो इससे साबित होता है कि किसीमे दोष बिलकुल भी नही रहते। और देखो—जीवोमे से किसीमे ज्ञान अधिक है किसीमे ज्ञान और अधिक है, किसीमे और अधिक है तो इससे साबित होता है कि किसीमें ज्ञान परिपूर्ण भी है। देखो—दोष तो हैं औपाधिक याने कर्मके उदयसे होनेवाले, अत उसकी तो हानि हानि होकर बिलकुल अभाव होता है और ज्ञान है स्वाभाविक, अत उसकी वृद्धि होकर बिलकुल परिपूर्णता हो जाती है। इसका कारण यह है कि किसी द्रव्यके शुद्ध (केवल) रह जानेपर औपाधिक भाव नष्ट हो जाते हैं और स्वाभाविक भाव परिपूर्ण हो जाते हैं। इस प्रकार जो गुणोसे परिपूर्ण है और दोषोसे रहित है वही परमात्मा है। ऐसा परमात्मस्वभाव हम सबमे है इसी नाते परमात्माकी भक्तिकी जाती है। परमात्माके गुणोमे अनुराग करनेसे आत्मशक्तिका अनुभव होता है और विकास होता है। परमात्मा सहज पूर्ण ज्ञान और सहज पूर्ण आनन्दमे मग्न हैं। भक्तजन उनकी उपासना करके अपने ही स्वयका सहज ज्ञान और आनन्दका विकास स्वय कर लेते हैं।

इस ससारी जीवके साथ अनादि परम्परासे चले आये हुए पौद्गलिक कर्म-प्रकृतिका बन्धन है और इसी प्रकृतिको निमित्त मात्र करके कषाय, सकल्प, विकल्प रूप, भावकर्मका बधन है। ये दोनो प्रकारके बन्धन

परमात्मस्वभावके ध्यान रूपी अग्निसे भस्म हो जाते हैं। इनमेसे भावकर्मका बन्धन तो उस प्रकारकी आत्मपरिणति का व्यय होनेसे नष्ट हुआ समझना। द्रव्यकर्मका बन्धन पुद्गल पिण्डमे कमत्व पर्यायका व्यय होनेसे नष्ट हुआ समझना। आत्माके शुद्ध परिणामको निमित्त पाकर अथवा भावकर्मके व्ययको निमित्त पाकर द्रव्यकर्मका बन्धन नष्ट हुआ है। इसकारण द्रव्यकर्मका भस्म होना उपचारसे (उपचरित असद्भूत व्यवहारसे) कहा जाता है और भावकर्म का भस्म होना निश्चयसे (अशुद्धनिश्चय नयसे) कहा जाता है। शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमे बन्ध व मोक्ष हैं ही नहीं कारण कि शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमें वस्तु सनातनस्वभावमात्र दीखती है।

जो महात्मा भावकर्म और द्रव्यकर्मरूपी कलङ्कोको ध्यानरूपी अग्निके द्वारा जला करके नित्य निरञ्जन ज्ञानमय हुए हैं ऐसे परमात्माको नमस्कार किया जा रहा है। वस्तुत कोई किसी अन्यको नमस्कार नही कर सकता, भक्त अपने ज्ञानपरिणमनरूप अपने कार्यमे उस प्रकार परिणत हो रहा है। प्रभुस्वरूपका यथार्थ भावनमस्कार इसी निजमें अभेद रूप होता है। नमस्कार होओ। यह ध्यानरूप अग्नि अन्य कुछ नही परमात्मस्वरूपका अभेद स्मरण है। परमात्मस्वरूपके अभेद स्मरणमें, अभेदानुभावमे ऐसी अतुल शक्ति है कि तब भावकर्मका विलय तो होता ही है किन्तु उसको निमित्त मात्र पाकर द्रव्यकर्मका भी विलय हो जाता है। इस प्रसगमे ध्यानके चार भेद समझ लेना चाहिये—(१) पदस्थ, (२) पिण्डस्थ, (३) रूपस्थ, (४) रूपातीत। मन्त्रवाक्योमे तो पदस्थ ध्यान होता है, निज आत्माके चिन्तवनमे पिण्डस्थ ध्यान होता है, सकल परमात्माकी विषय करके शुद्ध चिद्रूपके ध्यानमे रूपस्थ ध्यान होता है और निरञ्जन शुद्ध, केवल, सिद्धस्वरूपके ध्यानमे रूपातीत ध्यान होता है।

परमात्मस्वरूपका अभेदस्मरण उत्कृष्ट पिडस्थ ध्यानमे होता है, उसका कारण रूपातीत ध्यान हो सकता है, उसका कारण रूपस्थ ध्यान हो सकता है, उसका कारण पदस्थ ध्यान हो सकता है। पिण्डस्थध्यानमे पार्थवी आग्नेयी मारुती व पायमी धारणायें होती है जिनका विवरण प्रसगवश आगे किये जानेका ख्याल है वे धारणायें यद्यपि एक साधन हैं तथापि व परमात्मस्वरूपके अभेदस्मरणरूप ध्यान नही हैं। वर्तमानमे देह देवालयमे स्थित अभेद चित्स्वभावमात्र निज चित्पिण्डका अभेदानुभव ही परमात्मस्वरूपका अभेदानुभव है और यही उत्कृष्ट पिण्डस्थ ध्यान है। अथवा निज शुद्ध आत्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान अनुष्ठान (रत होना) रूप जो अभेदरत्नत्रय, तदात्मक जो निर्विकल्प समाधि उससे उत्पन्न हुआ जो निर्दोष सहज परम आनन्द उसका अनुभव वर्तना ही परम ध्यान है। इस ध्यानके द्वारा जो नित्य, निरञ्जन, ज्ञानमय हुए हैं ऐसे परमात्माको मेरा नमस्कार हो।

परमात्मा नित्य है, परमात्म द्रव्य नित्य है। कुछ न था और परमात्मा हो गया हो ऐसा नही है। परमात्मा होकर वह नष्ट हो जाय ऐसा नही है। प्रत्येक द्रव्य स्वत सिद्ध है अत एव नित्य है। चित्स्वरूप द्रव्य नित्य है। परमात्मा नित्य है, वही द्रव्य परमात्मपनको प्राप्त हुआ है अत नित्य है। परमात्मा नित्य है, परमात्मा द्रव्य नित्य है। यद्यपि सूक्ष्म दृष्टिसे देखो तो परमात्मपरिणति प्रतिक्षण नवीन-नवीन समान समान हो रही है तथापि यह असदिग्ध है (इसमे कोई सदेह नही हैं) कि इसी प्रकार समान समान शुद्ध परिणमन, एकस्वरूप परिणमन सदा काल (अनन्तकाल) तक चलता ही रहेगा। अत परमात्मा नित्य है।

परमात्मा निरञ्जन है। कर्म, रागादिदोष, शरीर और विस्रसा उपचित (स्वय इकट्ठा होकर आत्मा के साथ रहने वाला स्कन्ध) स्कन्ध आदि किसी भी परद्रव्य व परभावका सपर्क नही है और न भविष्यमे कभी सपर्क हो सकता। अत परमात्मा निरञ्जन है। इस भयसे कि ससारके आत्माओमे से शुद्ध मुक्त होकर परमात्मा बनते जावेंगे तो कभी ससार खाली हो जायेगा मुक्तको फिर किसीके द्वारा कर्माञ्जन लगवा देनेकी कल्पना करना योग्य नही है। यह भय नही करना चाहिये कि ससार खाली हो जायेगा और खुदको ससारकी प्रीति छोड देना चाहिये।

ससारमे जीव अनन्तानन्त हैं। अनन्त उसे कहते है कि जिसमेसे अनन्त भी निकाल दिये जावें तब भी अनन्त शेष रहते है। अनन्तको और अनन्तकी इस व्याख्याको सभीने माना है। इस लोकमें अनन्तानन्त जीव तो सूक्ष्म शरीर वाले हैं। एक एक शरीरके आश्रय अनन्त जीव हैं ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं, फिर स्थूल (किन्तु अदृश्य) शरीर वाले भी ऐसे ही प्रकारके अनन्तानन्त जीव है। फिर व्यवहारमे आनेवाले जीव भी असख्यतासख्यातो हैं। इन सब जीवोमेसे जिन जीवोका भवितव्य उत्तम है ऐसे अनन्तो आत्मा परमात्मा हो गये हैं और होते रहेगे फिर भी सदा अनन्तानन्त जीव ससारमे रहेगे। इसका स्थूल व प्रबल प्रमाण यही है कि अनादिकालसे अब तक मुक्त होते आये हैं फिर भी जगतमे अनन्तानन्त आत्मा हैं। मुक्त शुद्ध आत्मामे अपराध बिना कर्माञ्जन लग जाय यह तो नीति, न्यायके विरुद्ध बात है और फिर परमात्मापर (मुक्त जीवपर) ऐसा अन्याय हो जाय, यह तो किसी विवेकीके चित्तमे जमना कठिन है। परमात्मा निरञ्जन हैं, सर्व प्रकारसे निरञ्जन हैं।

परमात्मा ज्ञानमय है। आत्मद्रव्य ज्ञानस्वभाव ही है। ज्ञान आत्माका अभिन्न स्वरूप है। मलिन अवस्थामे ज्ञानका जो अपूर्ण, अस्थिर विकास है और साथ ही रागद्वेष होने वाला संकल्प विकल्प है उसे दु खका हेतु देखकर-ज्ञान ही दु खका कारण है और वह नष्ट हो जाने वाला है ऐसा आशय रखकर मुक्त जीवको ज्ञानरहित मानना स्वभावका घात करना है। ऐसा है ही नही। प्रत्युत बात यह है कि जैसे आवरण व दोष हटते जाते है वैसे-वैसे ही ज्ञानादिस्वभावोका विकास वृद्धिगत होता जाता है। परमात्माका तो ज्ञान त्रिकाल त्रिलोकवर्ती सव द्रव्य, पर्यायको जानता है। परमात्मा ज्ञानमय है परिपूर्ण ज्ञानमय है, अनन्तज्ञानमय हैं, केवल ज्ञानमय हैं, सर्वज्ञ हैं।

जो आत्मा ध्यानाग्निके द्वारा कर्मकलङ्कोको जलाकर निरजन ज्ञानमय हुए हैं उन परमात्माको नमस्कार होओ। नमस्कार नम जानेको, उपासना करना या शरण ग्रहण करना नमस्कार। नमस्कार निश्चयसे तो परमात्माके केवलज्ञानादि अनन्त गुणोका स्मरणरूप होता है। क्योकि उपासक निश्चयसे अपना ही तो कोई परिणमन बनावेगा, पर पदार्थका तो कुछ किया भी नही जा सकता। इस नमस्कारको भावनमस्कार कहते हैं। इसमे भी क्रिया कारकका सम्बन्ध आगया अत यह भावनमस्कार शुद्धनिश्चयनयसे कहा जा सकता। सशरीर अथवा अशरीर जो परमात्मा हैं उनको वचनो द्वारा नमस्कार करना अथवा सिर झुकाकर करना व मनके विकल्पोसे नमस्कार करना आदि सब द्रव्यनमस्कार हैं। द्रव्यनमस्कार व्यवहारनयसे होता है क्योकि यहाँ एक ही पदार्थकी चर्चा न रही, भक्त और परमात्मा ऐसे दो आत्मपदार्थोंमे क्रियाकारकसम्बन्ध हो रहा, किन्तु यह व्यवहारनमस्कार भी ग्राह्य व्यवहार है। वस्तुतः तो वहा भी उपासक अपना ही परिणमन कर रहा है। शुद्धनिश्चयनयसे उपासक व परमात्माका न तो सम्बन्ध है और न उपासकके परिणामोको (शुद्ध न होनेसे) शुद्धनिश्चयनय विषय करता है। अत शुद्धनिश्चयनयसे वन्द्यवन्दकभाव नही बनता। तथा परमशुद्धनिश्चयनयसे तो वन्द्यवन्दक भाव है ही नही। परमशुद्धनिश्चयनय तो अखड निर्विकल्प, सनातन, केवल ध्रुवस्वभावको या स्वभावमय वस्तुको विषय करता है।

इस मगलाचरणके पदोका अर्थ तो स्पष्ट ही है। वाक्योमे पदोके अर्थ तो होते हैं, किन्तु महापुरुषोंके वाक्योमे चार प्रकारके अर्थ और होते हैं—(१) नयार्थ (२) मतार्थ (३) आगमार्थ (४) भावार्थ। (१) नयार्थ—नय की दृष्टियो द्वारा विभागपूर्वक अर्थ करनेको नयार्थ कहते हैं। (२) मतार्थ—विधि या निषेधरूपसे अन्य मतोका स्वरूप प्रगट कर देनेको मतार्थ कहते हैं। (३) आगममे, सिद्धातमे कहे हुए आशयको प्रगट करनेको आगमार्थ कहते हैं। (४) उसमे ग्रहण करने योग्य क्या शिक्षा मिलती है, उसे भावार्थ कहते हैं।

इस मगलाचरणमे नयार्थ किस प्रकार हुआ है सो कुछ प्रकट ही कर चुके हैं फिर भी उसके विवरणके यत्नमे प्रकारमे प्रायोजनिक नयोका विवरण करते हैं—यहा नय ४ प्रकारसे जानना—(१) व्यवहारनय, (२) अशुद्ध-निश्चयनय, (३) शुद्धनिश्चयनय, (४) परमशुद्धनिश्चयनय। दो या दो से अधिक पदार्थोंका परस्परमे सम्बन्ध बताना

क्रियाकारक भाव लगाना सो व्यवहारनय है। एक ही पदार्थके स्वरूपका अवगम करना निश्चयनय हैं उसमें जब अशुद्धपर्यायिरूपसे अर्थात् किसी विकल्प भावसे अवगम होता है तब उसे अशुद्धनिश्चयनय कहते हैं, जब शुद्धपर्यायरूप से अर्थात् निरुपाधि शुद्धपरिणमनरूपसे अवगम होता है उसे शुद्धनिश्चयनय कहते हैं, जब गुण पर्यायका भेद ही न करके केवल एक स्वभाव अथवा स्वभावमात्र वस्तुका अवगम होता है तब उसे परम शुद्धनिश्चयनय कहते हैं। तीनो प्रकारके निश्चयनयोमे एक ही वस्तुके स्वरूपका अवगम है अत पद्धतिभेदसे तीन प्रकारके होकर भी वे सब निश्चयनय ही हैं।

इस मगलाचरणमे नयार्थ दो जगह प्रकट हुये हैं एक तो कमकलकके दहनके प्रसगमे और दूसरे परमात्माके नमस्कार प्रसगमे। द्रव्यकर्मका दहन व्यवहारनयसे है और भावकर्मका दहन अशुद्धनिश्चयनयसे है शुद्ध निश्चयनयकी विषयभूत परिणति शुद्धपरिणति है उसमे दहनका काम ही नही, और परमशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमें स्वभावमात्र वस्तु है उसमे बन्ध मोक्ष दोनो ही नहीं है। दूसरा प्रसग है नमस्कारका—नमस्कार दो प्रकारके कहे गए हैं—(१) द्रव्यनमस्कार (२) भावनमस्कार। द्रव्यनमस्कारमे तो भक्त व परमात्मा दो पदार्थोंका क्रियाकारक सम्बन्ध व्यवहृत हो रहा है, अत द्रव्यनस्कार तो व्यवहारनयसे है और भावनमस्कार उपासककी केवलज्ञानादि अनन्त गुणोकी स्मृतिरूप परिणति है सो भावनमस्कार अशुद्धनयसे है। शुद्धनिश्चयनयकी विषयभूत परिणति (शुद्धपरिणति) उपासकमे नही है, अन्यथा अर्थात् यदि उपासकमे शुद्धपरिणति हो तो वही परमात्मा हो गया, उपासक कहां रहा। शुद्धनिश्चयनयसे इसी कारण वन्द्यवन्दकभाव नही है। परमशुद्ध निश्चयनयमे तो स्वभावमात्र वस्तु है अत वह तो बन्द्यवन्दकभाव असभव ही है। इसतरह नयोकी दृष्टियोसे दहन और नमस्कारका विभागपूर्वक अर्थ खोला गया है।

अब इस मगलाचरणमे मतार्थ किस तरह प्रकट हुआ है इसका विवरण करते हैं—परमात्मा नित्य है इस विषयमे क्षणिकवादका यह आशय है कि सब कुछ अनित्य ही है सो परमात्मा भी अनित्य है। परन्तु ऐसा यदि क्षण क्षणवर्ती पर्यायको ही माना जावे तब तो ठीक है क्योकि पर्यायार्थिक नयसे प्रति क्षण नवीन-नवीन पर्याय उत्पन्न होती है। परमात्मामें यद्यपि वैसा ही वैसा परिणमन चलता रहता है तो भी है तो प्रतिक्षणका नवीन-नवीन परिणमन। सो पर्यायार्थिक नयकी विवक्षामे तो क्षणिकवादका आशय ठीक है, किन्तु द्रव्यको ही क्षणिक मान लिया जाय, यह तो ठीक नहीं है। परमात्मा व परमद्रव्य द्रव्यदृष्टिसे नित्य ही है। परमात्मा निरजन हैं, इस विषयमे कर्तृत्ववादका यह आशय है कि एक सदामुक्त ईश्वर अन्य मुक्तात्माको भी सैकडो कल्प बीत जानेपर कर्माजन लगा-कर ससारमे गिरा देता है, इससे परमात्मा साजन हो जाता है, परन्तु यदि कर्तृत्ववादसे परे होकर भूतनैगमनयकी अपेक्षासे परमात्माको साजन कह दिया जाय तब तो ठीक है, क्योकि भूतनैगमनयसे देखा जाय तो परमात्मा पहिले ससार अवस्थामें सकर्मा ही तो थे, साजन ही तो थे, सो भूतार्थनैगमनयके कथनमे साजनता तो ठीक है, किन्तु बिना अपराध परमात्माको कोई कर्माजन लगादे, साजन बनादे, यह ठीक नही है। परमात्मा सदाकाल तक निरजन ही है। परमात्मा ज्ञानमय, इस सम्बन्धमे प्रकृतिवादका यह आशय है कि आत्माका स्वरूप मात्र चैतन्य है, ज्ञान नही, ज्ञान तो प्रकृतिका विकार है सो प्रकृतिसे मुक्त हो जानेसे परमात्माको सुप्तावस्थाका तरह ज्ञेयपदार्थोंका ज्ञान नही रहता, परन्तु ऐसा यदि क्षायोपाशमिक (ज्ञानावरण प्रकृतिके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए) ज्ञानका अर्थात अधूरे विभाव ज्ञानका अभाव हो जाता है इतना ही समझें तब तो ठीक है, क्योकि परमात्माके समस्त ज्ञानावरण प्रकृतिका क्षय हो जानेसे अधूरा ज्ञान अर्थात् विभावज्ञान नही रहता। सो विभावज्ञानके अभावकी दृष्टिसे यह बात ठीक है, परन्तु कोई ज्ञान स्वभाव ही का अभाव माने तो वह ठीक नही है। ज्ञानस्वभावरहित आत्मा क्या ? ज्ञानस्वभावरहित चेतना क्या ? परमात्माके अधूरा औपाधिक विभावज्ञान नही रहता, किन्तु परिपूर्ण निराबाध अनन्त ज्ञान होता है।

इस प्रकार परमात्मा ज्ञानमय है। इस तरह परमात्माके तीन विशेषणोमे मतार्थ प्रकट किया गया है।

अब इस मगलाचरणमे आगमार्थ क्या है इसका विवरण करते हैं—सिद्धान्तमे यह बताया गया है कि परमात्मा कर्मकलकसे मुक्त, नत्य, निरजन, अनन्तज्ञानमय आदि होते हैं वही बातें यहा प्रकटकी गई है सो यह आगमार्थ हुआ।

इस मगलाचरणमे भावार्थ क्या प्रकाशित है इस बातको देखिये—अनित्य साजन, अज्ञानपरिणमन उपादेय नहीं हैं वह तो अशुद्ध स्वरूप है, क्लेशका कारण है। किन्तु नित्य निरजन ज्ञानमय स्वरूप निज परमात्मद्रव्य उपादेय है। कल्याणके इच्छुक पुरुषोको इस परमात्मद्रव्यकी निष्काम उपासना करना चाहिये। यह इस मगलाचरणके दोहा का भावार्थ हुआ।

भैया ? हम सब ज्ञानस्वरूप हैं ? परमात्मा भी ज्ञानस्वरूप है। यदि हम अन्य झझट न रखकर मात्र ज्ञानसे ज्ञानके स्वरूपको जानने चलें तो हमे ज्ञानमय परमात्मतत्त्वकी प्रसिद्धि हो सकती है। इस परमात्मतत्त्वके अनुभवका उपाय ज्ञान द्वारा ज्ञानका अनुभव करना है। यह ज्ञानवृत्ति श्रुतज्ञानकी शक्तिसे शक्त और मतिज्ञानकी वृत्तिमे प्रवृत्त होती है।

इन्द्रिय व मनसे जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं तथा पश्चात् लिखने पढने विचारने आदिसे जो उसी पदार्थमे मतिज्ञानसे विशिष्ट ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। केवल ज्ञान जितने विषयको जानता है उतना ही विषय श्रुतज्ञानका भी है, किन्तु अन्तर केवल इतना है कि श्रुतज्ञान तो परोक्षको जानता है, किन्तु केवल ज्ञान प्रत्यक्ष सर्व, द्रव्य, गुण, पर्यायोको जानता है।

यथार्थ ज्ञान जिसमे प्रकट है, वह अवसर मिलनेपर वैराग्यको प्राप्त हो मुक्त हो जायगा। अशान्ति समाप्त करनेका उपाय आत्मामे ज्ञानका उपयोग करना है। प्राणीको कभी भी अतिज्ञानका अभिमान नही करना चाहिये। जीव जिस-जिस प्रकार अपने विकारी कर्मोंसे दूर होता जाता है उस प्रकार ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है। निमित्तदृष्टिसे जीवका सबसे बडा शत्रु वह है जिससे वह मोह रखता है। इस प्राणीकी ऐसी विचित्र दशा हैं कि जिससे वह मोह रखे है वह यदि अन्याय या अनीतिका सहारा लिये हुये है तो भी उसीका पक्ष करता है। एक जमाना ऐसा भी था कि यदि अपना ही पुत्र आदि कोई भी अन्याय करता था तो न्यायका अविलम्बन ही किया जाता था विना किसी भेदभावके। किन्तु आजकी दशा अति शोचनीय हो गई है। अत मोहमे पडकर प्राणी स्वय दुर्गतिके कारण वनते हैं। अपने आत्मज्ञानके अतिरिक्त कोई भी ससारसे मुक्ति नही दिला सकता। मुमुक्षुको आत्माके स्वभावको समझते हुए शरीरादिको अपनेसे पृथक समझना चाहिये, जो बाह्य कम हैं उनको करते हुए की स्थितिमे भी आत्माके सहज चैतन्य स्वभावको समझते रहना चाहिये। तथा निर्णय रखना चाहिये कि परिग्रह व ममता ही विपदाके कारण हैं।

यदि प्राणी तीन बातें धारण करें तो उन्हे दुखका कारण दूर करनेमे देर न लगेगी। (१) चैतन्य स्वभाव की प्रतीति। (२) ब्रह्मचर्यका पालन। (३) न्याय व प्रेमका व्यवहार।

कभी भी लोभ आदिमे पडकर अन्याय नही करना चाहिये। सर्वदा सब प्राणियोसे नम्रतासे प्रेममय व्यवहार करना चाहिये इन सब बातोके होते हुये भी कभी भी न तो अपनेको सबसे तुच्छ समझना चाहिये। तथा न अपनेको सबसे, विलक्षण न बडा समझना चाहिये। थोडा ज्ञान होनेपर ही प्राणी अपनेको बहुत बडा समझने लगता है, किन्तु जैसे-जैसे वह ज्ञान प्राप्त करता जाता है वैसे ही वह अनुभूति करता है कि इतने विशाल ज्ञानके समक्ष मेरा ज्ञान बहुत ही कम है। ससारमे यदि प्राणीका सबसे बडा शत्रु है तो वह मोह माया है। भैया! बुद्धिका अहकार

न करके विकल्मष निर्विकल्प परमात्मतत्त्वके दर्शनकी उत्सुकता रखकर इस ग्रन्थमे दिये गये महर्षिके उपदेशोंका हम चिन्तन करें।

जगतमे शान्ति केवल अपने आपमें प्रवेश करना ही है। अन्य कोई उपाय नहीं है। अपने आपमे प्रवेश करनेका वाह्य पदार्थोंमे हटनेका उपाय अपने स्वभावके विपरीत जो वाह्य हैं उनसे दूर रहना है। जगतके वाह्य द्रव्य अन्य हैं, चतुष्टयकी अपेक्षापूर्ण है। सो पुद्गल, धर्म-अधर्म आकाश काल व विभावोसे हटना अपने स्वभावमें प्रवेश करना चाहिये। देखो—आत्मा जो भी कुछ करता है, अपनेमे अपने द्वारा अपने लिये ही करता है। वाह्य पदार्थ तो निमित्तमात्र हैं। उपादानका कार्य परिणमना है। मेरा लक्षण है ज्ञान-दर्शन। ज्ञान-दर्शनकी परिणति जो कुछ करता हू वह सब अपने लिये ही करता हू। मैं पर-पदार्थोंका करने वाला नही हू तथा न कराने वाला ही हू और न अनुमोदन करने वाला हू।

किसी कार्यका प्रयोजन जिसे प्राप्त हो, उसे करानेवाला कहते हैं, "कार्यप्रयोजकत्व हि कारकत्व जैसे नौकरसे कार्य कराना है। अब इसमे नौकरने जो कार्य किया उसका प्रयोजन किसे मिलना है, व्यवहारमे जो होता हो सो बताओ। नौकरने जो कार्य किया उसका प्रयोजन मालिकको मिला इस कारण कहा जाता है कि मालिकने नौकरसे काम कराया। जैसे मालिकने नौकरसे रसोई बनवाई तो रसोईका भोग तो मालिक करेगा, सो मालिकको प्रयोजन मिल जानेसे ऐसा कहा जाता है कि मालिकने नौकरसे काम कराया। यह तो व्यवहारकी बात हुई, परन्तु वहाँ भी वास्तवमे देखो तो नौकरने जो कुछ भी किया उस समस्त कार्यका प्रयोजन नौकरको ही मिलेगा, क्योकि उसकी आकाक्षाए उसी कार्य पर निभर हैं। यदि वह उस कार्यको पूर्ण कर लेगा तो उचित पारिश्रमिक पा लेगा अन्यथा नही। अत नौकरका कार्य करनेसे ही प्रयोजन रखता है। और मालिक उस कार्यमे जैसा अपना भाव बनायेगा वैसा फल उसे प्राप्त होगा मेरेसे वाहर मेरा कार्य पर पदार्थोंमे नही होगा। मेरा परिणमन स्वक्षेत्रसे वाहर परपदार्थोंमे न होगा। उस कार्यका प्रयोजन करनेवालेको ही मिलता है। यह प्राणी सुख, दु ख व आनन्दकी अनुभूति अपने अपने ही कार्योंसे प्राप्त करता है। मैं अपनेमे अपनेसे अपने आपको अपने लिए देखता हू, मैं चेतता हू इसीको चेतना कहते हैं। यह प्राणी अपने आपसे अपनी अनुभूतिका स्मरण करे तो इसके समक्ष सब ऐश्वर्य फीके पडते हैं, क्योकि यह सत्य आनन्दस्वरूप है।

इस जीवने ऊचे ऊचे पद प्राप्त कर सब भोगोको भोगा किन्तु आत्माके आनन्दकी बराबरी कोई नहीं कर सका। अब, इसके समकक्ष सब भोग व ऐश्वर्य व्यर्थ है। मेरा साथ देनेवाला मेरा ही स्वभाव है। परपदार्थमे लगाव दु खका कारण है, इस प्रकार प्राणियोको सर्वदा विचार करना चाहिये। यह मेरा है, यह मेरी पत्नी है, यह पुत्र है इत्यादि परके विषयोमे लगा हुआ अध्यवसाय दु खका कारण है। सारी विपत्तिया इसी स्व परके एकत्वके अध्यवसायपर निभर हैं। यह अध्यवसाय समाप्त हो तो इसके समाप्त होते ही सारी विपत्तिया समाप्त हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि सारी विपत्तिया इसीके पीठ पर रहनेसे जिन्दा हैं। एक बच्चोकी कहानी है कि —

एक जगलमे एक सियार और सियारणीका युगल रहा करता था सियारणीको बच्चा जननेके लिये शेरकी गुफा पसन्द आयी तथा वहा पर उसने बच्चे जने। तब उन्होने विचार किया कि शेरके आने पर बचनेका क्या उपाय है? सियारणीने सलाह दी कि तुम भीतके ऊपर चढकर बैठ जाओ तथा जब शेर आये तब इशारा कर देना। शेरके आने पर उपरोक्त कार्य किया गया। सियारणीने बच्चोको रुला दिया तथा सियारके पूछने पर उत्तर दिया कि इन्हें शेरका मांस चाहिये। शेर यह सुनकर डर गया कि यह कौन मेरा भी मास खाने वाला पैदा हो गया? धीरे-धीरे यह बात शेरोके सामने आयी कि यह कौन हमारे ही घरमे सवाशेर आ गया जिसे हमारा मास चाहिये। वे सब सलाह करने लगे कि जो कुछ बबाल है वह वृक्षपर रहने वाला ही है अत क्यो न हम सब मिलकर उसको

देखें। तब यह समस्या सामने आयी कि उसके पास तक कैसे पहुचा जावे, निर्णय हुआ कि एक दूसरेके ऊपर चढकर उसके पास पहुचनेका रास्ता निकाला जावे, फिर समस्या यह हुई कि सबसे नीचे कौन रहेगा। काफी विचार-विमर्श के पश्चात् निर्णय हुआ कि सबसे नीचे लगडा शेर रहेगा। निर्णयके अनुसार लगडे शेरको सबसे नीचे रखकर एकके ऊपर एक शेर चढकर उस सियार तक पहुचना ही चाहते थे कि इतनेमे सियारणीने बच्चोंको रुला दिया। स्यारने पूछा कि बच्चे क्यो रोते है। स्यारणी बोली कि बच्चे कहते है कि हम लगडे शेरका मास खायेंगे। इस बातको सुनकर लगडा शेर नीचेसे खिसक कर निकल गया तथा सब शेर एकके ऊपर एक गिर गये। इसी प्रकार ज्ञान गुणके प्राप्त हो जाने पर अज्ञानके नष्ट होते ही विषय कषाय, राग, द्वेष अहकारादि भाव स्वय ही खिसक खिसक कर नष्ट हो जावेंगे।

जब कि मैं चैतन्य स्वभाव वाला हू, अन्य कुछ नही, तब इस लोकमे क्या भय है। मैं तो अनादिकालसे प्रकाशमान हू। बाह्य पदार्थमे दृष्टि आने पर शका हो सकती है। किन्तु मैं तो चैतन्य स्वरूप आत्मा हू। एक क्षेत्राव-गाह सम्बन्ध होने पर पुद्गलके निमित्तसे सुख-दुखकी प्रतीति होती है। वस्तुत मैं अपनेमे अपना ही परिणमन करता हू बाह्य ज्ञेयके अनुसार आकार होता है। सो आकारको जाना जाता है। विकल्पकी अपेक्षा व्यवहारमे कहते हैं। जैसे मैने पुस्तकको जाना यह कहा, वहा वस्तुत पुस्तकाकार विकल्प किया। जिस प्रकार दर्पणमे देखकर प्राणी सब कुछ बता देता है, उसी प्रकार मै केवल अपने आपको जानकर सारे विश्वका वर्णन करता हू। मैं अपने आपको केवल अपने द्वारा ही जानता हू। प्रकाश आदिकी अपेक्षामे नही, बल्कि अपने ज्ञान भावके द्वारा जानता हू। पुद्गल मे स्थित इन्द्रियो द्वारा जन्य ज्ञान इन्द्रियो द्वारा होते हुए भी इन्द्रियोंमे नही होता, वह भी ज्ञानसे ही होता है। मैं जानता हू, अपने लिये अपने द्वारा अपनेको अपनेमे जानता हू। जाननेका फल भी आत्माको ही मिला और जानन क्रिया आत्मासे हुई। जैसे वृक्षमे पत्र गिरा। तात्पर्य यह कि स्थिर वस्तुओमे कोई अश वियुक्त हुआ। उसमे अपादान पचम विभक्ति है। मैं चेतना स्वरूप ध्रुवतत्त्व हू। आत्मस्वभाव ध्रुव है। यह मैं तो ध्रुव हू और इसमे होने वाली परिणति एक मिटती है और दूसरी होती है अर्थात् पहली परिणतिसे हटकर नवीन परिणतिमे परिणमन करता हू। जितने भी द्रव्य है उन सबमे परिणमन होता है, बिना परिणमनका कोई द्रव्य नही है। जाननेकी अपेक्षा देखना सूक्ष्म होता है किन्तु व्यवहारमें देखनेकी अपेक्षा जानना सूक्ष्म बताते है। जिसे देखना कहते है वह भी जानना ही है। समस्त वस्तुओंके सामान्य प्रतिभासको देखना कहते हैं। समस्त वस्तुओका सामान्य प्रतिभास समस्त वस्तुओके ज्ञाता के निराकार उपयोगको कहते हैं। ज्ञान और दर्शन मेरे सहज स्वरूप है। अत विचार करना चाहिये कि मेरे प्राण तो ज्ञान दर्शन है उनका उच्छेद कैसे हो सकता है। मुझे जो सुख प्राप्त होगा वह सम्यग्ज्ञानमे ही होगा। इस प्रकार यह प्राणी सम्यग्ज्ञानको प्राप्त होकर बाह्य पदार्थोंसे दूर होता है तथा अपनेमे अपना ज्ञान करता है।

जो सिद्ध भगवान हैं उनसे उत्कृष्ट कोई नही है। तथा जो सिद्धका स्वरूप है वह मेरा भी है। लेकिन हम लोग मोहमे फसकर ससार रूपी समुद्रमे गोते खा रहे हैं। जैसे कि शेर भेडियोके बीच फसकर विस्मयसे भेडिया बन जाता है। वास्तवमे तो आत्मोपलब्धिका नाम ही सम्पदा है तथा उस सम्पदाके समक्ष सब धन, ऐश्वर्य, विभूति, रईसी व्यर्थ है। यह ऐसी रईसी है जिसमे आपत्तिका नाम नही है। [illegible] जो आगे [illegible] आदि [illegible] नमस्कार होवे। ससारके [illegible] नाम सिद्ध होना है, [illegible] करता है, अपितु ससाररूपी समुद्रमे मोह, माया, राग [illegible] दूर होना है। [illegible] हैं वे कैसे [illegible] प्राप्त कर [illegible]

जीव क्या अपने दु खसे छुटकारा पा जाते हैं, नही, उन्हे वहाँ भी एक श्वासमे १८ बार जन्मना और १८ बार मरना होता है। वहाँ पहुँचकर दु खकी कमी हो गयी हो, सो बात नही है। अपने अन्दर जो हमने विकल्पका जाल बुन रक्खा है वह साक्षात् विपदाको देने वाला है तथा वतमानमे भी उससे कोई सुख नही है किन्तु ऐसा पक्का रग प्राणियोके ऊपर चढ गया है कि यह अपनेको, जिस पर्यायमे है उसी रूपमे समझता है।

यह ससार अथाह समुद्र है इससे पार होनेका एक ही माग है, वह यह कि जिस प्रकार ससारको समुद्र बनाया उसी प्रकार निर्विकल्प समता आदि भावोको जहाज बनाकर इसमे पार हो जावो, इससे अन्य कोई उपाय नहीं। ससारसे पार होनेका उपाय है तो बस यही है। प्रत्येक पदाथमे ऐसी दृष्टि होनी चाहिये कि अमुक पदाथमें अमुक गुण हैं, ये ही इसके सवस्व हैं, इसका इससे बाहर कुछ नही, उसी प्रकार मेरा गुण भी मुझमे है मुझसे बाहर मेरा कुछ नही, मैं भी तो एक पदाथ ही हू मेरा गुण भी मुझमे ही है इससे बाहर कुछ नही है। यदि ऐसी धारणा नही बनती तो सवश्रम व्यथ हैं। भाईयो विचार करना चाहिए कि सासारिक विषयोमे फसनेके लिये मैं तो किसीका कोच करु? क्यो किसीसे झूठी अपनी बडाई सुनकर प्रसन्न होऊ। कुछ नहीं, मैं भी तो एक पदाथ हू। मेरा गुण भी मुझमे ही है इससे बाहर कुछ नही है। यदि ऐसी धारणा नही बनती तो सर्व श्रम व्यथ हैं। भाइयो! विचार करना चाहिये कि ससारिक विषयोमे फसनेके लिए मैं क्यो तो किसीका सकोच करु? क्यो किसीसे झूठी अपनी बडाई सुनकर प्रसन्न होऊ और यह बडाई करने वाला भी तो कब नही रहेगा। जो चेतन द्रव्य है उसमे कोई पाप नही है ऐसा विचारकर सब पर समता भाव पैदा करना चाहिये फलस्वरूप अपने अन्दर गुप्त परमात्माके दर्शन होगे यह दर्शन रत्नत्रयका मूल है। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चरित्रके उपायसे जो सिद्ध होगे उन्हे मैं नमस्कार करता हू।

> ते वदे सिरि सिद्धगण होसोहि ज वि अगत।
> सिवमय निरुवमणाणमय परमसमादि भजत ॥२॥

अपनेमें जो अनन्त विपत्तियाँ लगी हुई हैं उन्हें दूर करनेके लिए अपनी आत्मामे अनन्त सिद्धोकी उपासना करो। मैं समस्त सिद्धोको नमस्कार करता हू। अहो अनादिकालमे मोहमायामे फसे रहनेसे मुझमे इतना मल चढ गया है कि उसे धोनेके लिए अनन्ते सिद्धोकी अपनेमे उपासना करना आवश्यक हो गया है। अलकारमे कहा जाता है कि मुक्तिलक्ष्मीका वर बनो। सो मुक्तिको बनाया लक्ष्मी (स्त्रीलिङ्ग) तो दूल्हा बननेके लिए १२ भावनाको बनाओ वाहन तथा सर्व सिद्धोको बनाओ बराती व परीषहजयको बनाओ श्रृङ्गार इस प्रकार इनसे सजकर दूल्हा बन, लक्ष्मीका वरण करो। फिर भी विषय, कषाय-कोध, मान, माया, लोभ आदि बाधा डालने वाले होते हैं सो उसके लिए अपने बराती इतने शक्तिशाली रखो उनकी अधिक उपासना करो कि कोई बाधा न डाल सके। जिनको बराती बनाया वे ही हुए अनन्तेसिद्ध। उनकी उपासनासे फिर कोई आत्महितमे बाधा न डाल सकेगा।

सिद्ध भगवान परम कल्याणमय हैं। ज्ञानानन्दरससे ऐसे लबालब भरे हैं जैसे मिश्रीके डेलेमें सर्वत्र मधुराई भरी है। ये सिद्ध सब प्रदेशोंमे ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण हैं। तथा वे अनुपम हैं। कोई सोचे कि क्या वे इन्द्रकी तरह आनन्दवाले हैं नहीं भैय्या! इन्द्र तो माया विषयवासनामें रत है किन्तु सिद्ध भगवान इन सबसे परे हैं। अत वे सब इन्द्रोसे भी अधिक सुखवाले हैं। उनका ज्ञान आनन्दमय है व आनन्द निरूपम है। उनकी ज्योतिस्वरूप आत्मा है ऐसा ही अपना स्वरूप है कभी भी इस भ्रममे मत पडो कि ज्ञान व आचरणको छोडकर मेरा अन्य कोई सहायक है। सोचो! यदि ज्ञान व आचरण बिगडगया तो जितने भी ये अन्तरग मित्र देखते हो भले-भले साथी देखते हो, सबके सब मु ह फेर लेंगे! कोई भी सहायक न होगा। ज्ञान व चरित्र ही आत्मबल देने वाले हैं अन्य कोई नही।

मेरा ज्ञान सर्वदा निर्विकार बना रहे ऐसी कोशिश करनी चाहिये।

मैं उन सिद्धोको नमस्कार करता हू जो ज्ञानमय हैं। और जो आगे सिद्ध होगे उन्हे भी मैं नमस्कार करता हू। सिद्धोके सिद्धत्व प्रकट कैसे हुआ। जिन साधु सतोंने ससारसमुद्रसे तिरानेवाली समाधि नौकाका आश्रय लिया उन्होने चतुर्गतिके दु खरूपी क्षार जलसे परिपूण ससारसमुद्रसे पार होकर सिद्धत्व प्राप्त किया। इस समाधि-भावमे अमूल्य रत्नत्रय अन्तर्निहित है। विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावात्मक निज शुद्ध आत्मतत्त्वका यथार्थ श्रद्धान यथार्थ ज्ञान व तदनुरूप आचरण ही मोक्षमार्ग है, रत्नत्रय है। यह रत्नत्रय परिपूर्ण समाधि है। इसमे विषय कषाय आदिक किसी भी विभावके प्रवेश पानेको छिद्र नही है। इस समाधिवलसे ही शुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न सहज आनन्द अमृतका सेवन होता है। सो साधु परमेष्ठियोने इस परम पावन समाधिभावके अवलम्बनसे सिद्धत्वकी प्रभुता प्रकटकी है।

ये सिद्ध भगवान लक्ष्मी और विभूतिसे युक्त हैं। यह "लक्ष्मी" शब्द स्त्रीलिङ्ग है इसका अर्थ भी लक्षण है तथा नपु सक लिङ्गमे जो लक्ष्मीका लक्ष्म बनेगा उसका अर्थ भी लक्षण है। अर्थात् लक्ष्मी और लक्ष्म दोनो शब्द एक ही अर्थक द्योतक हैं। मेरा लक्षण ज्ञानदशन है यही लक्ष्मीका तात्पर्य है। लक्ष्मी उसको समझते हैं जो धन बरसाती हो उसे एक प्रकारसे देवी मान लिया है। पहिले तो मनुष्य जानते थे कि मेरा ज्ञान लक्ष्मी है। इसीसे भला होता है। वैभव-विभवसे बनता। वि=विशेष रूपसे भव=होना। अर्थात् विशेष रूपसे होनेके परिणामका नाम वैभव है। मुझमे सम्यग्दशन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ये ही विशेष रूपसे मुझमे होगे। यदि बुरे होगे तो विकृत हो सकते है, विशिष्ट होगे तो निर्मल पनेको प्राप्त हो जावेंगे। उत्कृष्ट सम्यग्दशन, ज्ञान, चारित्र, सिद्धोमे हैं। अत मैं उन सब सिद्धोको नमस्कार करता हू।

भैया विचार करो कि हम भी वीतराग द्वारा बताये हुए मार्गके अनुसार इस दुर्लभ रत्नत्रयको प्राप्तकर मुक्त होगे। जो निर्दोष, ज्ञानघन व आनन्दमय हैं उन्हे सिद्ध कहते हैं।

रागद्वेष जब तक है तब तक यह जीव भटकता रहता है, रागद्वेष वश होकर इतनी कषाय रखते है प्राणी, कि अपने दु खके शमनके लिये दूसरोके प्राण तक भी नष्ट कर सकते है। एक जगह एक सेठानी अपनी पडोसिन गरीब औरतसे झगड रही थी। सेठानीने गरीब औरतके बालकको पीट दिया तो उस बालककी माको इतना अधिक क्रोध आया कि तीन दिन तक खाना पीना कुछ नही लिया तथा क्रोधके कारण चेहरा भी विकृत रहा। एक दिन उसको सेठानीका लडका मिलगया। उसने उसे किसी प्रकार फुसलाकर टुकडे-टुकडे काटकर गाड दिया। अदालतमे मुकदमा पहुचनेपर उसने बयान दिया कि मैं तीन दिन तक क्रोधके कारण खाना नही खा सकी। जब इसके लडकेको काट कर दाब दिया तब मुझे शान्ति मिली। बताओ कितनी तीव्रकषाय है यह ? अत हे भाइयो! रागद्वेष जब तक साथमे है तब तक आत्माका आनन्द प्राप्त नही हो सकता अत रागद्वेषसे दूर होओ वीतरागपनेको ही सिद्धि कहते हैं, इसी वीतरागपनेको प्राप्त करनेके लिए मन्दिर जाते हैं तथा सामायिक आदि पुण्य के काम करते हैं। इनसे हमारे खोटा उपयोग नही होता। निज आत्माकी पुष्टि ज्ञानमे होगी। तभी तो ज्ञानदानसे बढकर दुनियामे कोई महत्वका कार्य नही है। निजस्वरूपका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर सब कल्पनाए नष्ट हो जाती है तथा अलौकिक सुख प्राप्त होता है। अत ऐसे ज्ञानका दान भी करो तथा दूसरो द्वारा ग्रहण भी करो! जिन्होने अपने स्वभावको पहिचान लिया है तथा आत्माके आनन्दमे विभोर हैं ऐसे सिद्धोको मेरा नमस्कार है। यह ग्रन्थ परमात्मप्रकाश है इसमे स्वयका ही वर्णन है। स्वय स्वयके सहज आनन्दको जैसे प्राप्त कर सके जिससे सहजानन्दमय रह सके ऐसा पुरुषार्थ करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है। गृहस्थ हैं तो क्या हुआ उनके दो हीतो कार्य हैं—१ अपना उद्धार करना व अपनी आजीविका करना। अपनी आजीविका न्याय पूवक करनी चाहिये। तथा धर्मका पालन करना

चाहिये। इन दो बातोको छोडकर और सब धंधोमे व्यर्थ ही चि ता मत करो ? दूसरोका भला बुरा सोचनेसे इस जीवको क्या फायदा है ? परोपकार करना भी यदि लक्ष्य शुद्ध हो तो धर्मपालनमे ही शामिल है। अब कर्मविमुक्त सिद्धोको पुन नमस्कार किया जा रहा है।।

ते हउ वदउ सिद्धगण अच्छहिं जेवि हवत।
परमसमाहिमहग्गिए कम्मिधणह हुणत ॥३॥

मैं उन सिद्धोको जो परमसमाधिरूप अग्निसे कर्मरूपी ईन्धनको भस्म कर रहे हैं सिद्ध भक्ति द्वारा नमस्कार करता हू। पहिले भूतकाल व भविष्य कालकी अपेक्षा वणन किया जा चुका है अब यहा वतमानकी अपेक्षा सिद्धोका वर्णन है। वे सिद्ध भगवान पारमार्थिक हैं अर्थात् निर्दोष परमात्मा हैं जो परम समताभावका अविनाभावी हैं अर्थात् रागद्वेष रहित वीतराग, समताभाव युक्त है ज्ञानके अविनाभावी समताभावके विना प्रभुकी उपासना नही की जा सकती, अत मैं समता भाव धारण करके सिद्धोकी पूजा करता हू। जो सकल ज्ञानकी कलाओसे रमणीक हैं ऐसे सिद्धोको मैं नमस्कार करता हू। जो समताभावका पूरक ज्ञान है वह अपनी आत्मामे ही मिलेगा। सिद्धोकी तरह मेरा भी स्वरूप अनादि अनन्त एक स्वरूप सहज सिद्ध है। उसकी पूजा तो समतारसकी धारके द्वारा ही हो सकती है। रागद्वेषयुक्त होते हुए सहजसिद्धकी पूजा नहीं की जा सकती। अत मैं अपने मनरूपी भाजनमे रखी हुई धारा के द्वारा सिद्धोकी पूजा करता हू। सहजसिद्ध स्वरूप अनादिकालसे लगे कर्मकलकका नाश करने वाला है। हम लोगो को तो सहजपरमात्मतत्त्वकी महिमाको करनेकी क्या हस्ती। चार ज्ञानका धारी गणधर भी उनका वर्णन करनेमे अपनी जिह्वाको असमर्थ पाता है। अर्थात् गणधर भी उनके गुणोका बखान कहनेमे समर्थ नहीं है। मैं सहजसिद्ध प्रभुको पारमार्थिक शक्तिके द्वारा नमस्कार करता हू। इनकी महिमा अलौकिक है। जिसकी कोई उपमा नही, ऐसे ये सिद्ध भगवान हैं, अपने आपमे लीन हैं। ज्ञानज्योतिमय है इस प्रकार सिद्धोके दर्शन करनेसे जो तरगें उठती हैं वे अलौकिक सुखकी देने वाली है। मैं जैसा हो सकता हू वैसा हू अन्यथा नही, इसप्रकार विचार करना चाहिये।

भैया ! धनका गर्व एव ज्ञानका गर्व करनेसे अपने स्वभावका, अपने आत्माका ज्ञान नही हो सकता। वडे वडे जनोको सहजप्रभुत्वके दर्शन न हो और मेढक पशु-पक्षीको हो जायें ऐसा भी हो जाता है। क्योकि अपने परिणामोके कारण ही अपनी आत्माका स्वरूप जाना जा सकता है। जिस प्रकार कहा जाता है कि अधिक चतुर मनुष्य सब्जी लेनेमे ठगा जाता है, अर्थात् जो अधिक चतुर है उनसे कोई न कोई ऐसी भूल हो जाती है जिससे वह ठगा जाता है। ऐसे ही यह निश्चित नही कि जो बहुत बडे पुरुष भी हैं उन्हे ही अपनी आत्माका स्वरूप मालूम हो, इसमे विपरीत भी हो जाता है। स्वानुभवके लिए ज्ञानकी आवश्यकताके साथ-साथ सहजसिद्ध चरित्रकी भी आवश्यकता है। अर्थात् अपने उपयोगको उसी रूप परिणमन कराना है मैं सहजज्ञान द्वारा सहजआनन्द भावकी दृष्टिसे सिद्धोको पूजता हू, ऐसा भाव होना चाहिये। समस्त दोषोको शुद्ध करनेमे समर्थ जो महत्त्वशाली अक्षय सहज ज्ञान भाव है उसके द्वारा सुबोधके निधान सहज सिद्धकी मैं पूजा करता हू। सहज ज्ञान, किया हुआ ज्ञान नही अपितु सहज ज्ञान, जो अपने आप बोध होता है वही सहज ज्ञान है। सहज ज्ञान द्वारा ही सहज सिद्धके दर्शन होंगे। जिनकी अवधि नही है ऐसे प्रचुर गुणोसे युक्त सिद्धोको मैं पूजता हू। सिद्धस्वरूपके स्मरणमे आत्मीय सहज धर्मोका मिलन होता जा रहा है। यह साधर्म्यमिलन एक अपूर्व मिलन है। साधर्म्य वात्सल्यसे भी अलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है।

एक राजाके दरबारमे नर्तकीका नृत्य हो रहा था, नृत्य देखने आये हुओमे एक अन्धा भी था। अब जो सगीतको जानते थे वे भी गर्दन हिलाते जाते थे और जो नही जानते थे वे भी गर्दन हिलाते जाते थे, क्योकि नही तो

वे संगीत कलामें मूर्ख समझे जाते। अन्धा नृत्य गानके समय बोला कि यह जो तबला बज रहा है इसका अंगूठा मांसका है, देखने पर मालूम हुआ कि वास्तवमें बात सत्य है। यह देखकर नर्तकी बहुत प्रसन्न हुई कि कोई तो संगीतका नृत्यका समझने वाला इस सभामें है। थोड़ी देरमें ऐसे ही नाचते-नाचते नर्तकीके चारों ओर एक भ्रमर आकर रमने लगा तथा वह चक्कर लगाते हुये नर्तकीके वक्षस्थल पर बैठ गया। अब नर्तकी हाथसे इसलिए नहीं उड़ाती कि हाथसे उड़ाने पर नृत्यमें कहीं भंग न पड़ जावे। अतः उसने नाचते-नाचते ही इस तरहसे एक प्रकारका श्वास लिया कि भौंरा उड़ गया, उस घटनाके अनुभवसे आनन्दित होते हुए अन्धेने अपना दुपट्टा नर्तकीके ऊपर फेंक दिया क्योंकि गरीबीके कारण और कुछ तो उसके पास था नहीं। नर्तकी उसी दुपट्टेको सिर पर रखकर खुश होती हुई चारों ओर नाचने लगी। यह संगीत गुणानुरागका प्रेम है। इसी प्रकार धर्मात्माओंमें जो वात्सल्य होता है वह भी निरुपम होता है। मैं इन सहज रत्नमय सिद्धोंको सहज रत्नकी रुचियोंसे पूजता हूं। सहज रत्न उसे कहते हैं जो कि गुणोंमें प्रकाश करने वाला होता है। आत्माका विकास करने वाला जो निरवधि सहजरत्न है उसके द्वारा मैं सहज सिद्धकी पूजा करता हूं। जो परमसमाधि रूपी अग्निसे कर्म रूपी ईन्धनको जला रहा है ऐसा निर्दोष परमात्मास्वभावरूप जो परमात्मा है, मैं निर्विकल्प स्वसंवेदन द्वारा उसकी पूजा व भक्ति करता हूं।

भैया सच जानो, यह मानव पर्याय मिलना अति कठिन है, उसमें भी जैन धर्मका समागम पाना महा दुर्लभ है और उसको पाकर भी योंही विषय कषायोंमें खोदेना बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। अतः इन विषय कषायों को छोड़कर वात्सल्यभाव जगाओ तथा सहजज्ञान द्वारा सिद्धोंकी पूजा करो। इन कषायोंको जला डालो। भय्या जो आनन्द वात्सल्यमें है वह विषय कषायोंमें कहां है। अतः जब हमने मानवपर्याय पायी तो कमसेकम इतना तो लाभ पाते जायें कि सिद्धभगवानके दर्शन हो जावें। इस समय भी अनेकों आत्मा पांच महाविदेहोंमें सिद्ध हो रहे हैं वे वीतराग निर्विकल्प समतापरिणामके अविनाभावी निर्दोष परमात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान अनुचरण रूप अभेद रत्नत्रयात्मक समाधिरूप अग्निमें कर्मेन्धनकी आहुतियोंसे होम करते हुये कर्म मुक्त होकर सिद्ध हो रहे हैं ऐसे सब वर्तमान सिद्धोंको निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप पारमार्थिक सिद्धभक्तिसे नमस्कार करता हूं। इस गाथामें यह भावार्थ प्रसिद्ध हुआ कि उपादेयभूत शुद्ध आत्मद्रव्यकी प्राप्तिका उपायभूत निर्विकल्प समाधि ही उपादेय है।

मैं उन सिद्धोंको नमस्कार करता हूं जो सिद्ध हो रहे हैं सिद्ध होते हुए ठहर रहे हैं। एक वटा होम करते हुए सिद्ध हो रहे हैं। होममें अग्निकी आहुति दी जाती है। यहां होममें निर्विकल्परूप समाधि हुई अग्नि तथा कर्म हुए ईन्धन अर्थात् निर्विकल्प समाधि रूपी अग्निमें कर्म रूपी ईन्धनोंको होम कर रहे हैं। अतः वे निर्विकल्परूप समाधि अग्निमें कर्मरूपी आहूतियोंके द्वारा होमकर समाधिमें ठहर रहे हैं। भैया! सदा समताभावका आदर करना चाहिये। यहां पर कोई कहे कि यह तो मायाचार हुआ। यह शंका निर्मूल है। मायाचार तो उसे कहते हैं कि स्वार्थ की बुद्धिसे या ठगनेकी बुद्धिसे मनमें कुछ रखना बताना कुछ और करना कुछ। देखो! अव्रतसम्यग्दृष्टिके चारित्र व्रत, तप, संयम नहीं केवल श्रद्धा उसके है। तो श्रद्धा है स्वभाव और पद प्रवृत्ति विपरीत, यह तो मायाचार नहीं है क्योंकि उसका अन्तरङ्ग तो वैसा ही समताभावनाका है अतः मायाचार नहीं हुआ। मैं सिद्ध समान हूं। अतः चैतन्यभावका ही उपयोगी रहूं ऐसी भावना वालेके इस विवेकी मनमें यदि क्रोध होता है तो वह इसलिये कि क्रोधादि का उदय लगा हुआ है, हो जाता है, इसे मायाचारी नहीं कहते। वैसे तो जो उसकी भावना है उसे वह वैसा ही व्यक्त कर रहा है। धन्य है उस निर्विकल्प समाधिरूपी अग्निको जिसमें योगीजन कर्मरूपी ईन्धनको जला रहे हैं। ऐसी निरन्तर श्रद्धा बनाओ कि सब आत्मा ज्ञानानन्द स्वभाव वाले हैं। ऐसा श्रद्धान हो गया तो समझना चाहिये कि हमने बहुत बड़ी वस्तु प्राप्त करली है व क्या वे बाह्य उपकरण तो सब नष्ट हो ही जावेंगे। भैया सब जीव भगवान के समान हैं, तथा मुक्त सिद्ध हैं। फिर उन जीवोंसे इतना राग कि यह मेरा है, यह मेरा और है, अन्य कुछ नहीं। सब पर क्षमा रखेगा भाव बनाये रहो ऐसा करनेसे वात्सल्य भ-

जाग्रत रगा । उन जीवोमे छटनी मत करो । राग द्वेपकी भावना मत भावो । मेरा तो केवल मैं ही हू मेरा कुटुम्ब मेरे गुण हैं । मेरा सहाय मैं हू । मेरा वैभव उन गुणोका विकास है । इससे अन्य मेरा क्या है कुछ भी तो नही । जैसे कोई वहुत वडा अफसर है वह जब तबादले पर कही जाता है तो प्राय उसको कुछ भी दु ख नही होता, क्योकि जानेके लिये उसका मुफ्त प्रबन्ध हो जाता है । एक दो डिब्बे रेलवेके फ्री मिलते हैं । कामके लिये सरकारी नौकर मिल जाते हैं । फिर जहा जावेगा उसको आदर प्राप्त होगा, यहाका आदर तो वल्कि अब उतना है भी नही क्योकि रहते हुए काफी दिन हो गये फिर अफसरोका प्राय जनसमूहसे प्रेम नही रहता । अत इन सब परिस्थितियोमे जब कि वह अपना चूल्हा चक्की तक सब साथमे ले जासकता है उसे क्या जाते हुए क्लेश होगा ? बिलकुल नही । उसी प्रकार ये ज्ञानी जीव भी इस पर्यायको छोडकर अन्य पर्याय धारण करे तो क्या दु ख है । जिसमे मैं बस रहा हू, वे मेरे गुण तथा वही कुटुम्ब है । गुणोका जो विकास है वही मेरी इज्जत है । ज्ञानी होनेके कारण मैं यहाके लोगोसे अन्तरगमे मोह बढाता नही हू फिर मुझे क्लेश क्यो, दु ख क्यो । यह भी तो सोचो छोटी सी बात कि जितनी खुशी व पू छ उस समय थी जबकि तुम पैदा हुए थे, क्या उतनी ही आज भी है आज तो तुम कमाते भी हो जबकि उस समय कमाते नही थे । आज वह पू छ वह इज्जत नही जो जन्मके समय थी । खैर जो मेरा गुण है उसे तो मैं साथ ही ले जा रहा हू । गुणोके विकासको भी साथ ही लिये जा रहा हू । अत मुझे तो इस पर्यायको छोडते हुए कोई कष्ट नही होना चाहिये ।

समता ही एक ऐसी अग्नि है जिसमे कर्म ईन्धन जलते हैं, अत जीवो पर समताका भाव पैदा करो । अपने व्यवहारमे हमेशा समता ही प्रगट करो । अन्तरगमें चाहे थोडी कमी हो किन्तु व्यवहारमे बराबर समताका भाव बनाये रखो । मेरे अन्तरगमे भी तो समताकी भावना ही है बीचमे जो व्यग्रता आ गयी है उसे मैं मिटा लूगा । व्यवहारमे असमता लानेसे शल्य बढता है । अपनेमे जो भूलमल है उसे ज्ञानरूपी जलमे नष्ट करना चाहिये । इससे इस लोकमे भी सुखी होओगे तथा परलोकमे भी सुखी होओगे । अभेदरत्नत्रयको समाधि कहते हैं । अनादि अनन्त निर्दोष जो परमात्मतत्व उसका ही अभेदरूप दर्शन-ज्ञान, वह हुआ समाधि उसमे ही योगीजन ठहरा करते हैं ।

ज्ञानीका लक्ष्यबिन्दु सहज परमात्मतत्त्व ही होता है । ज्ञानी श्रावक पूजककी भी अन्तरकी आवाज यह है कि हे प्रभो यह मन्दिरका शुध्द स्थान है, ये पुष्पादि आठों द्रव्य शुध्द हैं ये आपकी मुद्रा भी शुध्द है, मैं भी शुध्द हू ये सब कुछ होते हुए भी मेरे लिए सब चीजें एक ही हैं । जैसे द्रोणाचार्यने मोमकी चिडिया पर निशाना लगानेके लिए अपने शिष्योकी परीक्षा ली उन्हे कहा गया कि चिडियाकी आखमे तीर मारना है । धनुष ताने हुए सबको पूछा कि क्या दिखता है । पूछने पर किसीने कहा कि मुझे सबकुछ दिख रहा है आदि-आदि किन्तु अर्जुनने कहा कि मुझे तो आखके सिवाय कुछ नजर नही आता । अत अर्जुन जी परीक्षामे उत्तीण हुए । उसी प्रकार ये पुजारी भी उसी दशामे उत्तीर्ण हैं जबकि वे समझे कि मैं एक ही हू । यह सब वहा एक है, हम लोग तो पूजा करते समय बाह्यमें इतना ध्यान देते हैं कि कुछ हमसे छू तक न जाये । ऐसी दशामें यह भाव कैसे आ सकता है ? हा अभिषेकके समय पूर्ण शुध्दताका भाव रखना चाहिये तथा ध्यान रखना चाहिये । अब बादमे यदि कोई छू जाय तो उसमे हम क्या कर सकते हैं हमारे भाव तो पूण शुध्दिके हैं ।

पूजा करते समय चैतन्यमात्र परमात्मतत्व ही दीखना चाहिये । इस जाज्वल्यमान वलज्ञानरूपी अग्निमे मैं एकमन होकर सारी पुण्य सामग्रीको स्वाहा करता हू । अलकारमें एक चर्चा है मानो भगवान बोले हे प्राणी तू दस या ग्यारह आनेकी सामग्री स्वाहा करके ही ऐसा बोलता है कि समग्रपुण्यको स्वाहा करता हू तब पुजारी बोला कि नही, मैं अपना सब ऐश्वर्य आदि भी स्वाहा करता हू । भगवान बोले कि बाह्य वस्तुको त्याग कर क्या उदारता दिखायी । तब पुजारीने कहा कि मैं एक क्षेत्रावगाहकी तिजोरीमे रखे हुए पुण्यकमको भी स्वाहा करता हू । वह भी जड है ऐसा रोकने पर फिर बोला कि मैं भाव पुण्यको भी स्वाहा करता हू ।

ते पुण वदउं सिद्धगण जे निव्वाण वसति ।
णाणि तिहुयणि त्रसयवि भवसायरिण पडति ।।४।।

मैं उन सिध्दोको नमस्कार करता हू जो सबसे अधिक वजनदार हैं । अर्थात् सर्वज्ञ हैं वही हुए वजनदार । भारी वस्तु नीचेकी ओर गिरा करती हैं यह वस्तुका स्वभाव है किन्तु वे इनसे अधिक ज्ञानगुरु होनेपर भी ससार रूपी समुद्रमे नही गिरते है । उनके बरावर तीनो लोकोमे कोई भारी नही । जो गुरु होकर भी भवसागरमे नही गिरते हैं ऐसे सिध्दोको मैं नमस्कार करता हू । तथा जो हमेशा निर्वाणमे विराज रहे हैं तथा जिन्होने निज स्वरूप को पाकर कर्मोका क्षय कर दिया है, जिन्होने वीतराग, निर्विकल्पक ज्ञान स्वसवेदन द्वारा आत्माको प्राप्त कर लिया है वे तीनो लोकोमे गुरु होते हुए भी ऊर्ध्व लोकमे ठहरते है, अर्थात् तनुवातवलयके अन्तमे ठहरते हैं, उनसे ऊपर कोई नही है । उनके ज्ञानमे समस्त द्रव्य आगये उनके ज्ञानके वाहर कुछ नही है । प्रत्येक द्रव्यमे अनन्त गुण होते है वे भी उनके ज्ञानमे आगये । प्रत्येक गुणकी पर्यायें भी उनके ज्ञानमे आगयी । प्रत्येक पर्यायमे अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं वे भी उनके ज्ञानमे आगयी सर्वरस भी उनके ज्ञानमे आगया । इस प्रकार दुनियामे जो तत्व हैं वा सब उनके ज्ञानमे आगया । उनसे वाहर कुछ नही । ऐसे वे लोक परलोकका प्रकाश करनेवाले स्वसवेदन ज्ञानके कारण सिध्दभगवान बहुत गुरु हैं—भारी हैं । फिर भी ससार समुद्रमे नहीं गिरते ।

निमित्त पाकर होनेको भव (ससार) कहते है । इस ससार रूपी समुद्रमे अनेक खतरे हैं । जैसे लहरोके कारण पानीके जन्तुओके कारण अगाध होनेके कारण, आदि-आदि कारणोसे बहुत खतरनाक है ये समुद्र । उसी प्रका यह ससार भी खतरेकी चीज है जन्म, बुढापा, राग, द्वेष, कषाय आदि के कारण यह ससार समुद्र खतरोसे परिपूर्ण है । बहुतसे प्राणी इस खतरेमे भी पडे हुये हैं बहुतसे उभर भी गये हैं । इन खतरोसे दूर होनेके कारण ही सिद्ध भगवान तीनो लोकोके गुरु हो गये । जिनकी आराधनाकर हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । किन्तु यह सब विचार करनेके लिये हमारे पास समय ही नही है, हम तो मोह मायामे पडे हुये हैं, किसीसे राग, किसीसे द्वेष, किसीसे अपनत्व, किसीसे शत्रुत्व आदि भावनाओ कल्पनाओमे वह रहे हैं, जिनकी आराधना करनेसे डूवते हैं वही सब कर करते हैं । इन सवसे कालिमा ही लगती है अन्य कुछ नही । घरको चलानेके लिए सम्बन्धियोके प्रति क्या कुछ तन मन धन सेवा करनेमे कुछ कमी करते, सभी उद्यम कर डालते हैं । ऐसे कार्योके प्रति तो यह जीव उद्यम करता है किन्तु अपनी आत्माके अनुकूल भाव नही करता, उद्यम नही करता ।

अब तो कल्याणके लिए प्रधान उपाय सत्सग और स्वाध्याय है । जैनोकी अपेक्षा अन्य बन्धु सत्सगको बहुत महत्व देते हैं । किसीसे भी पूछो कि कोई कहासे आ रहे हो ? चाहे वह रामायण सुनकर आरहा हो, उत्तर यही देगा कि सत्सगसे आरहा हू । पुजारी भी तो यही भावना कर जाता है कि शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुति सगति सर्वदार्यै सद्वृत्ताना गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् । सर्वस्यापि प्रियहित वचो भावना चात्मत तत्वे सम्पद्यन्ता मम भवभवे यावदेतेऽत्पवर्गा । हे प्रभु जव तक मुझे मोक्ष न हो, तव तक (१) शास्त्राभ्यास (२) जिनपतिनुति जिनकी स्तुति, प्रणाम, ध्यानादि, (३) सगति-सवदा आर्य पुरुषोके साथ सज्जनोका समागम (४) सदवृत्त कथा, (५) दोषवादमे मौन, (६) सबसे प्रियहित वचन, (७) आत्मतत्त्वकी भावना, आदि वातें वनी रहे । प्रत्येक गावमे एक या दो सज्जन होते ही है, अत जैनी भी यदि ज्ञानगोष्ठी वनाकर सत्सग करें अपने स्वभावकी चर्चा करें तो वात्सल्य भाव बढता है ।

यह ससारका समागम तो नष्ट होना ही है इसमे तो कुछ सार ही नही है । यह धन समाज भी नष्ट ही होनी है (१) या तो किसीको दान देनेसे (२) या मृत्यु हो जाने पर छूट जाय (३) या सामने वरवाद हो जावे । चार चोरी करलें आदि । फिर क्यो जीवनके ये थोडेसे क्षण इस आकर्षणमे लगाये जावें । अत यही विचार करना

चाहिये कि हे प्रभु ! मुझे ऐसी शक्ति दो ताकि मैं न्यायपूर्वक अपनी आजीविका कर सकू तथा धर्मध्यान कर सकू । क्योकि जिन परिणामोसे पाप सचित किया जाता है वह तो अवश्य ही भुगतना पडेगा। अत सबसे बडी बात यह है कि अपने भावोको मलिन न होने देवें। ऐसा विचार करनेसे अपना जाता ही क्या है कि सब जीव सुखी होवें, सब पर मेरा क्षमाभाव रहे। और फिर ऐसे परिणाम रखना कि मैं इनका अनिष्ट कैसे करू ? ये क्लेशको ही देने वाले हैं। अत सब जीवो पर सुखी होनेकी भावना करना, अपने ऊपर ही करुणा करना है। अगर किसीके द्वारा कुछ अपनेको ठेस भी पहुचे तो भी यही सोचे कि इसका कल्याण हो सम्यग्दृष्टि जीव सग्राम करते हुए भी यही सोचते हैं कि इसका भी कल्याण हो जाये, इसे सद्बुद्धि हो जाये। अगर किसी प्रकार इसको सद्बुद्धि आ जाती है तो तुरन्त मित्रता भी हो जाती है।

भैया ! किसीका बुरा न सोचनेसे अपनी आत्मा पवित्र होती है और फिर मानलो अपने बुरा सोचनेसे उसका अनिष्ट हो ही गया तो अपनेमे क्या वृद्धि हो गयी। यदि ईर्ष्या ही करनी है तो मोक्षरूपी लक्ष्मीसे ईर्ष्या करो। इसमे ईर्ष्या करनेसे क्या लाभ कि मैं इससे अधिक रुपये वाला हो जाऊ । जो सबमे बडी वस्तु मोक्ष है उसके प्रति ईर्ष्या करो। यदि मैं किसीको शत्रु मानकर उस पर ईर्ष्या करु तो यह निश्चय है कि मैं ससारके दुखो को भोगता रहूगा। यदि किसीके प्रति बहुत पहिलेसे बुरा भाव बनाया हो तो उसे इसी क्षण छोड दो, जैसी बुद्धि हम मकान आदिको पूरा न बनने तक करते हैं कि इसे तो पूर्ण करना ही है। इस प्रकार परमार्थमे नही करते भैया, यह भावना बनाओ कि मैंने किसीके प्रति बुरा भाव बना रखा है तो उसे किस प्रकार जल्दीमे जल्दी छोड दू । किन्तु इससे विपरीत ही मोहीजन सोचते हैं कि जिसको पालपोसकर बडा कर दिया उसका राग मैं कैसे छोड दू । आचार्य कहते हैं कि परपदार्थमे राग द्वेषकी बुद्धि छोडने योग्य है। अपने अन्दरके क्रोध मान माया लोभ आदि बुरे भावोको अपनेसे दूर कर दो। इनमे न तो सुख ही है और न ही अपने आत्माका कल्याण ही है।

तीन लोकमें गुरु होते हुए भी जो ससार समुद्रमे नही गिरते, ऐसे वे जो निर्वाण पद पर ठहर रहे हैं, उन्हे मेरा नमस्कार हो। वे निर्विकार रूप हैं, समाधानरूप हैं, चैतन्य स्वभावमय हैं तथा शुद्धरूप है इस प्रकारका परिणमनका पूरा अनुभव तो उसी स्थितिको प्राप्त कर लेने पर होता है। स्वरूपाचरण श्रद्धा, ज्ञान ठीक हो ता विकल्पोसे ज्ञान हो जाता है। उसका वैभव फिर भी नही जाना जासकता, वह तो उसी अवस्थामे होकर यथार्थ जाना जा सकता है। यही निर्वाण पद उपादेय है कल्याणकारी है मुक्तिका साधक है। सम्यग्दृष्टि जीव यही विचार करता है कि जो सिद्ध स्वरूप है वह मुझे कब प्राप्त हो ? उसीकी बाट जोहता रहता है।

जो तीर्थंकर परमदेव भरत राघव पाण्डव आदिक पूर्व कालमें वीतराग निर्विकल्प स्वसवेदन ज्ञानके बलसे शुद्ध आत्मस्वरूपको पाकर कर्मक्षय करके निर्वाणमे ठहर रहे हैं उन सबको नमस्कार करता हू । यह निर्वाण पद क्या है—परमात्मस्वरूपका शुद्ध पूर्ण विकास है। यह निर्वाण पद उपादेय है यह अब इस दोहासे लेना चाहिये। अब इसके बाद व्यवहारसे व निश्चयसे दोनो प्रकारसे जो शुद्ध हैं, वे निर्वाणमे बसते हैं परन्तु निश्चय नयसे शुद्धात्म-स्वरूपमे ही ठहरे हैं इस तथ्यका प्रतिपादन करते हैं।

ते पुण वदउ सिद्ध-गण जे णिव्वाणि वसति।
लोयालोउ वि सयलु इहु अच्छहिं विराल णियत ।।५।।

मैं उन सिद्धोको नस्कार करता हू। जो सिद्धलोकके शिखर पर रहते हैं। यह व्यवहारनयकी बात है। निश्चयनयकी अपेक्षा सिद्ध आत्मा अपने आपमें विराजमान हैं। जो आत्मामे बसते हुए भी लोकालोकके समस्त द्रव्योको जानते हैं मैं उन्हे नमस्कार करता हू। सिद्ध एक द्रव्य है और शिखर एक द्रव्य है। निश्चयनयकी अपेक्षा आत्मामे जितने भी गुण हैं उनकी क्रिया आत्मामें ही होती है। आत्माके ज्ञान गुणकी क्रिया आत्मा ही मे होगी। ज्ञानका अर्थ है जानना। ज्ञानका परिणमन परपदार्थमे नही हो सकता आत्मामे ही परिणति होगी अन्यमे नही।

जैसे कि क्रोध करनेका अवसर अपने पर ही होता है। परका जानना उपचार व्यवहार है स्वका जानना व ज्ञायकत्व निश्चयनय है। जैसे दर्पणके पीछे अनेक आदमी हैं उसमे उनका प्रतिविम्ब पडता है। दर्पणमे जो परका प्रतिविम्ब हुआ यह है व्यवहार दर्पणमे जो निजी स्वच्छता है जिसके वल पर प्रतिविम्ब पन पाया जाता है। वह वात निश्चय है। प्रतिविम्वरूप परिणमन व्यवहार है। दर्पणमे अमुक आ गया, यह हुआ उपचार। उसी प्रकार आत्मामे जो ज्ञान शक्ति है वह निश्चयनय है। ज्ञेयाकार व्यवहारनय हैं। मेरे ज्ञानमे वम्बई आ गयी आदि, यह हुआ उपचार। मैं अपना ही परिणमन कर सकता हू। यहा नमस्काररूप परिणमन भी एक मेरा ज्ञान परिणमन है जिसका सम्प्रदान मैं हू अत मैं स्वमश्रयके लिए सिद्धज्ञेयाकार परिणमनरूप नमस्कार करता हू।

हे जिनेन्द्र भगवान! मैंने शुभअशुभ भाव जो भव-भवमे किये उनके फलस्वरूप अनन्त कर्मोका जाल वध गया है वह मरनेपर भी नहीं छूटता साथ ही जाता है। हममे जो परद्रव्यके प्रति रागद्वेष विभाव भरे हुए हैं विपदा के कारण है। मेरे मात्र यही अभिलाषा है कि रागद्वेष छूटे, मोहमाया मिटे क्योकि ये दु खोके देने वाले हैं। एकीभाव स्तोत्रमे वताया है कि भव भवमे मेरे द्वारा जो कर्म जाल वनाया गया एकत्रित हुआ ये सब कर्म जाल भी भगवानकी भक्ति करनसे नष्ट हो जाते हैं किन्तु भगवानपर श्रद्धा होय तब तो। ऐसी भक्ति करे कि भगवानके गुणो मे अपना भावरस एकमक हो जावे।

वैसे तो भैया! भक्ति सभी करते हैं, जिसका जिसमे उपयोग लगे उसके लिए वही भक्ति है, जैसे पिता भक्ति, स्त्री भक्ति, पति भक्ति, भगवद् भक्ति। अव सोचो कि हमारा पुण्य भी ठीक है जो हम जैनकुलमे पैदा हुए। आजीविका भी ठीक ही चल रही है, स्वास्थ्य भी ठीक है, ग्रन्थोका अध्ययनभी ठीक है, उपदेश भी ठीक ग्रहण कर रह हैं। जब चाहे ऋषिमुनियोका भी समागम हो ही जाता है। ऐसी स्थितिमें कुछ सही तो निर्णय करो कि कौन सा काय हमे सुख पहुचा सकता है। परदृष्टि रखनेसे दु ख ही होगा। क्या परद्रव्यमे मोह रखनेसे गुजारा हो जावेगा? भय्या! इन सवसे पूरा नही पडेगा। स्वात्मभक्तिसे ही भला होगा। जो आज मोहवशमे हमे दश आदमी भला कह रहे हैं, कल न ये होंगे और न हम रहेगे। रागद्वेप करनेमे कुछ नही होगा। यही सब सोचनेकी वात है। यदि हम इतना ज्ञान रखकर भी गिर गये तो वहुत नीचे गिरेंगे। सावधानीसे चलनेका, महनेका अवसर है। हे प्रभो! जब तुम्हारी भक्ति उस जालको भी नष्ट कर सकती है तव अन्य क्या कठिनाई है जो नष्ट नही हो जायगी। उपयोग यदि सही हो जावे तो सर्व आपदा दूर हो, आत्माका स्वभाव भी तो यही हैं। जैसे किसी वच्चेको हिचकी आरही होती है तो उसका उपयोग अन्यमे लगानेके लिए कुछ ऐसी वात करते हैं ताकि उसका उपयोग हिचकीमे दूर हो जावे ताकि हिचकिया वन्द हो जावें। उसी प्रकार जगतके ये दन्दफन्द मोहमायाका जाल भी एक प्रकारकी हिचकियां है उनको दूर करनेका उपाय है जिनेन्द्र भगवानकी भक्ति, अपनी आत्माको पहिचानना।

भैया! पहिले जैनधर्मका वहुत प्रचार था, जैसे रात्रि भोजन न करना, झूठी गवाही न देना, न्याय करना आदि आदि। वुजुर्गोने जो इनका पालन किया था उसका ही यह परिणाम है, यह नतीजा उन्ही की कमाईका है कि आज भी हममे सस्कार वने हुए है। लोग आज भी जैनसमाजको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। जैनोका आचरण फिर भी अधिक नही गिरा। भय्या यह धन, वैभव तो पुण्यके वलसे प्राप्त होना ही रहेगा फिर अपने भाव विगाडनेमे क्या लाभ है? यदि कोई इस धारणाको वनाता है। कि मैं कमाता हू तो सुनलो जरा, कमानाका भावाथ है कम, आना अर्थात् भाव विगाडनेमे कम ही आता है और अपने पूवजन्मके पुण्यसे जितना है उतना आवेगा ही फिर अपने भाव विगाडनेसे क्या लाभ? सोचो! ऊपरसे हम शुद्ध भाव वनाये व ग्राहक यह निश्चय माने कि इस दुकानदारके यहा सच्चाई है, न्याय है तब लेनदेन करता है, नहीं तो ग्राहकको यदि अविश्वास रहे तो वह कैसे आयगा, ग्राहक भी तभी आवेगा जवकि उसे उसकी ईमानदारी पर विश्वास है। फिर जव ऊपर अच्छा व्यवहार दिखानेमे ग्राहक पर इतना प्रभाव पडता है तब अन्तरगमे शुद्धभाव रखनेसे कितना नहीं पडेगा। अत अन्तरगमे ही शुद्ध भाव रखने

चाहिये। भगवानसे यही प्रार्थना करे कि हे प्रभु ! स्वप्नमें भी मरे खाटे भाव न आवें, यही तो असली कमाई है जो अगले जन्ममे भी काम आवेगी। इन सब विचारोंकी पुष्टता भी सिद्धभक्तिके प्रसादसे होती है।

मैं कर्मक्षयके अर्थ सब सिद्धोंको नमस्कार करता हू। ये सर्वसिद्ध कैसे हैं कि ये व्यवहारसे सर्वलोकालोकको प्रतिभासते हैं परन्तु निश्चयमे अपने आत्मास्वरूपमें ही बसते है। आत्माका स्वरूप है विशुद्ध ज्ञान दशन। उस विशुद्ध स्वभावकी वर्तनारूप उपयोगमे ही वे सदा वसते हैं। अन्य लोक व अलोक परद्रव्य हैं। परद्रव्यके साथ स्वप्रभु की तन्मयता नही है। यह तो ज्ञायक भावकी स्वच्छताका चमत्कार है कि ज्ञान अपने आपको परज्ञेय विषयक जानन-क्रिया करते हैं। जैसा व्यवहार है वैसा जानन वना इससे व्यवहारसे यह कहा जाता है कि प्रभु लोक अलोकको जानते देखते हैं। निश्चयमे प्रभु स्वसवेदनस्वरूप अपने यत्नमे ही रहते हैं। यदि बाह्य पदार्थोंको सीधा जानें देखें या अनुभवें तो बाह्यकी सुख दु ख वर्ण रसादिपरिणमनोका अनुभव भी प्रभुमे आ धमकेगा। परके राग द्वेष पर्यायको निश्चयसे जाना तो प्रभु रागी द्वेष वन वैठेगा। किसीके सुख दु खको निश्चयसे जाना तो प्रभु सुखी दु खी हो जायगा। पुद्गल के पर्यायको निश्चयसे जाना तो प्रभु जड हो जायगा। प्रभु तो मात्र अपने चिदानन्द स्वभावमे ठहरते हैं। इसी विशेषताके कारण वे योगिजनो द्वारा ध्येय होते हैं ? प्रभु निश्चयस्वस्वरूपमे अवस्थित हैं यही उनकी महत्ता है। हम आप सबको स्वस्वरूपमे अवस्थान होना उपादेय है।

अपने आपमे चैतन्य स्वभावकी अनुभूति ही अमृत है। यदि नही तो बताओ वह और कौनसा अमृत है जिसको पीकर मृत्यु न हो। क्या पौद्गलिक वस्तु खानेसे जीव अमर हो जाता हैं। औषधि आदिसे भी इतना हो सकता है कि कुछ अधिक जीवन का समय वढ जाये किन्तु यह सम्भव नही कि मृत्यु ही न हो। देवताओंमे भी कई माहमें भूख लगने पर अमृत झडता है तथा भूख शान्त हो जाती है किन्तु मृत्यु तो उनकी भी होती ही है। न मरने वाला ऐसा जो निजी स्वरूप उसका ध्यान करना ही अमृत पान करना है ! कितने भवोसे रागद्वेष प्राणीका चलता आया है किन्तु जब यह भाव आ जाय कि मेरा कुछ नहीं मैं तो चैतन्यस्वरूप हू, वही सब सकट समाप्त हो जाते हैं। यही अमृतपान है। योगी जन जब अपनेमें लीन हो जाते हैं तब कण्ठसे जो घूट नीचे सहज उतरता है उस समय जो घूट गुटका जाता है वह घूट उस समयका वहुत बडा अमृत होता है। आत्मस्वभावकी दृष्टि करना ही अमृत है। ये दृष्टि वस्तुको स्वतन्त्र स्वतन्त्र निहारने पश्चात् ही मिलती है।

एक राजाके यहा सुकुमाल पुत्रको वैराग्य हो गया। वह दीक्षा लेकर मुनि हो गया। उसके सम्बन्धीने जहा यह प्रवन्ध किया कि कोई कष्ट न होवे वहा दूसरे सम्बन्धीने जिसे अधिक स्नेहका, किन्तु इच्छाके प्रतिकूल वैराग्य ले लिया, यह परिणाम किया कि जहा भी वह मिले उसकी खाल खिच वालें। सुकौशलकी माने भी सिंह बनकर पुत्रघात किया था। भैया ! यह मोहजाल विपदाका कारण है जो प्राणिको मोहवश क्रोधमे क्यासे क्या कर देता है। लेकिन धन्य हैं वे प्राणि जो उपसर्गकी स्थितिमें भी इस अमृत चैतन्यका ध्यान करके ऐसा प्रखर भेद-विज्ञानका व्यवहार करते हैं कि क्लेश नही होता। उस जीवने सब कुछ प्राप्त कर लिया जिसने अपनेको सब जीवो से विभक्त कर लिया है। धन, कचन, ऐश्वर्य, वैभव आदि सब प्राप्त हो सकता है किन्तु सबसे कठिन व पूर्ण लाभ-मय एक ही यह आत्मदर्शनकी बात है जो किसीके देनेसे, ऐहसानसे नही मिलती, यह तो खुदके ही विकाससे प्राप्त होती है। परपदार्थको अपना मानना आदि सब विडम्बना है। इन सबसे कोई लाभ नहीं। क्या तत्त्व है परपदार्थमे रागद्वेषकी कल्पना करनेसे।

भवदेव व भावदेव नामके दो सगे भाई थे। बडे भाई वैराग्य पाकर मुनियोंके सत्सगमे पहुच गये। वहा उनका धीरे धीरे बहुत सम्मान होने लगा। यहा तक कि वे सघके गुरु हो गये। सब कोई इनका आदर करते थे। छोटे भाई कि जिस दिन शादी हुई, उस दिन उन्हें पता लगा कि भवदेव आये हुए हैं अत उस दिन ही प्रति गृह मा करके अहार करा और उनको छोडनेके लिए वहा तक गये जहा उनका आश्रम था। वहा जाकर उन्होंने देखा कि

मेरे भाईका यहा कितना सम्मान है ? कितना आदर है ? अब यहासे जानेका मतलब बडे भाईका अपमान है। कुछ और सोचा। इस प्रकार वही पर उन्हे भी वैराग्य हो गया और दीक्षा ले आश्रममे रहने लगे। उधर उनकी स्त्रीने अपने महलका नक्शा ही बदल दिया। अपने लिए छोटा सा कमरा रहनेके लिए व रसोई बनानेके लिए रखकर बाकी चैत्यालय बनवा दिया। इस प्रकार वह भी धर्मसाधन करने लगी। इधर ४-५ वर्ष पश्चात् भावदेव जी को विकल्प हुआ कि न मालूम वह कैसे रह रही होगी, जिसे शादी होते ही छोडकर मैं यहा आ गया। अत विकल्पोमे फसकर उसी घरकी ओर समाचार जाननेके लिए चल दिया तथा यह पूछता हुआ आया कि भय्या भावदेवका मकान कौनसा है ? वह जब वहा पहुचा तो मकानका सम्पूर्ण ही नक्शा बदला हुआ पाया। वही पर उनकी स्त्री बैठी हुई थी। स्त्री उन्हे पहिचान गयी, क्योकि उसने उन्हें देख लिया था किन्तु भावदेवजी उसे नही देख पाये थे, अत भावदेवजी उसे न पहिचान पाये और उसीसे पूछने लगे कि हे देवि ! यहा पर भावदेव रहते थे ना। उत्तर मिला कि हा यही रहते थे। फिर प्रश्न किया कि उन्होने शादी भी की थी। उत्तर मिला कि हा ! मालूम नही उनकी पत्नी कैसी अवस्थामे है ? इस प्रश्नके पूछने पर वह बोली कि वह बहुत आनन्दसे है और वह मैं ही हू, मुझे तो सब प्रकारका आनन्द है। इस प्रकार चरणोमे नमस्कार कर अपना पूर्णवृत्तान्त सुना दिया कि मैं अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करती हुई बहुत सुखसे हू, आप मेरी ओरसे कोई चिन्ता न करें। यह सुन भावदेवजी अति प्रसन्न हुए प्रकटमे बोले कि आज मैं बहुत प्रसन्न हू, मेरा शल्य जो मुझे विकल्पोमे फसाये हुए था कि पता नही तुम कैसी होगी, समाप्त हो गया और इस प्रकार नि शल्य हो विहार कर गये।

भैया ! जिस प्राणीको अपने स्वतन्त्र स्वरूपका ज्ञान हो जाता है वह अपनेमे ही लीन रहा करता है। पापपरिणामोसे जो बन्ध होता है वह भव-भवमे दुखी करता है और यदि अपनी आत्माके स्वभावका अमृतपान कर सके तो सब आनन्द प्राप्त होगा। मैं द्रव्यक्षेत्रकाल भावकी अपेक्षा परिणमनशील स्वयमे हू, परमे नही। मैं अबन्ध हू, बधा हुआ नही हू। जैसे गाय रस्सीसे बन्धी है यह लोक व्यवहार है, परन्तु वास्तवमे तो रस्सी रस्सीसे बन्धी हुई है, गायका गला बीचमे है, उसी प्रकार विचार करे कि मैं नियत हू ज्ञानवान् हू बन्धा हुआ नही हू। तब यह सब सम्बन्ध अपने आप छूट जावेगे। श्रद्धासे नही चूकना चाहिये। खाना पीना भी करते रहो, सब काम करते हुए भी अपनी श्रद्धाको मत छोडो। क्योकि खानेके बिना आजीविकाके बिना भी कार्य नही चलेगा, अत ये सब करते हुए भी अपनी श्रद्धा बराबर बनाये रखो कि मैं मेरा हू, चैतन्यस्वरूप हू, ज्ञानमय हू। मैं अपनेमे हू, मुझसे बाहर मेरा कुछ नही और किसीका मेरेमे कुछ नही। और यदि यह श्रद्धा नही हुई तो भगवान्की मूर्तिके नीचे भी क्यो न बैठो वहा भी सुरक्षित नही रहोगे।

अपने कर्मोके क्षयके लिए मैं उन सिद्धसमूहोको नमस्कार करता हू। जो कर्मोका जाल है वही विपत्ति है। कही भी जावे यह प्राणी मरकर कर्मोका जाल साथ लगा ही है। सिद्धभक्तिका प्रयोजन ही कर्मोकाक्षय है। यह सब जो वैभव आज प्राप्त है कमानेसे या परिश्रमसे नही प्राप्त हुआ, बल्कि आत्माके निर्मल परिणामोही का ही फल है। वर्तमानमे चाहे निर्मल परिणाम न हो किन्तु यह वैभव निर्मलपरिणामोका ही फल है। आज जो अन्यकी अपेक्षा सब कुछ वैभवादि है वे पूर्वभवके पुण्यकर्मकी ही कमाई है, आत्माके निर्मलपरिणामोका ही फल है और यदि सामर्थ्य होते हुए वर्तमानमे भी निर्मलता लावे, उपकार करे, सबको क्षमा करे, सबको अपनी तरह ही माने, सब सुखी होवे, इस प्रकारके भाव रखने, इस प्रकारके निर्मलपरिणामोसे आगे भी ये पुण्य कमाई चलती रहेगी। अन्यथा मलिन परिणामोसे तो बधा हुआ पुण्यकर्म भी नष्ट हो जावेगा। प्रतिभास करनेके अतिरिक्त अपनेको अन्यका कर्ता समझना ही विपत्ति है। मेरा स्वभाव प्रतिभास करनेका ही है, अन्य कुछ नही। जिन्दा होते हुए आखबन्द कर रहे यान इन्द्रियोको सयत रखें तो आत्मविभूतिके दर्शन होते है, मरनेपर तो आखें बन्द हो ही जाती है। जिन्दा होते हुए

जो आंखें बन्दकर अपने स्वभावको पहिचाने तो आत्माके वैभवके दर्शन होते हैं। और यदि इन्द्रियजन्य ज्ञानोमे ही फसे रहे तो समझो कि अन्धेरा ही अन्धेरा है अत मैं कर्मोके क्षयके निमित्तसिद्ध समूहोको नमस्कार करता हू ।

सिद्धभगवान् सहज यत्न पूवक अपनेमे ही ठहरते हैं। करने वालेसे देखनेवालेका दर्जा ऊ चा होता है। जैसे बडे कारखानोमे करने वाले होते हैं मजदूर और देखने वाला होता है मालिक। भगवान्का ऐसा विलक्षण स्वरूप है कि वे अपने सहजस्वभावमे विराज रहे हैं करनेका काम उनपर नही है। यदि होता तो वे भी मजदूर होते। घरमे ही देखलो, काम करने वाला मजदूर होता है और देखने वाला निरीक्षण करने वाला मालिक। वास्तवमे देखो तो भगवान् करता भी क्या है ? निश्चयनयसे अपने स्वभावमे स्थित है, व्यवहारनयसे लोक अलोकको साक्षात् देख रहे हैं। किन्तु परपदाथमे तन्मय नही है। वैसे परपदाथमे तो हम भी तन्मय नही हैं किन्तु उपयोगसे अपनी कल्पनासे जुटे हुए हैं। जो परपदाथमे तन्मय होते तो परके सुखसे सुखी और परके दु खसे दुखी होते किन्तु वास्तवमे देखा जावे तो ऐसा कोई आता नहीं है, केवल जीव कल्पनासे ही ऐसा मानता है। मोहभावके कारण अन्यका दु ख देखकर अपना ही दु ख बढाता है और सुख देखकर अपने सुखसे सुखी होता है।

एक सेठ था उसके यहा जो सेठानी थी उसपर सेठ बहुत बिगडा था। सेठ उसे बहुत तग करता था। आखिरकार वह मर गयी दूसरी सेठानी आयी वह भी मर गयी, तीसरी जो सेठानी आयी उसे पास पडोस वालियो ने समझाया कि सेठजीकी आज्ञा न मानने पर गुजारा होना बहुत कठिन है। सेठजी बहुत हैरान करते हैं आदि-आदि। सेठानी चतुर थी। एक दिन सेठजीके सरमे दद हुआ। सेठजीने तुरन्त सेठानीके पास नौकर भिजवाया कि सेठानीको जल्दी बुलाकर लाओ। सेठानीने कुछ अपनी ऐसी स्थिति बनायी कि झूठमूठ बहुत बीमार बन गयी और नौकरसे कहा कि जाकर कहो कि सेठानी बहुत बीमार है मालूम नहीं क्यो कांप रही है। उनका पूरा शरीर काप रहा है। सेठजीने जब सुना तो तुरन्त आये और आकर बोले कि क्या बात है ? तुम्हे क्या हो गया ? सेठानी बोली कि मुझे तुम्हारे सरमे दर्द सुनकर इतने जोरका दर्द हुआ कि उठना कठिन हो गया। हारकर सेठजी बोले कि मैं अब ठीक हू । आत्मा तो अपनेमे परिपूण है, वह न किसीके दु खसे दुखी होता, न सुखसे सुखी।

निश्चयसे भगवान् अपनेमे स्थित है और व्यवहारसे लोक अलोकके पदार्थोंको जानते हैं। किन्तु फिर भी उनमे तन्मय नही होते। हम भी परमे तन्मय नहीं हैं केवल कल्पनासे ही यह सब होता है। यह जो सहजस्वभाव है यदि इसका पता लग जावे तो इससे बडा वैभव दुनियामे क्या है ? मेरा बाह्य पदार्थोंमें कुछ भी तो नाता नहीं है। उनके घटनेसे न मेरा कुछ घटता है, उनके बढनेसे कुछ बढता ही है। यदि मेरी समझमे मेरा सहजस्वभाव आ गया तो सम्पन्न हू अन्यथा तो नरकीट ही हू ! किया क्या—पैदा हुए जवान हुए, शादीकी, मलिन परिणामकर मर गये। एकका भाई मर गया, तो जब पडोसी बैठने आये तो पडौसियोने पूछा कि तुम्हारे भाई तुम्हारे लिए क्या कर गये। तो वह बोला—"क्या बतायें यार क्या कारोनुमा कर गये। बी०ए० किया नौकर हुए पेन्सन मिली और मर गये। असली बात तो भैया ! परिणामोकी है। आत्मामे जो प्रताप आया वह परिणामोंकी स्वच्छतासे आता है जो अपने को परभवमे भी शान्ति देता है। अत यही विचार करना चाहिये कि मेरे स्वप्नमें भी खोटे परिणाम न हो। यदि स्वप्नमे भी त्यागीके खोटा परिणाम आ जाता है तो उसका प्रायश्चित करना पडता है।

हे नाथ ! स्वप्नमें भी मेरा खोटा परिणाम न हो किसीके प्रति। यदि इस प्रकार भाव रखकर जीवन बीत जावे तो इससे बढकर खुशी क्या है ? तभी तो ज्ञानी पुरुषोने छह खण्डका भी राज्य त्यागकर अपनी आत्माका आराधन किया। अत यही सिद्ध हुआ कि सिद्ध भगवान् ज्ञायकस्वभावमें ही ठहरते हैं तथा व्यवहारमे लोक अलोकके सब पदार्थोंको प्रत्यक्ष जानते हैं। मोह बढा तो ये बातें ठीक जचती है किन्तु ऐसा है नही ! भीतरमें जो मिथ्या सस्कार बन गये यही अन्धकार है, अन्याय है, निश्चयसे हम परपदार्थोंमे नही ठहर रहे हैं, किन्तु अपनेमे ठहर रहे

हैं। यदि परपदार्थमे तन्मय हो जावे तो परपदार्थ और मैं एक हो जाता। किन्तु है ऐसा कुछ नही और यदि हम परपदार्थोंको जानते हैं और तन्मय हो जाते हैं तो दूसरेका बुखार हमे चढना चाहिये था। यदि ऐसा वास्तवमे होता तो अच्छा था तब यह तो डर लगता कि मैं परपदार्थमे तन्मय होऊंगा तो उसका बुखार भी मुझे हो जावेगा। श्रद्धाका निर्मल होना स्वयके ही काम आवेगा। वस्तुका यथार्थस्वरूप प्रतीतिमे लाना यही श्रद्धा है।

प्रत्येक पदार्थ अपने चतुष्टयमे ही है। किसीका किसीमे कुछ नही। व्यर्थमे, मेरा कहकर पिट रहे हैं। एक लडका था, उसका नाम था रामू। उसने एक दुकानसे एक रसगुल्ला खरीदा। सामने धोबी कपडे धो रहा था, उसका लडका खडा हुआ था, इसने वह रसगुल्ला धोबीके बालकको खिला दिया। धोबीके बालकको वह मीठा लगा तथा वह अपने पिताजीसे उसकी याचना करता हुआ रोने लगा। धोबीने उससे पूछा कि भैया! यह यहा मिलता है, क्योकि उसने पहिली बार देखा था, अत उसके विषयमे ज्ञान न था)। रामू बोला उस बगीचेमें चले जावो वहा मिलते हैं। धोबी बोला कि भैया मैं इसे बगीचेसे रसगुल्ला दिलवाऊ अत तुम मेरा गधा, कपडे लोटा आदि सब सामान देखते रहना तथा जाते हुए पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? वह बोला मेरा नाम कल परसो है। धोबीके जाते ही उसने बढिया कपडे पहिने, लोटा लिया और आवश्यक सामान ले आगे चल दिया। जब उस धोबीको वहा रसगुल्ले न मिले तो वह वापिस आया और उस चालाक लडकेको व अपने कपडे व सामानको न देख चिल्लाने लगा कि मेरे कपडे कल परसो ले गया, जनता इकट्ठी हुई और उसीको ही मूर्ख बताया। वह लडका आगे चला तो उसे एक घुडसवार मिला। उसे लगी हुई थी प्यास। वह बोला कि भैया जरा मेरा घोडा पकडना मैं तुम्हारे लोटेसे पानी पी आऊ और जाते जाते बोला कि तुम्हारा नाम क्या है? वह लडका बोला—मेरा नाम 'कर्ज देनेमे है। जब वह पानी पीने चला गया तो इसने घोडे पर चढ एड लगायी और घोडा भगाकर लेगया। आगे गावमे जाकर शाम होने पर एक धुनियाके घर जाकर मा से बोला कि मुझे एक रातके लिए जगह दे दो। धुनेनीने ठहरा लिया। वह पासकी बनियेकी दुकानसे सामान लाकर खाने लगा और कीमत चुकानेके लिए बोल दिया कि प्रभातमें चुका दूंगा। नाम पूछनेपर बताया कि मेरा नाम "मैं था" है। बुढियाके नाम पूछनेपर बताया था कि मेरा नाम "तू ही तो था" है। उसने खाना खाया बनाया और जठन रूईपर फेंक दी बिना बनियेके पैसे दिये चला गया। कुछ समय बाद धुनिया उस घर मालिक, जिसमे वह लडका ठहरा था, आया और रूईकी यह हालत देखकर बोला कि यहा कौन आया था। धनेनी बोली 'तू ही तो था।' धुनिया बहुत नाराज हुआ और उसकी पिटाई करने लगा। बनियेने जब यह दशा देखी तो उसे दया आयी, उस लडकेने अपना नाम "मैं था" बताया था, अत वह जाकर बोला कि भाई जो ठहरा था वह 'मैं था" धुनियाने उसकी पिटाई शुरु कर दी।

जगत्के जो पदार्थ हैं इनके ये ही स्वामी हैं मैं कुछ नही, ऐसा विचार करना चाहिये। किन्तु ऐसा न करके हम विकल्प करते हैं, कि मैं हू ये मेरा है आदि आदि। परिणमन तो हो रहा है निमित्तनैमित्तिक पाकर किन्तु इस जीवको लगा यही है कि मैं था, मेरा है और ये ही विपत्तिका कारण है। अत ऐसा विचारे कि मैं जानता तो हू किन्तु उनमे तन्मय नही हू। मैं भी सिद्धोकी तरह निश्चयसे अपनेमे ही अवस्थित हू। सिद्धोको नमस्कार करके अब श्री जिनेन्द्र अरहतोको नमस्कार करते हैं।

केवलदपणणाणमस्य केवलसुक्खमहाव।
जिणवर वदउ भत्तियए जेही पयानिय भाव ॥६॥

अभी तक सिद्ध भगवानका वर्णन किया गया। सिद्ध भगवान जो शरीर रहित हैं उन्हे नमस्कार करके अब सिद्ध स्वरूपका प्रतिपादन करने वाले अरहन्त भगवानको नमस्कार करते हैं। जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल सुखके स्वभाववाले हैं उन्हे मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हू। जो आत्मा अपने ज्ञानदर्शन शक्तिमय हो गये हैं उन्हे

ही तो जिनवर कहते हैं। वह अलौकिक शक्ति जो उनमे है, अपनेमे भी है किन्तु हम उपयोग नही लगा रहे हैं। सबसे बडा क्लेश ममता है। कोई अपना दु ख सुनाने बैठ पूरी कथा सुनाये, आपको उस दु खका कारण ममता ही मालूम होगा। जितना दु ख होता है वह इसी ममताके कारण होता है। परपदार्थोमे रागद्वेषकी बुद्धि छोड दें तो ये सब दु ख क्षणभरमे समाप्त हो जावे। त्यागका उपाय यही है कि अपने आपके सहजास्वरूपके दर्शन करे। अत जो जीव अनन्तचतुष्टयरूप हो गये उन्हें मैं नमस्कार करता हू। नमस्कारका अर्थ है, नमना या झुकना। अत मैं उन्हे, जो अनन्तचतुष्टयको प्राप्त हो गये हैं, नमता हू झुकता हू, मेरा सर्वस्व यही है। नमनका मतलब समवशरणमें प्राप्त करना नही कहा है बल्कि अभेदरत्नत्रयात्मक जो भाव है उसे परिणत करना कह रहे हैं। उपदेशमे जो कहा जावे, वे ज्ञान उपदेश नही, जो तत्व कहा गया है जो स्वरूप कहा गया है उसको ग्रहण करनेका नाम ही उपदेश है। देशनालब्धि तत्वग्रहणकी शक्तिको कहते हैं। कानसे सुननेका अर्थ उपदेश नही बल्कि तत्वको पकडनेका, धारण करने का नाम उपदेश है। अभेदरत्नत्रयात्मक परमात्मतत्वका सच्चा ज्ञान यही है। यदि कीचड वाले जलका स्वभाव कोई पूछे तो भी वही होगा जो स्वच्छ जलका स्वभाव है। अर्थात् जलका स्वभाव स्वच्छ है, चाहे उस कीचड वाले जलमे बिल्कुल भी स्वच्छता व्यक्त न हो। उसी प्रकार हमारा तुम्हारा भी स्वभाव सिद्ध भगवानके जैसा है।

मोही जीव जिस शरीरमे बैठा उसीको समझता है। किन्तु उसे नही मालूम कि यह शरीर उसी प्रकार है जैसे विष्टासे भरे हुए टोकरे पर स्वच्छ तौलिया ढका हुआ है। छहढालामे बताया है कि मलराधरुधिर मल थैली, कीकस वसादितै मैली। नवद्वार वहैं घिनकारी, असदेह करै किमि यारी॥ अर्थात् हे प्राणी! यह शरीर अनेक रोगो का घर है, इसमे खून, पीप, मास, हड्डी आदि अनेक अपवित्र चीजें भरी हुई हैं तथा नौ द्वार घिनावने बहते रहते है ऐसे घिनावने शरीरका तू क्योकर स्नेह करता है। एक भगिन थी वह विष्ठेका, टोकरा लिये जा रही थी। एक आदमी उसके पासको निकला तो उसे बदबू आई, दूसरोको बदबू न आवे इसलिए टोकरेके ऊपर एक स्वच्छ कपडा ढक दिया। जब वह कुछ दूर चली तो तीन आदमी उसके पीछे लग गये कि न मालुम यह इसमें क्या लिये जारही है? भगिन बोली कि तुम मेरे पीछे क्यो पडे हो इसमे तो विष्ठा है। उनमेसे एक तो यह सुनकर ही वापिस लौट गया। फिर कुछ दूर जाकर वह बोली कि तुम भी लौट जावो इसमे कुछ नही है। उन्होंने कहा हमे विश्वास नही। अत उसने कपडा उघाडकर दिखा दिया। दूसरा आदमी देखकर वापिस हो गया। किन्तु तीसरा व्यक्ति बोला कि नही मुझे विश्वास नही मैं तो सू घ कर वापिस जाऊ गा, और जब उसे सू घकर विश्वास हुआ तब वापिस लौटा।

इसी प्रकार जगतके प्राणियोकी दशा है। पहिले नम्बरके तो वे हैं जो ऋषियोके उपदेशसे ही अपनी आत्माके कल्याणमे लग जाते हैं। दूसरी श्रेणीमें आते हैं जो जीवोकी करुण दशा देखकर, जो कि कष्ट उठाये होते हैं, विषयवासनाओमे दु खी रहते हैं, अपनी आत्माके कल्याणमें लग जाते हैं। किन्तु तीसरी श्रेणीमे वे हैं जो उनमे फसकर, विषयवासनाओको, विषयभोगोको भोगकर यदि वैराग्य हो गया तो अपनी आत्माके कल्याणमे लग जाते हैं अथवा उन्हीमे लिप्त रहते है। मेहतरका अर्थ है कि सबसे बडा। वैसे है व० कामकी अपेक्षा सबसे छोटा किन्तु छोटे को छोटा कहनेमे उसे दु ख न पहुचेगा अत महत्तर कह दिया। जो विवेकी हैं उन्हे यह शरीर सुन्दर नही लगता। वे इसकी सुन्दरतामे अपना समय बर्बाद नही करते, किन्तु जो अविवेकी हैं वे शरीरको बहुत सुन्दर समझते हैं और उसे ही सजानेमे लगे रहते हैं। अत उस अभेदरत्नत्रयको प्राप्त करनेका उपाय यही है कि देहकी ममता छोडकर सुख दु खमे, जीवन मरणमे, लाभ अलाभमे, शत्रु मित्रमे समानताका भाव रखे। अपने स्वभावका जिसका ज्ञान हो गया उसे सब कुछ प्राप्त हो गया। यदि अपनेसे प्रतिकूल भी कोई बोले, निन्दा भी करे, गाली भी दे तो भी समता धारण करें, द्वेष मनमे न लावें। जीवन मरणमे भी वह भावे कि इस जीवनसे क्या और आगे मिलेगा उससे भी क्या? मैं तो अमर हू, चैतन्यस्वरूप हू। सम्यग्ज्ञान बना रहे तो यहा भी लाभ और आगे भी। यदि ज्ञान न रहा

तो कही भी सुख नही । आत्माका अनुभव करने वालेको कितना ही कष्ट क्यो न मिले किन्तु उसके कष्टसे अमृत ही झरता है। ध्यान एकाग्र हो जाने पर तो ध्यान अवस्थायें होने वाली ध्यान वायु, वह श्वास नाभिके नीचेसे होती हुई पीठकी ओर जाकर ब्रह्म छिद्रसे बडी सूक्ष्मतासे निकलती है, फिर वहा कागसे जो पेय झडता है वही अमृत है। है तो वैसे वह भी पानी ही किन्तु वह योगामृत है।

भैया! विपरीत अवस्थामे भी समान भाव धारण करना चाहिये। ऐसा करनेसे निर्विकल्पक भाव प्राप्त होता है। जो निर्विकल्पसमाधि द्वारा अनन्त चतुष्टयको धारण कर सिद्ध हो गये मैं उन्हे नमस्कार करता हू। विशेष रूपसे कर्मोंका अभाव होने पर मोक्ष होता है। ऐसे मोक्षका, सिद्धोका जिन्होने प्रतिपादन किया उन्हे मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हू। मैं अन्य कुछ नही, मैं तो चैतन्यस्वरूप हू, एक हू, ऐसी परिणति अभेदरत्नमय है। जिसने यह बताया उन जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार करता हू।

ये जिनेन्द्र देव किस पद्धतिके अनुसरणसे जिनेन्द्र हुए हैं? इन्होने पहिले तो जिनेन्द्रका उपदेश पाया जिसमे केवल ज्ञानादि अनन्तचतुष्टयस्वरूप परमात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान और आचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक होनेका आग्रह किया गया है, जिसमे सुख दुख, जीवनभाव, लाभ अलाभ, शत्रु मित्रमे समान परिणाम रखने रूप वीतराग निर्विकल्प समाधिकी शासनाकी गई है। पश्चात् इस अभेदरत्नत्रयके पालनके परिणाममे अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शन केवलानन्द व केवलशक्तिमय हुए। अनन्त चतुष्टयस्वरूप जिनेन्द्रदेवसे निर्वाञ्छरिक उपदेश प्रकट हुआ जिसमे यथाविधिवत् जीवादिक पदार्थोका प्रकाशन हुआ, केवल ज्ञानादि अनन्तगुणमयस्वरूपके लाभरूप मोक्षका वर्णन हुआ और शुद्ध आत्मस्वभावके यथार्थ श्रद्धान ज्ञान आचरण रूप रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गका विवरण हुआ। ऐसे श्री जिनेन्द्रदेवको मेरा भाव पूर्वक नमस्कार हो।

भैया, अरहन्तदेवके गुणोके स्वरूपकी भाति शुद्ध आत्मस्वरूप ही उपादेय है—यह भाव इस गाथाके मर्मरूप जानना। अब इसके बाद भेदरत्नत्रय व अभेदरत्नत्रयके आराधक आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठीको नमस्कार किया जारहा है।

जे परमप्पु णियति मुणि परमसमाहि धरेवि।
परमाणदह कारणिण तिण्णिवि तेवि णवेवि ॥७॥

अरहन्त व सिद्धको नमस्कार करके अब आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुको नमस्कार करता हू। ये अभेदरत्नत्रय और भेदरत्नत्रयके आराधक हैं। शुद्धात्मस्वरूपके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र चरणके अभेद परिणमनका नाम अभेदरत्नत्रय है तथा सप्ततत्त्वोका श्रद्धान, ज्ञान और व्रत सयमोका आचरण भेदरत्नत्रय हैं। सभी साधु सतोने इस शुद्ध चिदानन्दमय एकत्वभावका आश्रय लिया है। यह शुद्धात्मतत्व द्रव्यकर्म व नोकर्मसे रहित है रागद्वेषादि भावकर्मसे रहित है मतिज्ञानादिक विभावगुणपर्यायोसे रहित है, नरकादिक विभावद्रव्यपर्यायसे रहित है। यही शुद्धात्मतत्व भूतार्थ है और इस परमार्थरूप समयसारशब्दवाच्य सवप्रकार उपादेय रूप शुद्धात्मतत्वसे विपरीत जो कुछ भाग हैं वह सब हेय हैं। ये साधु परमेष्ठी निश्चय पञ्चआचारोके पालनमे युक्त हैं। चल मलिन अगाढ दोषरहित निश्चयश्रद्धानरूप सम्यक्त्वमे आचरण होनेको दर्शनाचार कहते हैं। सशय विपर्यय अनध्यवसाय दोषरहित स्वसवेदन ज्ञानमे आचरण होनेको ज्ञानाचार कहते हैं। शुभ अशुभ सकल्प विकल्प रहित नित्यानन्दमय निजस्वरूपकी स्थिरतामे आचरण होनेको चरित्राचार कहते हैं। परद्रव्योकी इच्छाके निरोधपूर्वक सहज आनन्दरूपसे प्रतापमय होनेमे आचरण होनेको तपाचार कहते है और अपनी शक्ति न छुपाकर शुद्धात्मस्वरूपमे आचरण होनेको वीर्याचार कहते हैं इन निश्चय पञ्च अचारोमे साधु उद्यत रहते हैं और इन्ही पाच बाह्याचारोमे भी सावधान रहते हैं। निःशकितादि अष्टगुणोके आचरणको बाह्यदर्शनाचार, कालविनयादिक अष्टज्ञानाङ्गोके आचरणको बाह्यज्ञानाचार, महाव्रतसमिति-

गुप्तिरूप चरित्रके आचारको वाह्यचरित्राचार, अनशनादिक द्वादश तपोको वाह्यतपाचार और इन वाह्याचारोंमें शक्ति न छुपानेको वाह्य वीर्याचार कहते हैं। यह निश्चयवाह्याचार सभी मुनियोको समान होता है।

उनमे जो प्रधान है, आचार्य हैं वे शुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी आत्मतत्त्वके श्रद्धान ज्ञान अनुष्ठानरूप रत्नत्रय का, व इच्छानिरोधरूप तपश्चरणका, शुद्धोपयोगभावनाका, निर्विकल्प समाधिका स्वय आचरण करते है व साधुवों को कराते हैं। जो उपाध्याय परमेष्ठी हैं वे पांच अस्तिकाय, छहद्रव्य, सात तत्व व नवपदार्थोंमे शुद्धजीवास्तिकाय, शुद्धजीवद्रव्य, शुद्धजीवतत्व व शुद्ध जीवपदार्थ नामक शुद्ध आत्मभावको उपादेय कहते हैं और उससे अन्यको सबको हेय कहते हैं तथा श्रद्धात्मभावके श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गका प्रतिपादन करते हैं। साधु परमेष्ठी आदेश उपदेशकी मुख्यतामें न रह कर रत्नत्रय आराधन व निर्विकल्प समाधिकी साधनामे तत्पर रहते हैं। ऐसे भेदरत्नत्रय व अभेदरत्नत्रयके आराधक तीन परमेष्ठियोको मैं नमस्कार करता हू। दुनियांके परपदार्थोंको असार जानते रहो, ये मेरे लिए कुछ नही कर सकते। अपना ज्ञान व आचरण ही सब कुछ है। पूर्व जन्मका भाव निर्मलता से ही तो यह जन्म मिला है। कोई भी ज्ञान जबरदस्ती नही हो सकता। पढना ही यदि शक्तिपूर्वक करना चाहो तो सम्भव नही। उसी प्रकार धन भी जबरदस्ती नही आता, निर्मल परिणाम करो इसीमें सार है। जिनमे सफलता नही उनमे परिणति करना हानि ही उठाना है। फायदा कुछ नही। सदा यही सोचो कि चाहे सब कुछ लुट जावे किन्तु मेरी परिणतिमे खोटा परिणाम न आवे। यदि हित है तो वह परिणामोकी निर्मलतामे ही है। अपने स्वरूप को निर्मल करो तो लाभ है। अत भेदरत्नत्रय और अभेदरत्नत्रयके आराधक आचार्य, उपाध्याय, साधुका गुण स्मरणकर उन्हे नमस्कार कर कहते हैं कि जो मुनि परमसमाधिको धारणकर परमात्माको परमानन्दके लिए देखते हैं, ऐसे तीनो परमेष्ठियोको मैं नमस्कार करता हू।

पचपरमेष्ठीका ध्यान करो तथा अपने सहजस्वरूपका ध्यान करो परमआनन्द मिलता है। और सम्बन्ध तो हेय हैं, परमात्मसम्बन्ध उपादेय है। जैसे कोई ग्राहक कपडा लेने आया उसको सब थान खोल खोलकर दिखाये, उनके पीछे हैरान हुए तीन घन्टे मगजपच्ची भी की किन्तु उसने न लिया तो खेद होता है। इसी प्रकार ५०-६० साल तक जिन्दा रहे आखिरमे सब कुछ छोडकर चले गये। क्योकि लेना देना तो कुछ था ही नही। अत इस समागमसे क्या लाभ हुआ कुछ भी तो नही, यदि सहजस्वरूपका ध्यान कर लिया तो यह सबसे बडा लाभ है। बाकी कुछ नही। व्यवहारमे ही द्रव्यकर्म नोकर्मका सम्बन्ध है किन्तु यह परमात्मतत्त्व दोनोसे रहित है। रागादिकके सम्बन्धसे भी रहित है। मैं क्या हू ? इसका ज्ञान न होने पर ही सब विपदाए आती हैं। यदि अन्तरगमें सहजस्वभावका पता पा लू तो ये सब विपदाए क्षणभरमे दूर हो जावेंगी। मतिज्ञानादि पर्यायोंसे भी रहित ऐसा आत्मतत्व ही उपादेय है। जैसे डरकर वालक अपनी मा के आंचलमे चिपट जाता है तथा अपनेको उस आचलकी छायामे रहकर अपनेको भयसे दूर मानता है। फिर कोई कुछ भी कह देवे अपना उससे बनता विगडता क्या है ? मोह व मूढताके अलावा दु ख ही क्या है ? अत स्वानुभूति रूपी माताकी गोदमे पहुच जावो, और ऐसे पहुचो कि विकल्परूपी लोगोको भी दिखायी न दो। ऐसे किये विना तो भला नही, चाहे अब करलो चाहे वादमे, करना पडेगा ही। ऐसा किये विना गुजारा नही होगा। इसके अलावा सब हेय हैं।

एक लडका था नाम था। उसका रुलिया। उम्र २५ वर्षके आस पास थी, फिर भी वहुत भोला था। एक दिन उसकी वुढिया मा बोली कि वाजारसे जाकर सागसब्जी ले आ। वह बोला मैं रास्ता भूल गया तो क्या होगा ? वुढिया वोली वेटा रस्ता नही भूलेगा। फिर उसके रूठनेपर वुढियाने एक धागा उसके हाथमे बाध दिया और बता दिया जिसके धागा वधा वही रुलिया हो। जब वह वाजारमे गया तो वहां थी भीड। अत भीडके कारण वह धागा टूट गया। जब उसकी नजर अपने हाथ पर पडी तो रोना शुरू कर दिया कि मैं रुल गया। घर आकर

रोता हुआ अपनी मा से बोला कि देखो मा मैंने पहिले ही कहा था ना कि मैं रुल जाऊगा। अब बताओ मैं रुल गया मैं क्या करु ? मा बोली कि बेटा कोई बात नही सो जाओ, मिल जाओगे। जब वह सो गया तो झट उसकी मा ने फिर धागा बाध दिया। उठते ही वह कहने लगा कि मा मैं मिल गया, मिल गया। वह धागा सहजस्वरूपकी दृष्टि है यदि उसको पहिचान लिया तो हम अपनेमे हैं अन्यथा रुलना पडेगा।

भैया! साधुजन जिस निर्विकल्प समाधिको कहते हैं आचरते हैं, साधते हैं वह निर्विकल्प समाधि है, हम सबको उपादेय हैं। यह समाधि ही शुद्धआत्मतत्त्वका साधक है। यह शिक्षा हम इस गाथाके उपदेशसे ग्रहण करें। यहा तक योगीन्द्र देवने योगसाधनोके महान् उपदेशके करनेसे पहिले पञ्चपरमेष्ठियोको नमस्कार किया है। यह पञ्चपरमेष्ठित्व आत्माका ही परिणमन है। अपने आत्माका भी ऐसा परिणमन होगा उस परिणमनको अपने ध्यान मे लेकर अपने आपमे उस पदका निक्षेप करें और इन परम पदोंके आनन्दकी रेखाओका अनुभव करें।

भावि पणविवि पचगुरु सिरि जाइदु जिणाउ।
भट्टपहाररि विण्णविउ विमुल करेविणु भाउ ॥८॥

यहा पचपरमेष्ठीको नमस्कार किया जा रहा है। जिस प्रकार उन्होने परमानन्द रसका स्वाद लिया है उसी प्रकार मुझे भी मिले, अत नमस्कार करता हू। परमरसीभाव होना, उत्कृष्ट समताका भाव होना हा आनन्द है। रागद्वेष ही इसके बाधक हैं, वे इसे चैन नही लेने देते। इनके न रहने पर ही आनन्द मिल सकता है। समता और आनन्द ये दोनों अविनाभावी हैं, अर्थात् एकके होनेपर दूसरा स्वय हो जावेगा। सासारिक सुखोमे आनन्द नही किन्तु क्लेश ही है! वैसे यह जीव विषयभोगोमे रहकर सुख व आनन्द मानता है वह उसी प्रकार है जैसे कुत्ता सूखी हड्डी मिलने पर उसे उठाकर दूर ले जाता है और उसे चबाता है उसके चबानेसे उसके मसूडे फट जाते हैं और खून निकलने लगता है, वह समझता है यह खून हड्डीमे से ही निकल रहा है और उसीमे आनन्द मानता है। सो भैया, सब जीवोमे ज्ञान व आनन्द गुण है। जितना भी ज्ञान आनन्दरूप परिणमन होता है वह ज्ञान आनन्द गुणके कारण ही ज्ञान आनन्दरूप परिणमन होता है। किन्तु मोही जीव वैभव, धन स्त्री आदिसे आनन्द मानता है। उसका विकल्प है कि जो सुख मिलता है वह आनन्दगुणके परिणमनसे ही मिलता है। ऐसा विश्वास मोही, अज्ञानी जीव नही करते अत दुख भोगते हैं। किन्तु पचपरमेष्ठी बाह्य पदार्थोमे शरण न मानकर बुद्धि लगाते हैं। निर्विकार निर्विकल्पक होकर परपदार्थोमे उपेक्षा भाव रखते हैं। वे निर्विकल्पकसमाधि, समतापरिणामवाले हैं जिसमे ऐसा आनन्द मिलता है जो कि सत्य है। ऐसे शान्तभाव रखकर वे उनका स्वाद ले चुके, अत मैं भी उसी स्वादकी वाछा से पचपरमेष्ठीको नमस्कार करता हू, उनके सम्पर्कमे रहता हू, निकट रहता हू, सम्बन्ध बनाये रखता हू। जितना उनका सम्पर्क मिले, आचरण मिले उतना ही सम्पर्क बनानेका प्रयत्न करता हू। यही मेरा नमस्कार करनेका प्रयोजन है।

वास्तवमे अपनी आत्माके अन्दर बसा हुआ ही यह ध्रुव चैतन्यस्वभाव उपादेय है। इससे अन्य सभी हेय हैं। अपने आपमे बन्धा हुआ स्वरूपमय निजज्योति है वह ही साध्यरूप है और जिन्होने ऐसा कर लिया वे ही पच-परमेष्ठी हैं। जैसे कहते हैं कि हमारा परमउपकार अरहन्त भगवान्ने किया, उन्होने ही हमे उपदेश दिया, उन्हीकी दिव्यध्वनिसे ये सब शास्त्र रचे गये। हमारे परमउपकारी आचार्य उपाध्याय सर्व साधु हैं। किन्तु यह साक्षात् सम्बोधन है। साक्षात् उपकार परमेष्ठिका ही है। वे कैसे हैं—जो निस्पृह हैं, जो सासारिक भाव नही सोचते, जो अपनेको आपमे पाकर अपना स्वाद लेते हैं यदि ऐसे परमेष्ठी मेरी दृष्टिमे बने रहे तो मुझे भी स्वाद मिल जावेगा। क्योकि जैसी सगति होगी, वैसी ही भावनाए बनेंगी। जो महापुरुष हुए हैं क्या वे जन्मसे ही महान् हुए हैं, महान् सम्पर्कसे ही महान् हुए हैं। ये डाकू आदि क्या जन्मसे ही अपना नाम डाकू रखवाकर आये नही, इन्होने अपन

सम्पर्क ही ऐसा रखा जिसमे लूटने मारनेके विचार बनें सो वे डाकू हो गये। अच्छी सगतिसे अच्छे विचार बनते हैं। अच्छेसे अच्छा बनता है और बुरेसे बुरा। यही विचारो कि मैं तो यहा अपनी आत्माका कल्याण करने आया हू, कर्मोंकी निर्जरा करने आया हू जिसका ऐसा विचार हो गया उससे बढकर दुनियामे कुछ नही है। जिस समय सासारिक भोगोसे हटकर आत्मामे उपयोग लग रहा है वह घडी धन्य है। श्री अकलक देव, कुन्दकुन्दाचाय आदि गुरुवोंके निकट रहनेका मौका जिन्हें मिला होगा वे अपनेको कितना धन्य नही मानते होगे। जिनके शब्दोको सुनकर यही भाव बनते हैं कि यदि तुम आज होते तो तुम्हारे चरणोमे पडे रहते चाहे फिर शरणमे लेते या दुत्कार देते, किन्तु आश्रय न छोडते और जिनको निकट सम्बन्ध मिल गया होगा वे तो कृताथ हो गये होगे।

भैया! अपने आपमे बसे हुए परमात्मतत्वकी दृष्टि ही सब कुछ है अन्य कुछ नही। जीविकोपाजनके लिए जो जो विकल्प किये जा रहे हैं वे सब दु खदायी हैं उनसे लाभ कुछ नही। गृहस्थ तो स्वाद ले लेकर दुखी हो रहे है किन्तु यदि त्याग करनेके बाद भी किसी स्त्री आदिककी इच्छा रखी तो कल्याण नही। क्योकि गृहस्थी तो वैराग्य होने पर कल्याणके मार्गपर लग सकता है किन्तु यदि त्यागी अपने त्यागको ही छोड देगा तो अकल्याण ही है अन्य कुछ नही। यदि उपादेय है तो बस चैतन्यस्वभावकी दृष्टि है, अन्य कुछ नही! साधु परमेष्ठि पचाचारके पालनमें लगे हुए हैं और गृहस्थके पचसूना लगे हुए हैं। तीन शल्योसे रहित होनेके कारण जिनका श्रद्धान निश्चित है वह दर्शनाचार कहलाता है। कोई भी उपद्रव क्यो न आवे तो भी वे अपने श्रद्धानसे नही डिगते। श्रद्धान करके जो निश्चय हो गया है जो ध्यानमे लग रहे हैं। आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु तो अपने स्वभावके दर्शन करनेमे, निकट रहनेमे, आनन्द लूटनेमें नहीं अघाते और यह मोही जीवने भी यह कार्य किया। उससे हटकर वह किया, खानेमे आनन्द नही आया तो आराम किया उसमे आनन्द नही मिला अन्य काय किया। तात्पर्य यह कि आनन्दकी खोजमे यत्र तत्र भटकनेमें नही अघाता। सासारिक बाह्यपदार्थोंमे एकसे दूसरेमे दु खी होता फिरता है किन्तु उसे सच्चा आनन्द प्राप्त नही होता। प्राप्त होगा भी कैसे? यदि सच्चा आनन्द है तो वह है अपनी सहजस्वरूप, चैतन्यस्वरूप आत्मामे और वह तभी होगा जब मोह व अज्ञान छोड देगा।

जगलमें जो साधु अकेले रहते हैं वह भी तो अपना ही आत्म बल है। अपने सहजस्वरूपके चैतन्यस्वभावके आनन्दमे रत रहते हैं। उन्हे पता ही नही अन्य बातोंको जानते सब हैं किन्तु उनकी ओर परिणमन नहीं होता। यह चैतन्यमे उपयोगका ही तो बल है। तभी तो वे वहा बने रहते हैं। वे दर्शनाचारकी मूर्ति हैं। स्वसवेदन ज्ञान बनाना यही सम्यग्ज्ञान हुआ। उनमे आत्मस्वभावका ज्ञान दृढतापूवक है। न विपरीतता है, न सन्देह है और उस ज्ञानमें ही आचरणरूप परिणमना ज्ञानाचार कहलाता है। वहां जो सुख मिला स्थिरता हुई, उसका अनुभव करना सम्यक् चारित्र है। एकके होने पर तीनो गुण हो जाते हैं। तीनो एक ही हैं और जीवका भला करने वाले हैं।

एक बुढियाके तीन लडके थे, उस गावमे ही एक बनिया भी रहता था। बनिये ने सोचा कि ब्राह्मणको जिमाना चाहिये। वह था लोभी प्रकृतिका अत यही सदा सोचता रहा कि किसको निमत्रण दू जो कम खावे। बहुत सोच विचारकर बुढियाके पास आकर बोला कि बुढिया तेरा सबसे छोटा लडका कहां है? आज उसका हमारे यहा निमत्रण है। बुढिया बोली कि चाहे छोटेको ले जावो, चाहे मझलेको, चाहे बडेको खुराक तीनोंकी बराबर तीन-तीन सेरकी है। उसी प्रकार आनन्द इन तीनोमे है। तीनोसे आत्मीभूत है वह आत्मा। अपने ज्ञाता दृष्टा रूपमें तपते रहना सबसे बडी तपस्या है। कषाय और क्लेश मनमे न आवे इस प्रकारका आचरण करनेमें जो अन्तमनको लगानेमें जो बल लगता है वही तपस्या है। वस्तुस्वभावका यथार्थज्ञान ही हमारा कल्याण करेगा! वही शरण है। इसको अच्छी प्रकार सोच लो। यदि वस्तुका सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर लिया तो समझो सब कुछ मिल गया। वह नहीं हुआ तो समझो कुछ नही किया, जीवन व्यर्थ है। उसका कोई मूल्य नही। जैसे एक न रहने पर आगे कितनी ही बिन्दिया क्यो न बढादो उनका मूल्य कुछ नही है।

भैया, मोहकी छिन्नीको हटादो मोक्ष हो जावेगा। निकटभव्य जो हैं वह ऐसा ही श्रद्धान करते हैं कि जो होना होगा होता रहेगा। सारभूत है तो वह है आत्माका कल्याण—ऐसा पक्का श्रद्धान तुम भी बनालो परद्रव्यकी इच्छा दूर करने पर ही तप मिलेगा। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह यदि इनके उपायोसे भी कुछ कमा लिया तो वह काम क्या आवेगा ? यहा तो वह प्राणी सुख पा ही नही सकता, आगे भी सुख प्राप्त न होगा, शान्ति नही मिलेगी ? बडो-बडोका जीवनचरित्र देखलो, रामचन्द्रजी थे उन्हे बनवास हुआ क्या वे राज्य छोड वन जानेमे दुखी हुए, नही। फिर राज्य मिला तो क्या वें सुखी हुए, नही। यह सब सम्यक्त्वका ही तो प्रभाव था और जो सुख दुखकी अनुभूति हुई वह रागद्वेषसे। शुद्ध आत्मवस्रूपमे स्थिर होनका यत्न करना इस प्रकारका परिणमन वीर्याचार कहलाता है। इस प्रकार पाच आचार्योका पालन करने वाले साधु महाराजोको मरा नमस्कार है।

मैं आचार्योको नमस्कार करता हू। जो परमसमाधिको धारण कर रहे है। जो सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रको प्राप्त कर चुके हैं, धारण कर रहे हैं। दशनाचार आठ प्रकारका है। नि शक्ति आदि आठ अगोका पालन करना ही दशनाचार है। पहिला अग है नि शकित अग, अर्थात् जिनेन्द्रभगवान्के कहे हुए वचनोमे शका करना। इसका यह मतलब नही कि कोई बात समझमे न आव तो भी उसे न पूछना, नही तात्पय यह है कि जैसा तत्त्व बताया गया है उसमे ऐसा न सोचे कि यह झूठा है क्या ? इस लोक परलोकका भय न माने। इसका यह मतलब नही कि किसीका डर न मानकर स्वच्छन्द हो जाव, मनमानी करे, दूसरोको त्रास दवे, नही। यह भय न माने कि मेरा मरण होगा आदि। क्योकि आत्मा तो अमर है। अत अपनको चेतनास्वरूप समझता हुआ अपनी आत्मामे अमर रहे।

जिस प्रकार दशनाचारक आठ अग हैं उसी प्रकार शरीरके भी (१) हाथ (२-४), (५) पीठ दो पैर, (६) मस्तक, (७) वक्षस्थल, (८) नितम्ब ये आठ अग हैं। जिस प्रकार इन आठ अगो बिना शरीर नही उसी प्रकार आठ अगोके बिना सम्यक्दर्शन नही कहलाता। वे आठ अग इस प्रकार हैं—(१) नि शकित (२) नि काक्षित (३) निर्विचिकित्सा (४) अमूढदृष्टि अग (५) उपगूहन अग (६) स्थितिकरण अग (७) वात्सल्य अग (८) प्रभावना अग। इस प्रकार ये दशनाचारके आठ अग हैं। सप्नमे भय न होता, जिनेन्द्र भगवान्के वचनोमे शका न करना। चर्चा व समझनेके लिए की गयी शका दूसरी बात है। किन्तु जो सात तत्व तथा और और बातोका सूक्ष्म उपदेश दिया है उसमे ठीक है या नही इस प्रकारकी शका न करनी चाहिये। किसीके प्रति उद्दण्डताका तात्पर्य भयरहित नही है। जो उद्दण्डतासे या गवसे किसीके साथ पेश आवे उसे तो अपन स्वरूपका ही ज्ञान नही है। यहा तो चर्चा उन जीवो की है जिन्होने अपने स्वरूपको पहिचान लिया है। उन्हे सासारिक, आजीवकाक प्रति, आदि आदि भय नही। क्योकि वह जानता है कि आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र है उसमे किसी भी प्रकारका कि आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव-मात्र है उसमें किसी भी प्रकारका उपद्रव नही है और यह व्यावहारिक जीवन तो कर्मोके आधीन है, जो होना होगा वह होता रहेगा भय कैसा ? इसी प्रकार व ज्ञानी जीव परलोकका भी भय नही मानते। लोग समझते है कि मेरी दुर्गति न हो, अगला भव न बिगड जावे इस प्रकारका भय मानते हैं, किन्तु धर्मात्मा इस प्रकारक विचारको मिथ्यात्व समझते हैं। उसे परलोकका, इस भवका भय हो नही है। मेरा जो चैतन्यस्वभाव है वही मेरा इहलोक, वही मरा परलोक है। यदि वह मेरी दृष्टिमें है, उपयोगमे है, तब तो ठीक है। परलोक हो क्या कुछ भी उसमे उपद्रव नही कर सकता। वेदनासे प्राणी तडफडाते हैं किन्तु यह वेदना मेरा स्वरूप नही, मेरेमे वेदना नही, मेरा शरण मैं ही हू। भय्या इन्द्रियोको एकाग्र करके, इन्द्रियोको वशमे करके तो अपनेमे दृष्टि करो बाहर कुछ नही। तेरे अन्दर ही सब कुछ है। यदि प्राणी ऐसा सोचता है कि मैं सुरक्षित नही। मकान ठीक नही है। दरवाजे आदि भी टूटे पडे हैं, कोई भी घुसकर मुझे त्रास दे सकता है। किन्तु ऐसा सोचना दु खका ही कारण है क्योकि तेरी आत्मामे तो किसी

भी उपद्रवका प्रवेश नही। यदि तेरा ध्यान, तेरी दृष्टि आत्मा पर है तो और तो क्या, मरणका भी भय न रहेगा क्योंकि मैं तो इस शरीरमे भी पूर्ण हू, छोडकर इस शरीरको जाऊगा तो भी पूर्ण हू। अत यदि मरणभय करें तो वह वृथा है, मिथ्यात्व है। भय्या मेरे प्राण तो ज्ञान और दर्शन हैं। मैं तो ज्ञाता दृष्टा हू। ज्ञानी जानता है कि इस आत्मामे किसी भी उपद्रवका प्रवेश नही है। इस प्रकार नि शकित अगका पालन करना चाहिये।

भैया! जगत्के प्राणियोमे छटनी न करो, मोह न करो कि यह मेरा है। बाह्यपदार्थोमे उपेक्षाभाव रखे सो नि काक्षित अग कहलाता है। ग्लानि न करना मुनियोका तन देखकर ग्लानि न करना सो निर्विचिकित्सा अग कहलाता है। कुगुरु, कुदेव कुधर्मको न मानना उन्हे नमस्कार न करना, उसका आचरण न करना खोटे गुरुओको, जो असत्य शिक्षा बताते हैं उनको व खोटे देवताओको व खोटे धर्मको न मानना अमूढदृष्टि अग कहलाता है। अपने धर्मको बनाये रखना जो नियमादि लिये है उनका विधिपूर्वक पालन करना, यदि त्रुटि हो जावे तो प्रायश्चित् करना च्युत होते हुए दूसरोको धर्ममे लगाना स्थितिकरण अग कहा गया है। साधर्मी भाइयोका सत्सग करना, ज्ञानकी बात करना, उनसे निष्कपट प्रेम करना, यो वात्सल्य अग है।

यदि किसी कारण वश अपने धर्मका अपयश हो तो उसे न होने देना सो उपगूहन अग कहलाता है और रत्नत्रयकी उपासनासे अपने धर्मका प्रचार करना, संस्था आदि विद्यालय आदि या मन्दिर आदि बनवाकर या पुस्तक बांट कर किसी भी प्रकार धर्मका प्रचार करना सो प्रभावना अग कहलाता है।

इसी प्रकार अपने शरीरके आठ अगो पर भी यह वृत्त घटित है। जैसे—एक पैरका काम शकारहित होकर आगे बढना रहता है सो हुआ नि शकित अग और पिछले पैरको उठाते समय उस स्थानसे कोई मोह नही होता उपेक्षाके भावसे तुरन्त उस स्थानको छोड देता है सो हुआ नि काक्षित अग। बांया हाथ हुआ निर्विचिकित्सा अग इससे हम बिना ग्लानि किये शौच आदि साफ करनेका कार्य करते रहते हैं बिना ग्लानि अनुभव किये। अमूढ-दृष्टि हुआ दाहिना हाथ, इससे सकेत करके यथार्थ बताया जाता है देव शास्त्र गुरु ही सच्चे हैं आदि। नितम्ब हो गया उपगूहन अग। स्थितिकरण अग हुई पीठ। वात्सल्य अग हुआ हृदय। मस्तक हुआ प्रभावना अग। अत हमारा शरीर भी ८ अगकी बात बता रहा है। वैसे आत्माके निश्चयसे ८ अंग दूसरी प्रकारके हैं शरीरके दूसरी प्रकारके हैं। अपने स्वरूपमे शका नही करना, अपने स्वरूपको छोडकर अन्य प्रभावनामें इच्छा न रखना। उपद्रव आवे, शका आवे फिर भी अपने स्वरूपकी दृष्टि बनाये रखना, स्वभावमात्र ही मैं हू। अन्य प्रकारका मोह न आने देना, अपने चैतन्यका विकास होने देना, विभाव भावोको अपने अन्दर प्रकट न होने देना, अपना स्वभाव स्थिर रखना, इस प्रकारके दर्शनाचारका पालन करने वालेको मैं नमस्कार करता हू।

मेरा स्वभाव चैतन्यस्वरूप है। मैं शरीररहित हू वस्त्ररहित हू, घररहित हू, जो कुछ हू सो चेतनास्वरूप हू। मेरा स्वभाव तो चेतनामय है। जितने भी जगतके प्राणी हैं वे सुख चाहते हैं और दु खसे डरते हैं। उनकी इच्छा है तो केवल यही कि किसी प्रकार सुख प्राप्त हो, दु ख दूर हो। दु खको बढाने वाली कषाय हैं जो दुख देती हैं। जहां कषाय है वहां सुख प्राप्त नही हो सकता। जब तक कषाय जीवमे है तब तक शान्तिके परिणमन नहीं आ सकते। यह शान्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब कषायोको दूर कर दो छोड दो। जो आत्माको कषे उसे कषाय कहते हैं। इससे दूर होनेके लिए वस्तुका सत्य ज्ञान करना चाहिये।

जितने जीव हैं सब अपनी अपनी सत्ता लिए हुए हैं। जैसा भगवानका स्वरूप है वैसा ही इन सब जीवो का भी स्वरूप है। यह जो ससारी जीवोकी दशा हो रही है सब मोहके कारण हैं परपदार्थमे दृष्टि है इसी लिए ये सब दशाए इस जीवकी हैं अन्यथा आत्माका कुछ अपराध नही है। यथार्थ बातको समझते रहो जीवका स्वभाव, लक्षण वही है जो भगवानका है। दूसरोको अपने स्वभावरूप माननेसे अपनेको दूसरेके स्वभावरूप माननेसे ही अशाति

मिलती है। और भगवानका स्वरूप सदृश अपने स्वरूप मात्र अथवा स्वरूप जानो, शान्ति प्राप्त होगी। आज भी बहुतसे ऐसे प्राणी हैं जो सब दुनियाके प्रपच रोजगार आदि छोडकर आत्मकल्याणके मार्गमे लग रहे हैं। और यदि नही लग रहे तो इसमे आत्माका क्या अपराध है? बल्कि दूसरे मजहब वाले तो सब जीवोंमे प्रभुका दर्शन करते हैं। बात करते समय भी इसीका उच्चारण करते हैं कि—हा प्रभो, आप ठीक कह रहे है आदि। तात्पर्य यह कि व्यवहारमे भी इसीका प्रयोग करते हैं किन्तु हम जो स्याद्वादके द्वारा वस्तुका स्वभाव जाननेका दम भरते है, सब जीवोमे यदि भगवानको देखें, भगवानका दर्शन करें तो अपनी ही तो सुध दृढ होगी, फिर कषाय अपने आप नष्ट हो जावेंगी तथा आत्माका दर्शन होगा, अपने आपका सहजस्वरूप मालूम हो जावेगा किन्तु हम तो दूसरे दूसरे रूपमे देख रहे हैं। यदि दूसरोको देखना है तो उन्हे भगवानके स्वरूप वाला समझो और यह सब जो नाटक हो रहा है इसे उपाधिका ही नाटक समझो। इस प्रकार देखना व समझना निकट भव्यकी निशानी है। इसीमे हमे शान्ति प्राप्त होगी। रागद्वेष करनेमे क्या प्राप्त होगा?

भैया! जब यह समझमे आगया कि यह रागद्वेष ही, मोहमाया ही भव-भवमे भ्रमण कर रहा है, दुःख दे रहा है, त्रास दे रहा है, अपने सहजस्वरूपके दर्शनमे बाधक है तब क्यो उसमे लगे रहना? जब तक ज्ञान नही, ठीक है अज्ञानतामे रहा और दुःखको सुख मानकर झेलता रहा किन्तु अब जबकि वास्तविकता समझ गया? वास्तवमे स्वरूप क्या है यह समझमे आजाने पर क्यो मोहमायामे लगा हुआ है, क्यो इनसे चिपक रहा है, बस अब भी यही रट लगाये है कि यह मेरा पुत्र है, यह पत्नी है आदि-आदि। परिणाम भी सोचता है, जानता है, समझता है फिर भी मोहकी इतनी प्रबलता है कि छोडे नही छूटता। अत भैया इसे त्यागकर अपनी आत्माके कल्याणमार्गमे प्रवृत्त हो। यह सब साथ जाने वाली भी तो चीजें नही हैं। क्या ले जाओगे इनमेसे साथ, क्या जावेगा तेरे साथ, सो चेतो, विचार तो करो। ज्ञान हो तो हमारे लिए प्रभुकी छाया है। यदि ज्ञान नही तो भगवानकी हम पर छाया भी नहीं। सदा भटकना ही रहेगा। कोई शरण नही है। यदि ईश्वरको पालिया तो सब कुछ प्राप्त कर लिया।

भैया, हम जो विषयभोगोंमे, ऐयाशीमे, वैभवमे, धनमे मदमे पोजिशन बनानेमे डूबे हुए है यही तो हमे विपदा दे रहे है ये ही विपदाके कारण हैं। इनका मोह छोड दो, इनका त्याग कर दो, उपेक्षा भाव रखो तो ये तो पीछे-पीछे फिरेंगी। ये सब तो नष्ट होने वाले पदार्थ हैं, साथ न जाने वाले पदार्थ हैं तब क्यों इनके पीछे पड़ा हुआ है? क्या रखा है इन सब बातोमे? इनका त्याग करके तो देखो कितना सुख मिलेगा कहा नही जा सकता, उसका वर्णन नही किया जा सकता। एक बार इन सब मोहमायाको छोड कर तो देख! भैया तेरा स्वभाव तो ज्ञाता द्रष्टा है, चैतन्यस्वरूप है, चिदानन्द है फिर क्यो इन सब बाह्यपदार्थोंके पीछे पड़ता है। कल्याण यदि होगा तो अपने सहजस्वरूपके दर्शन करने पर ही होगा। दूसरे जीवोंके प्रति तथा अपने प्रति बस एक यही भावना बनावें कि स्वभाव तो चैतन्यस्वरूप है, किन्तु यह सब जो हो रहा है सब उपाधिका नाटक है। इसमे अन्य कुछ नही। ऐसा समझलें तो किसी भी विषयमे हठ न रहे। यदि हमारी यही हठ रहेगी कि इन सब सुखोंसे, विषयभोगोके झूठे आनन्दसे, पोजिशनसे, वैभवसे, धनसे हम अलग नही रहना चाहते तो निश्चय ही संसारके भ्रमणमे भटकते रहनेका यत्न है, चौरासी लाख योनियोंमे भटकते रहनेका प्रोग्राम है।

भैया सोचो तो ये मानव पर्याय न जाने कितना पुण्य किया था जो प्राप्त हुई। और अब इसको विषय-वासना रागद्वेषमे ही व्यतीत कर देनेमे कोई लाभ न होगा। अत. हे हितैषीजनो, यदि संसारके भ्रमणसे छुटकारा चाहते हो तो अपने स्वरूपको पहिचानो, सब जीवो पर समता भाव रखो। यह सोचो कि दुनियाके सब जीव सुखी हैं। कोई दुःखी न रहे। सब प्राणी मात्र पर क्षमाभाव रखो। आखिर ऐसा सोचनेसे अपना नुकसान ही क्या है और फिर ऐसा सोचनेसे विपदा नामकी, अशान्ति नामकी मनमें कोई बात न आवेगी। यदि हमारे तन मन धन

वचनमे ससारके प्राणी सुखी हो सकते है तो हर्षकी बात है। फिर ये तन, मन, धन वचन तो विनाशको प्राप्त होने ही वाले हैं यदि इनसे किसीको सुख प्राप्त हो सके अर्थात् तनसे परिश्रम करके किसीका उपकार हो सके, मनमे अच्छी भावना आनेसे उपकार हो सके धनका दान देनेमे उपकार हो सके वचनमे अच्छा बोलने पर किसीका उपकार हो सके तो अपना क्या नुकसान ? हर्षकी ही बात है इनमे अपना खर्च भी तो कुछ नही होता। यदि इसका उपयोग किसी भी परमात्मा (उत्कृष्ट आत्मा वाले) के काम आवे तो करो। यह तो ज्यो ज्यो उदारता बरतोगे इनमे त्यो-त्यो ही अपने आप अगले-अगले जन्मोमे उत्तम-उत्तम प्राप्त होता रहेगा। और यदि इनका दुरुपयोग करोगे तो आगे इनसे वंचित होना पडेगा। जैसे पशु पक्षी, कीडे, पेड आदि। हमारे लिए तो एकसे हैं उनमे कौन तो इष्ट और कौन वैरी सब बराबर हैं। अत दुनियाके सब जीव प्रसन्न रहे, सुखी होवे मेरी यही अन्तरगसे भावना रहना चाहिये। भैया इन ससारी जीवोमे छननी मत करो कि ये मेरा है और ये तेरा है। आखिर एक न एक दिन तो इस अवस्थाको पहुचना ही होगा फिर क्यो न अभीसे इसके लिए प्रयास किया जाय। फिर भलाई भी तो इसीमे है। भैया यह सब धनादि वैभव तो स्वय पीछे-पीछे फिरेगा, यदि अपने आत्मकल्याणमे लगे तो फिर इनकी इच्छा हो न रहेगी।

इच्छाके न रहनेका, इच्छा निरोधको तप कहते हैं। बाह्यपदार्थोंमे अपना इच्छाको न जाने देना, बाह्यपदार्थोंकी कामना करना बाह्यपदार्थोंसे इच्छा रोकना सो तप है। इस तपको करनेका उपाय यह है कि ज्ञानदर्शन वाले अपने निज आत्मतत्त्वका सही श्रद्धान करो और उसीमें रमण करो, फिर बाह्यपदार्थोंकी इच्छा अपने आप न रहेगी। कोशिश यही करो, भीतरमें ऐसी ही भावना विचारो—मैं ज्ञाता दृष्टा हू, चैतन्यस्वरूप हू, सहजस्वरूप वाला हू। मेरी सब जीवो पर "सुखी रहें" यह भावना रहे, सब पर क्षमाभाव रहे। ऐसी इच्छा करनेसे बाह्यपदार्थोंमे इच्छा नही रहती किन्तु करे शुद्ध मनसे, अन्तरगसे। यदि अच्छी शानसे रह लिये तो क्या खूब बढ़िया-बढिया भोजन कर लिया तो क्या ? इसके उपाय करनेसे ऐसे साधन करनेसे लाभके स्थान पर हानि ही है। उपाय ऐसा करो कि जिससे शरीरकी स्थिति बनी रहे इसके लिए भोजनका तो प्रयास करो, इसका उद्देश्य यही हो कि शरीरकी स्थिति बनी रहे, क्योकि इसके रहते धर्मसाधन करना है, अत भोजनके लिए तो विकल्प लेवें, किन्तु और पदार्थोंको, बाहरकी वस्तुओको आवश्यक न समझें। इससे अपनी आत्माका ज्ञान बढेगा, यथा समय निर्दोष भोजनके अतिरिक्त और कोई विकल्प मनमे न लाओ, बस सदा आत्माके ध्यानमें रत रहो। तपस्या वही है जो बाह्यपदार्थोंका मोह न रखें उसकी कामना न करे, स्वभाव का उपयोग करके बाह्यपदार्थोंमें मोह न करे।

जबसे त्यागी होते हैं, नियम लेते हैं तभीसे बाह्यपदार्थोंका त्याग हो जाता है। आत्मचिन्तन करना अपने को पहिचानना तभीसे ध्येय बन जाता है जबसे त्यागी हुए। ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार, चरित्राचार इन पाचोका जो अभेदरत्नत्रयरूपमें पालन सो ही समाधि कहलाती है। वास्तवमे इसीका समाधि कहते हैं। किन्तु भेदरूपमे पालन करनेसे समाधि नही कहलाती। अभेदरूप पालनम वीतरागा, निर्विकल्पक समाधि कहलाती है। जो स्वय आचरण करते हैं व दूसरोको कराते हैं, ऐसे ये आचार्यपरमेष्ठी है। वास्तवमे कृपा तो, उपकार तो इन आचार्योंका ही है क्योकि माता-पिता तो जन्मके साथी हैं, माता पिताने तो जन्म दिया इतने ही उपकारक, रक्षक हैं किन्तु जो सन्मार्गपर लगा देवे हम किस लिए आए इसके वास्तविक स्वरूप पर पहुचा देवे वे ही तो वास्तविक हितकारी हैं। जो आत्माको ज्ञानमे लगाये हुए हैं, वे ही वास्तवमे हितकारी उपकारक हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्यने, समन्तभट्टाचार्य, अकलकजीने जो उपदेश दिया उससे हमे शिक्षा मिली है, उसीके द्वारा हम अपनी आत्माके स्वरूप को जान पाये, मुक्तिका मार्ग प्राप्त किया। उनका कितना बडा उपकार है यह बतानेकी सामर्थ्य नही। उनके सामने केवल जन्म ही देने वाले माता-पिताकी क्या कीमत ? वे ही बडे उपकारी जीव हैं, (आचार्यादि) अत मैं उन्हे नमस्कार करता हू।

उपाध्याय परमेष्ठी भी हमारे उपकारक हैं जिन्होने शुद्ध आस्तिकायका, शुद्ध द्रव्यका उपदेश दिया है

व्याख्यान किया है, वह निजात्मा शुद्ध है। शुद्ध आत्माके अतिरिक्त हेय हैं। ऐसा जिन्होने दिखाया—वे ही वडे उपकारक हैं हमारे। द्रव्य क्षेत्र, काल भाव, इनमे द्रव्य जीवपद थ, क्षेत्र-जीव अस्तिकाय, काल-जीव द्रव्य भाव-जीवतत्व, इस प्रकार नाम वताये हैं। द्रव्य नाम पिण्डका है। मोक्षशास्त्रमे वताया है कि "गुणपर्ययवद्द्रव्य"। द्रव्यकी दृष्टिसे देखनेपर पता लगता है कि यह जीव अस्तिकाय है। इतना लम्वा इतना चौडा, इतना ऊचा है, तथा असख्यात प्रदेशो वाला है। कालदृष्टिमे जीवद्रव्य अपार कालका दृष्टिसे है जीवद्रव्य। कालने पर्यायोको ग्रहण किया। भावदृष्टिसे जीवतत्त्व ग्रहण किया गया। इससे स्वरूपका पता लगता है, यह स्वरूपको ग्रहण करता है। इनका जो शुद्ध वर्णन करते हैं ऐसे ये उपाध्याय परमेष्ठी हैं। जो निश्चय मोक्षमार्गका प्रतिपादन करते हैं। निश्चय अभेदरत्नत्रय और भेदरत्नत्रय व्यवहारका जो प्रतिपादन करते हैं ऐसे ये उपाध्याय परमेष्ठी हैं। अभेदरत्नत्रका मतलव है कि शुद्ध स्वभावमे शुद्ध ज्ञानके द्वारा रमण करे वह अभेदरत्नत्रय कहलाता है। जीवादि सात तत्वोका श्रद्धान करना, वे सात तत्व मोक्षशास्त्रमे इस प्रकार वताये हैं कि जीवाजीवाश्रवबधसवरनिर्जरामोक्षास्तत्व। अर्थात जीव, अजीव, आश्रव, वध, सवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्व कहे गये है। गुण व उसकी पर्यायोके साथ पदार्थका ज्ञान करना, महाव्रत पालना, समिति पालना, इसका नाम व्यवहार मोक्षमार्ग है। दोनोका जो प्रतिपादन करते है उन्हे उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं उन्हे उनके गुणोकी प्राप्तिके लिए मैं नमस्कार करता हू।

सर्व उपदेशका तात्पर्य है—समता भाव धारण करे ज्ञाता दृष्टा वने, तभी तो आत्मदर्शन कर सकोगे। जितने भी क्लेश, सन्ताप, दुख विपदा आदि भोग रहे हो यह सब रागद्वेष, ससारके जीवोमे छननी आदि बुरे परिणामोका ही फल है। भैया, यदि सव जीवो पर यही भाव रखो कि दुनियाके जितने भर जीव हैं सव सुखी होवे तो अपना क्या विगड जावेगा ? जितना भी परोपकार करोगे, मन, वचन, काय, धनसे दूसरोका हित करोगे उतने ही परिणाम निर्मल होगे और आत्मदर्शनमे सुलभता प्राप्त होगी। यह जितना भी परिश्रम कर रहा है, और जिनके लिए कर रहा है, यह नही सोचना कि उनमे कोई लाभ नही होने वाला है। वल्कि ये लोग तो और तुझे पतनके मार्गमे ढकेल रहे हैं। अत यदि तू अपना भला चाहता है तो आचार्यो द्वारा दिये गये उपदेशका आचरण करता हुआ अपनी आत्माको भलाईके मार्ग पर लगा। सब विपदाए, रोग शोक अपने आप दूर भाग जावेगी। अत तू अपनेको पहिचान और वस यही सोच कि मैं तो चैतन्य स्वरूप, ज्योति स्वरूप निज सहज स्वभाव वाला हू, और चैतन्य ही मेरा सव कुछ है। इस समागमे जो साधु पुरुष हैं वे धन्य हैं। जो साधे सो साधु, आत्माकी सिद्धि करे सो साधु। रागद्वेष दूर करनेसे समता आती है। रागद्वेष दूर करनेके लिए ज्ञान व आचरण सम्यक् वनावे। दर्शनकी आराधना करे। मेरा तो यही कार्य है कि ज्ञाता दृष्टा रहू। इसके अतिरिक्त कोई कार्य नही। ज्ञाता दृष्टाकी स्थितिकी आराधना सो चरित्रकी आराधना है। तपमे शक्ति न छिपाना सो तपाराधना। आराधना तो सब कोई करता ही है किन्तु यह विचारना चाहिये कि कौनसी आराधना हमे शान्ति दे सकती है। दुनियामे ऐसे तो बहुतसे है जो मोह वनाये हुए हैं किन्तु ऐसे विरले ही हैं जो ज्ञान और वैराग्यमे प्रगति कर रहे हैं, जो समता परिणाम वनाये हुए हैं, सवको समानदृष्टिसे देखते है वे कल्याणमय हैं। ऋषि मुनियोका समागम प्राप्त कर अपनेको सावधान कर लेना बहुत ही महत्वकी वात हुआ करती है। लोगोके आराम, ऐश वैभव, धन आदि देखकर तृष्णा होती है। किन्तु जो आत्मकल्याणके इच्छुक हैं वे इस पर कभी विचार नही करते। ये तो भ्रमणशील प्राणीका मोह है, तृष्णा है जो अपनेसे अधिक वैभव देखकर, अपनेमे अच्छे वस्त्र देखकर कल्पना करता है कि मुझे भी इसी प्रकार प्राप्त हो। किन्तु ध्यानी जन इससे विपरीत ही विचार किया करते हैं।

साधुजन निर्ग्रन्थ रहते हैं। अपना जो सहजस्वभाव, चैतन्यस्वरूप है, शरीरसे अलग उस स्वभावका ही साधुजन श्रद्धान करते हैं, ज्ञान करते हैं, आचरण करते हैं, कोई भी, कैसा भी कष्ट क्यो न आवे उसे भी समता

परिणामोसे ही सहन करते हैं। गृहस्थीके जजालमे फसकर किस प्रकार आत्मोद्धार हो सकता है, क्योकि ज्ञानकी बात तो कोई करता नही। स्त्री अपनी फरमाइश करती है, पुत्र अपनी। तात्पर्य यह कि सब कोई अपनी-अपनी आकाङ्क्षाए पूर्ण कराना चाहते हैं उसमे आत्माकी क्या और कैसे भलाई हो सकती है। अत अपने परिवारको भी ज्ञानकी बातें सिखाओ ज्ञानी बनाओ। विद्यामे सब कोई निपुण हो अपने धर्मका ज्ञान हो ऐसा जितना हो सके प्रबन्ध करना चाहिये। विद्या गृहस्थ जीवन मे बहुत ही आवश्यक है। बताया भी है कि 'माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठित ॥' अर्थात् उसके मा बाप, उस पुत्रक या पुत्रीके मा, बाप वैरी है दुश्मन हैं जिन्होने अच्छी शिक्षा नही दिलाई, शान्तिका उपाय नही बताया। अत आवश्यक है अपने गृहस्थ जीवनको सुखी बनानेके लिए उनका आचरण सुधारना, उनमे धर्मके प्रति श्रद्धा जगाना, ज्ञानवान बनाना, ज्ञान चर्चा करना चाहिये। किन्तु यह सब ज्ञानके द्वारा ही साध्य हो सकता है। जिसने अपने परिवारको ज्ञानी बनाया वह सुखी रह सकता है। अच्छी बात होगी कि अपनी सन्तान व्यसनोमे न पडकर, कुमार्गमे न लगकर सदाचारी बने, ज्ञानवान बने। स्वय भी न्याय नीतिसे आजीवनको चलाये ताकि लोगोमे, लोकमे प्रिय बन सके।

जब तक साधु अवस्था तक नही पहुचता हो तब तक घरमे रहकर ही आत्मचिन्तन करो, अपनेको परिवारको ज्ञानी बनाओ। उन्हे समझाओ कि देखो भया! सुख यदि है तो वह अपनी आत्मामे है, अपने आपमें है, इसके लिए बहुत ही आवश्यक है कि भोजन सादा हो। वस्त्र साफ और सादा हो, विचार ऊचे हो। यह नही कि आता कुछ नही और पोशाक ऐसी कि जिससे प्रकट हो कि बहुत बडा निपुण होगा। अत भैया उच्चविचार रखो। अपने परिवारकी व्यवस्था बहुत ही विचारकर करो, सबसे बडी बात ज्ञानकी है, समाधि ही सबसे ऊची चीज है। रागद्वेषरहित समता परिणाम ही उत्कृष्ट परिणाम है। सब जीवोपर क्षमा भाव रहे और यदि कदाचित् अपनोने किसीका अनिष्ट विचारा और वह निमित्तसे हो भी गया तो इस आत्मामे क्या वृद्धि हो गयी? यह मैं तो पूर्ण एक, सहजस्वभावी चैतन्यस्वरूप हू। अत कोई विकल्प न करके ज्ञानाराधना करो। सिद्धमे श्रद्धा करो।

सोचो मैं हू वह हैं भगवान्, मैं वह हू जो हैं भगवान्। अर्थात् मैं वही हू जो भगवान् हैं और जो मैं हू वही भगवान् हैं और जो मैं हू वही भगवान् हैं। प्रत्येक जीव सिद्ध जैसे स्वभाववाला है। अत यदि कोई किसी जीवका अपमान करता है तो वह भगवान्का अपमान करता है। उसको वेदना हुई यह बात तो अलग है, उसका तो अलग ही दोष लगा किन्तु वह जो अपमान हुआ वह अलग। अत सब प्राणियो पर समताभाव रखो। यदि कोई अपनेको प्रतिकूल बात भी कह देता है तो भी मनमे क्लेश न कर उसपर करुणा ही रखो और यही सोचो कि यह भी तो चैतन्यस्वरूप है किन्तु कर्मोके कारण, अज्ञानके कारण इसकी ऐसी दशा हो रही है। फिर यह तो मुफ्तमे ही काम हो गया जो वह कुछ कहकर प्रसन्न हो गया। जीवका तो दया करना धर्म ही है जितना भी बन सके दूसरोंकी भलाई करो चाहे दान देकर चाहे मीठे वचन बोलकर। इससे अपनेको भी सुख मिलता है और दूसरोको भी। ये पुत्र स्त्री आदि जो बाह्यपदार्थ हैं और जिन्हे तू समझ रहा है केवल विपदा ही देने वाले हैं। कल्याण करने वाले नही। यदि इस प्राणीका कल्याण है तो वह ससारी प्राणीमे छटनी करना नही। बल्कि कल्याण है अपने सच्चे स्वभावको पहिचानना, अपने सहज स्वभावको पहिचानना, उसमे श्रद्धान् करना आत्मचिंतन करना इसमे अलौकिक सुख मिलता है, आत्माके दर्शन होते हैं, किन्तु उसके लिए अपना ज्ञान व आचरण निर्मल रखना अनिवार्य है। मैं तो सहजस्वभाव मात्र हू। समताका उपाय है अपना स्वभाव पहिचानना कि मेरा सत्त्व सबसे भिन्न है मै तो अपने आपमे सहजस्वभाव मात्र हू, अपने आपमे परिपूर्ण हू, ये सब जो दृश्य देखे जा रहे हैं पुण्य पापके खेल हैं, उपाधिके नाटक हैं। जब तक ज्ञान नही तभी तक परपदार्थोमे दृष्टि लगी हुई है अत यही दृष्टि रखो कि मेरा शरण मेरा स्वभाव है, भगवान् है और यदि इन कर्मोंके जजालोमे फसे रहे तो चाहे भगवान्के पीछे भी छिप जावो वहा भी इन विपदाओसे न बच पावोगे।

अब तक सात दोहोमें पचपरमेष्ठीको नमस्कार किया गया है। जो परमपदमे स्थित हो, उत्कृष्ट हो उन्हे परमेष्ठी कहते हैं। परमेष्ठियोमे साधुओसे ऊचापद अरहन्त भगवान्का है उनसे ऊचापद सिद्धोंका है। तो अब तक की भूमिकामे जो पचपरमेष्ठीको नमस्कार किया गया है वह इसलिए कि हम उनके गुणोको प्राप्त कर सकें, उनके अनुरूप आचरण बना सकें। सो गुणोकी प्राप्तिके लिए ही नमस्कार किया गया है। यदि यह उद्देश्य लेकर पूजा करें नमस्कार करें कि हमें अमुक वस्तुकी प्राप्ति हो जावे, हमारा अमुक काय सिद्ध हो जावे या हमारे घर लडका पैदा हो जावे तो वह मिथ्याचार है। अब प्रभाकर भट्ट गुरु महाराजसे अपना भाव निवेदन करते हैं—

गउ ससार वसन्ताह समिय कालु अणतु ।
परमईं किं पि ण पत्तु सुहु दुक्खु जि पत्तु महत्तु ॥९॥

हे स्वामिन् ! ससारमे वसते हुए, जन्ममरणके चक्रमे घूमते हुए मेरा अनन्तकाल व्यतीत हो गया, किन्तु मैं सुख रच भी न पा सका और बडे दु खोको ही प्राप्त करता रहा। हमारेमे और आपमे परमात्मा व्यक्त नही। व्यक्तमे दु ख लग रहे हैं, अज्ञान है, किन्तु शक्तिसे परमात्मतत्त्व भरा हुआ है। यदि ऐसा न होता तो शुद्ध आत्माका विकास न होता। इस परमात्मप्रकाश ग्रन्थमे शक्तिके परमात्माका ही वणन है। इसमे वताया है कि वह आत्मा घट-घटमे विराजमान है प्रत्येक जीवमे प्रकाशमान है। श्री प्रभाकर भट्ट अपने गुरु श्री योगेन्द्रदेवसे प्रश्न कर रहे हैं कि हे गुरुदेव, ससारमे वसते हुए अनन्तकाल व्यतीत हो गया किन्तु अब तक सुख प्राप्त न हो सका अपितु, दु ख ही दु ख मिला।

श्री प्रभाकर भट्टने व गुरु श्री योगेन्द्रने प्रथम तो पचपरमेष्ठीको नमस्कार किया। ऐसा है कि गुरुका कोई न कोई मुख्य शिष्य रहा करता है, मुख्य भक्त रहा करता है। वह प्रश्न करता है और उत्तर प्राप्त करता है, उसी प्रकार यहा पर गुरु शिष्यने पचपरमेष्ठीको नमस्कार किया, तदुपरान्त शिष्य अपने गुरुसे पूछता है कि ह स्वामी ! इस जीवको ससारमे भ्रमण करते अनन्तकाल बीत गया, किन्तु दु खके सिवाय सुख प्राप्त न हो सका। प्रथम तो इसी भवमे उत्पन्न हुआ तो अकथनीव दु ख मिला, बच्चेकी अवस्थामे मु हसे न बोल पानेके कारण अपनी इच्छा व्यक्त न कर सका, अत दु ख उठाया। फिर कुछ बडा हुआ तो इच्छा न होते हुए स्कूल भेजा गया, इच्छानुसार कार्य न कर सका उसमे भी दु ख ही उठाया। फिर जवान हुआ तो जवानीके दु ख उठाये, बुढापेका तो कहना ही कुछ नही दु ख ही दु ख है। पूर्वजन्मोमे भी दु ख ही उठाये। कीडे मकोडे बने तो बुरी तरहस कुचले गये। यहा तक कि अनेक लोग जान बूझकर भी मारते है। चूहेको पकडते हैं, उसकी पू छ बाध लेते है और आगके ऊपर लटका देते है। वह तडफ-तडफकर मर जाता है। ये सब दु ख हमीने ही पाये हमने ही इन इन पर्यायोमे जन्म लेकर दु ख उठाये। यदि नारकी हुए तो वहा वे दु ख उठाये। यदि देवता हुए वहाके दु ख सहे। इस प्रकार अब तक सुख न पाकर दु ख ही सहा। यह ससार खारे समुद्रकी तरह है। जिस प्रकार समुद्रमे खाराजल भरा रहता है उसी प्रकार नरक आदि दु खोंसे भरा हुआ यह ससार है। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, वनस्पती ये सभी तो जीव हैं क्या इनके दु खका कुछ ठिकाना है। क्या इनको कोई पूछने वाला है ? नही। चलते फिरते भी लोग इनको जानकर कुचलते हैं, उनपर कोई दया नही करता। मनुष्यके यदि पुत्र न हुआ तो दु ख, हुआ कुपूत हुआ तो दु ख और यदि सुपुत्र हुआ तो भी दु ख क्योकि उसमे उपयोग लगेगा। धन है तब दु ख नही है तब दु ख, तात्पर्य यह कि इस जीवको बाह्य-पदार्थोंमे दु ख ही दु ख है सुख नही। क्योकि अज्ञानमे दु ख ही आता है सुख नही और जहा यह जाना कि मेरी आत्माका स्वरूप चैतन्यस्वरूप है, चेतना है वहा इन सब दु खोकी इतिश्री।

भैया ! मेरा देव गुरु मेरे अन्दर है इस ज्ञानके होने पर सब सकट स्वय ही नष्ट हो जावेगे। किन्तु यह जो चेतन अचेतनका परिग्रह लगा रखा है यह सब विपदाका कारण है। वहा आत्माकी दृष्टिमे प्राप्त होने वाला

अलौकिक सुख और कहा ये जगत्के नाना प्रकारके दु ख कितना अन्तर है ? यह अन्तदृष्टिसे ही हुआ। बाहरसे दृष्टि ओझल करो, सवमे उपेक्षादृष्टि देखो ज्ञाता दृष्टा रहो इन्हे छोडकर फिर कहा आनन्द ? इतना ही तो मम है ! अन्तर्दृष्टि करो तो आनन्द और वाह्यदृष्टि करो तो दु ख मिलेगा। जहा राग, द्वेष, मोह नही, जहा जाननहार ही रहता है वहा समता परिणाम रहना है। समताके विपरीत तामस होता है, ये सव ससार इसीके उदाहरण हैं और समताके उदाहरण भगवान् हैं। जिसके कारण इस समताके ही कारण कर्म भी झड गये और शरीररहित भी हो गये। परमउत्कृष्ट अलौकिक सुखको प्राप्त हो गये यह सत्व समताका ही तो फल है। अपना अपने सिवाय क्या है, किसीको अपना मानना किसीको पराया मानना ये ही तो तामसके भेद है। उपाधिके कारण ये नाना प्रकारके नाटक हो रहे हैं ! किसी भी जीवके प्रति खराव भावना मत वनाओ। भिखारीको भी देखकर यही सोचो कि कहा तो इसका परमात्म तत्व और कहा ये दशा हो रही है। इस प्रकार सोचे और सामर्थ्यानुसार उनका उपकार करे। उसका अपमान करना अन्याय है उसका अपमान करना अपने आपमे वसे हुए परमात्मतत्त्वका अपमान है। जो दु ख होगा वह अलग। हम परपदार्थोंमे रागद्वेषका आनन्द मान रहे हैं और आनन्दनिधान निजपरमात्मतत्त्वका दर्शन नही हो पा रहा है उसके प्रति कुछ नही करते। मैं रागद्वेषरहित चैतन्यस्वभावमात्र हू ऐसी भावना करे तो परम-आनन्द प्राप्त हो।

भैया, भ्रमकी जडको ज्ञानकी फूकसे उडादो तो दु खोका पहाड सव नष्ट हो जावे। सव काई रोजगार का, धन कमानेका यशका उपाय करते हैं किन्तु ज्ञानका उपाय विरले ही करते हैं। समुद्रमे जलचर जीव होते और यहा इस ससारमे जन्म, मरणके चक्कर हैं। जैसे एक वासकी दोनो और नलीमे आग लगी हुई और वीचमे कीडा बैठा हुआ हो तो उसकी जो दशा होती है वही दशा इस प्राणीकी हो रही है विकल्प जालोमे फसे रहनेके कारण, जन्म-मरणके कारण। कहा तो यह प्राणी चैतन्यस्वभाव वाला और कहा भ्रमके कारण जन्ममरणकी व्याधिमे फसा हुआ है। इन सवमे ही हे स्वामी ! मेरा अनन्तकाल वीत गया किन्तु सुख नही पाया। समुद्रमे वडवानल उठती है और ससारमे नाना प्रकारके दु खोकी आग जलती है। इन दुखोका मूल है भ्रम कि मैं अमुक जातिका अमुक शहर का अमुक कुटुम्बका हू आदि आदि। भ्रमसे यह जीव इन दु खोमे ही सुख मान रहा है। आत्मा पर स्वभाव या नजर डाले तो सव शान्त हो जावेगा। एतदर्थ प्रभुकी भक्ति भी एक साधन है। यदि अन्य किसी भी अभिप्रायसे भगवान्की स्तुति करोगे तो दोनो ओरसे ही अनिष्ट होगा। न तो आत्मकल्याण होगा और न वैभव होगा। यदि कुछ न चाह कर भक्ति करे, मुक्तिकी कामना करे तो वैभव भी पाता है और मुक्ति भी। अन्तर्दृष्टि कर जो हम निर्णय करेंगे वही सत्य है। हे प्रभु ! कहा तो मेरा ऐसा स्वरूप और कहा ये दुनियाके चक्कर ? समुद्रमे तरगें उठती हैं और यहा सकल्प और विकल्प होते हैं। यही जन्मसे मरण तक हो रहा है।

हे प्रभो ! इस ससार सागरमे मेरा अनन्तकाल वीत गया किन्तु अव तक सुख नही मिला क्योकि मैंने अपने आपको नही पहिचाना। पाचो इन्द्रिया भी मिली, उत्तम कुल, उत्तमदेश, उत्तम आयु, उत्तम बुद्धि ग्रहण करने की शक्ति, श्रद्धान, सयम ये सव पाकर भी आत्माका ज्ञान नही किया। यदि अव भी न चेता तो फिर कल्याण नही। विवेक आचार, विचार यदि ये तीनो सम्यक् हैं तो शरण है, अन्यथा इस ससारमे कोई शरण नही। सवसे दुर्लभ तो यह है कि इस जीवने मानवजीवन पाया। वहुत कठिनतासे प्राप्त हुआ है यह मानव जीवन, फिर उससे दुर्लभ है उत्कृष्ट बुद्धिका प्राप्त करना, फिर इससे भी दुर्लभ है सच्चे धर्मका श्रवण करना, उससे दुर्लभ है ग्रहण करनेकी, समझनेकी शक्ति पाना, उससे कठिन स्मरण वनाये रखना उससे दुर्लभ है श्रद्धान् करना, फिर उससे दुर्लभ सयमका पाना, इससे दुर्लभ विषयचिन्ताओंसे अलग रहना, इससे भी दुर्लभ है कषाय न करना, फिर इससे भी दुर्लभ है वोधिलाभ। क्या सार है कषाय करने व क्षोभ रखनेमे किसीने यदि कुछ प्रतिकूल कह दिया तो मेरी आत्मामे क्या हो जावेगा ? क्या विगड जावेगा मेरा ? भैया क्रोध करनेसे वनने वाला काम भी विगड जाता है

रहते धनका सदुपयोग करो, उदारता करो, दान दो। अन्यथा मिट जाने पर पश्चाताप होगा कि मैंने धन बल रहते सदुपयोग न किया। यदि दानादि सत्कार्योंमे खच किया होता तो आज क्लेश तो न होता। वचन बल रहते हुए किसीको कठोर बात मत कहो, सबसे नम्रतासे पेश आओ। सबके प्रति मिष्ट वाक्य बोलो, किसीका अपमान न करो, अवहेलना न करो, सबको अपने समान चैतन्यस्वरूप भगवानके स्वरूप वाला समझो। इन चारों मन, वचन, काय धनसे शुद्ध रूपसे किया गया उपकार कभी नही जाता बल्कि पुण्य होता ही चला जावेगा। ये चारो हैं तो क्षणिक ही, यदि सदुपयोग कर लिया तो भला है, नही तो नष्ट तो ये होवेंगे ही। सदुपयोग न किया तो पीछे पछतावा होगा, क्लेश होगा। सो भैया सावधान रहो अन्यथा रत्नत्रयको प्राप्त कर भी ससाररूपी भयानक वनमें चिरकाल तक भ्रमण करना पडेगा प्रमाद करनेसे।

हे नाथ ! मुझे बोधि, समाधि प्राप्त न हुई अत अब तक मैं भ्रमण करते रहनेके कारण परमानन्दके रसका पान न कर सका। वह रस प्राप्त होता है—शुद्धात्माकी भावनासे। अपने आपको अनुभव करनेसे, वह रस उदित होता है। वह मैं आज तक ससारके दु खोको सुख माननेके कारण न प्राप्त कर सका, अत सम्यक् अनुभव न प्राप्त कर मैंने अब तक चारो गतियोमे उत्पन्न दु ख ही प्राप्त किये। श्री प्रभाकर भट्टजी अपने गुरुसे (श्री योगेन्द्र जी से) कह रहे हैं कि मैंने अब तक दु ख ही पाया सुख नही। जिस आनन्दके प्राप्त न होने पर यह प्राणी भटकता रहता है चारो गतियोमे वही उपादेय है अन्य नही। यही इस श्लोकमे बताया गया है। आत्माके ध्यानसे उत्पन्न जो आनन्द है वही उप देय है और आत्माका ध्यान रागद्वेप रूप परिणाम रहनेसे हो नही सकता। जब तक मोह है, जब तक परपदार्थोंमे रागद्वेपकी बुद्धि है तभी तक अपने आपका दशन नही हो सकता और रागद्वेपकी बुद्धि हटी समताभाव प्राप्त हुआ कि फिर कुछ विपदा नही। यदि कोई ससारमे विपदा है, यदि भ्रमण करनेका, चारो गतियो मे रुलनेका कोई कारण है तो वह है परपदार्थमें मोह, ससारके जीवोमे छटनी और उसका उपाय है अपने ज्ञान व आचरणको शुद्ध रखना। अपना ज्ञान निमल रख पदार्थोंको जाने तो, किन्तु उनमें लीन न होवे, मोह न करे। अपितु उपेक्षा रखे, आत्माका ध्यान करे, अपने स्वरूपको पहिचाने तो कल्याण है।

चउगइदुक्खह लत्ताइ जो परमप्पउ कोइ।
चउगइदुक्खविणासयरु कहहु पसाए सो वि ॥१०॥

इसमे श्री प्रभाकर भट्टजीने यह प्रश्न किया कि चारो गतियोके दु खोसे यदि छुटकारा दिलाने वाला कोई भगवान है तो बताओ? कितना सरल प्रश्न किया जो कि लोकमे घटित होता है और तत्वमे भी। सुखी वही होते हैं जिन्होने परमात्माके दशनके आनन्दका अनुभव किया ज्ञान रसका पान किया। उन्हींको चारो गतियोंके दु खोका नाश होना है। वह आनन्द तो रागद्वेपरहित समाधिसे प्राप्त होता है। अहार, भय, मैथुन, परिग्रह सज्ञा जिनमे नही है उन्हे सुख प्राप्त होता है। सज्ञादिके दु खोसे पीडित प्रभाकर भट्ट जिज्ञासा कर रहे हैं कि हे गुरु! हमे वह सुख बताओ जो दु ख दूर करे। उसी भगवानका वर्णन इस ग्रन्थमे है। खुदका आनन्द खुदमे ही खुदके द्वारा मिलना है। अत खुदमें कुछ ऐसी कला होनी चाहिये ताकि आनन्द प्राप्त हो और यदि कला नहीं तो प्रयास व्यर्थ है।

भगवान् तो सूयकी तरहसे है। रास्ता दिखा दिया कोई देखना चाहे तो देख लेवे। कोई यदि आखो पर पट्टी बाधे पडा रहे तो इसमे किसीका क्या दोष? ये तो उपेक्षक निमित्त मात्र है। कोई उनके बताये मार्ग पर चल जावे तो ठीक है, कल्याण हो जावेगा। आत्मीय रसका पान कर लेगा अन्यथा ठोकरें खाता रहेगा इसी ससारमें चारो गतियोमे। किसीका अन्य कोई रक्षक नही, शरण नही। स्वय भी तो यह प्राणी किसीका रक्षक नही, शरण नही। उत्कृष्ट समता परिणामोमे लीन हुए पुरुषोको परमात्माका आभास होता है। स्थापित भगवान्की मूर्तिके

दर्शन भी तो इसी प्रयोजनसे किये जाते हैं। अब कोई यदि भगवानसे धनादिकी कामना हेतु उनकी पूजा करे, आराधना करे तो जब श्रद्धान ही सम्यक् नही तो पुण्यकी अपेक्षा पापका ही बन्ध होगा। इनके दर्शनका भी तो यही प्रयोजन है कि वे जिन गुणोंको प्राप्त कर परमात्मा हो गये हैं वे ही गुण मैं भी प्राप्त करूं, वैसा ही आचरण, वैसा ही श्रद्धान करूं तब उस आनन्दको उस पदको प्राप्त कर सकता हूं। अब कोई यदि यह सोचे कि भगवान् दुःखोंके हरने वाले व सुखके देने वाले हैं, सो यह बात भी ठीक नही है, भगवान् तो सूर्यकी तरह उपेक्षक निमित्तमात्र हैं, रास्ता आलोकित कर दिया कोई चले तो चल जावे, न चले तो भटकता रहे। जैसे कोई अन्धा पुरुष सूर्यके प्रकाश का भान नहीं कर सकता, उस प्रेरणा पर नहीं चल सकता। उसी प्रकार विषयोंके दुःखोंमें पांचों इन्द्रियोंके व मन के दुःखोंमें उनकी इच्छाओंमें बन्धा प्राणी कैसे भगवान्का अपने स्वरूपका दर्शन पा सकता है। प्रभुकी मुद्रा देखकर यही भावना भावे कि हे नाथ! तुम भी तो ऐसे ही थे जैसा मैं हूं किन्तु आज आप उत्कृष्ट आत्मा हो गये। संसार के सकल पदार्थोंको आप जानते हैं फिर भी निज आनन्दमय हैं उन वाह्यपदार्थोंमें आपकी प्रवृत्ति नहीं। सबको जानते हुए भी उनके प्रति उपेक्षाभाव रखते हैं।

सिद्ध भगवान्की परिणतिको जानकर, जिनेन्द्र भगवान्की मुद्राको देखकर कल्याणमय भाव जगे तो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। भगवान्की मुद्राको देखकर ऐसी भावना करनेसे कर्म टिक नही सकता, कर्मोंका क्षय उसी समय हो जाता है। उनके अनन्तगुणोंको देखनेसे, विचार करनेसे, आचरण करनेसे कर्म स्वय टूटते चले जाते है। जहा उपयोग आत्मतत्वकी ओर है वहा कर्म नही जकडे रह सकते। और जहा रागद्वेषरूप परिणाम हो रहे हैं वहा कर्मो का ताता लगा हुआ ही है, कर्मोका बंध होता जा रहा है। हे प्राणी! विचार तो कर कहा तो तेरा आत्माका स्वरूप ही जिसका ध्यान करनेसे उस रूप आचरण करनेसे कर्म स्वयमेव तडातड टूटते चले जाते हैं और कहा ये परपदार्थ जिनमें रागद्वेषकी बुद्धि कर कर्मोंके जालमे फसता जा रहा है? सारी तारीफ उपयोगकी है। सोच हे भव्य जीव! कहा उपयोग लगानेसे तेरा उद्धार है और कहा उपयोग लगानेसे तेरा पतन है। और फिर यह सोच-कर भी क्यो पतनकी ओर जानेको अग्रसर है? क्यो परपदार्थकी बुद्धि कर रहा है? ये सब तेरी शरण नही, कोई तुझे सुख नही पहुचा सकता। ये सब जिन्हें तू मा, बाप, भाई, बहिन, औरत आदि समझ रहा है तेरे पतनके कारण है उद्धारके नही। [illegible]

नाम समाधि है, दूसरा अपने रत्नत्रयको परभवमे भी साथ ले जाना सो समाधि है और उसी अवस्थामे प्राणत्याग करनेसे समाधिमरण है। यदि समाधि नही है, आधि व्याधि उपाधिका लगाव है तो उसका कटु फल होगा। एक व्यक्ति एकको मार देता है तो उसे फांसीकी सजा होती है और यदि वह कई आदमियोको मारे तो भी यहा फासी ही होगी। तब इतने बडे पापकी सजा कौन देगा? वह कर्मके अनुसार स्वय ही विकट दु ख पावेंगे। कोई किसी को दु ख सुख देने वाला नही है। अपने परिणामोके कारण ही सब दु खी होते है। नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देव इन चारो गतियोके दु खोको यह जीव सहता रहता है।

यदि कोई सोचे कि देवगतिमे आनन्द है तो उसका भ्रम है, उनमे जो वाहनका काम करते हैं उन्हे वह कार्य करना ही होगा। मनुष्यगतिमे तो अपनी तनख्वाह पाकर काम छोड भी सकता है किन्तु वहा पर उन्हे अपनी ड्यूटी पूरी करनी ही होगी। तिर्यञ्चोंमे देखो घोडा है तागेमे जोत दिया भूख लगी, प्यास लगी, लेकिन कोई पूछता है ऊपरसे मार ही पडती है। ये चले जा रहे हैं कोई पूछने वाला नही है। वह भी तो परमात्मा ही है किन्तु कर्मोके जो जाल साथ वाध रखे हैं उनके कारण दुख भोगता है। देवता अपनसे वडे ऋद्धिधारीको देख झुरते हैं दुखी होते है। क्या कम दु ख है इस ससारमे। ससारके दु खोकी कोई गणना नही, उन्हे यह विश्वास नही देवलोकमे कि कभी मुझसे यह दासता छूट जावेगी। मनुष्योमे मानकी बहुत मुख्यता है। देवोमे लोभकी मुख्यता है। तिर्यञ्चोमे मायाकषायकी मुख्यता है, और नरकोमे क्रोधकी मुख्यता है। वे सब अपनी-अपनी कषायकी वेदनामे दु खी हैं। यहा प्रश्न किया गया मैं यदि कोई इन चारो गतियोके दु खोसे बचाने वाला परमात्मा है तो उसे बताओ। अब उसीका न्याय बताया जा रहा है। गुरु श्री योगेन्दु जी ने आत्मा तीन प्रकारकी बताई। (१) अन्तरात्मा (२) बहिरात्मा और (३) परमात्मा। इन तीन प्रकारोमे हेय उपादेयका वर्णन करके भगवन्तत्त्वको बतायेंगे।

पुण पुण पणिविवि पच गुरु भावें चित्त धरेवि।
भट्टपहायर विसुणि तुहु अप्पा तिविहु कहेवि ॥११॥

श्री प्रभाकरभट्टने अपने गुरुसे प्रश्न किया था कि यदि दुनियाके दु खोसे चारो गतियोके दु खोमे कोई छुटकारा दिलाने वाला भगवान् है तो उसे बताओ। तो श्री गुरु योगेन्दुजी पचपरमेष्ठीको बारम्बार नमस्कार करके तथा पचगुरुओको चित्तमे धारण करके कहते है कि हे प्रभाकरभट्ट! सुनो तुमने जो प्रश्न किया है यह बहुत ही उत्तम है। मैं अब तीन प्रकारकी आत्माका वर्णन करता हू। जिस प्रकार आज तुमने पूछा है कि चारो गतियोके दु खोका दूर करने वाला यदि कोई परमात्मा है तो बताओ। इसी प्रकारका पूर्वमे भी भव्योने यही प्रश्न किया था। यदि प्रश्न पूछनेवालेको अपने प्रश्नका यह पता लग जावे कि मैंने प्रश्न ठीक किया या नही तो उसे यह भी श्रद्धान् हो जाता है कि उत्तर भी अकाट्य सच्चा प्राप्त होगा। अत पहिले श्री योगेन्दु जी यही कहते हैं कि हे प्रभाकर जी! जो तुमने यह प्रश्न किया, इससे पूर्व श्रेणिक भरत आदिने समवशरणमे जाकर प्रश्न किया था। तुम्हारा प्रश्न बहुत ही उचित है। अत सुनो—

आत्मा तीन प्रकारकी है (१) अन्तरात्मा, (२) बहिरात्मा (३) परमात्मा। यह बहिरात्मा ज्ञानबल द्वारा बहिरात्मपनेको छोडकर अन्तरात्मा बनकर परमात्मा बन सकता है, उसका उपाय है कि जो तेरा सहजस्वरूप है उसका ध्यान कर। गुणस्थानातीत जो आत्मा है उसे भगवान् कहते हैं। भगवान् होनेका जो स्वभाव, परमात्मा बननेका जो स्वभाव वह भी भगवान् कहलाता है। अपने अन्दर भी भगवान् है और बाहर भी भगवान् हैं। अपने अन्दरके भगवान्को पहिचाननेसे पर्यायमे भगवान् बना जा सकता है। परमात्मा, बहिरात्मा, अन्तरात्मामे वही स्वभाव है। स्वभाव कही नही जाता। यह कारण परमात्मत्व एकस्वरूप ही है।

यदि कोई मास्टर किसी बच्चेसे पूछे कि ४ मे से ६ गये तो बाकी क्या रहेगा? जब प्रश्न ही गलत हैं तो उत्तर क्या सही दे पावेगा, उसी प्रकार जब यह पता लग जावे कि मैंने जो प्रश्न किया वह उचित है तब यह भी

विश्वास हो जाता है कि उत्तर भी सही ही मिलेगा। हे प्रभाकरभट्ट ! जो तुमने प्रश्न किया वह उचित है। ऐसा प्रश्न पहिले भी भगवान्के समवशरणमे जाकर, भेदरत्नत्रय व अभेदरत्नत्रय जिन्हे प्रिय हैं ऐसे भरत श्रेणिक आदि ने पूछा था कि यदि कोई ससारके दु खोसे बचाने वाला भगवान् है तो उसे बताओ। यह प्रश्न जानने योग्य है। जिन्होने ऐसा प्रश्न किया था वे परमानन्द सुधारसके प्यासे थे। जो जिस चीजका प्यासा होता है उसे उसीको लगन लग जाती है। जिसको जिस बातकी रुचि होती है वह उसके पीछे लग जाता है जब तक प्राप्त नही कर लेता। वे भव्यगण परमात्म सुधारसके प्यासे थे और वह सुधारस परमात्माकी भक्तिसे ही प्राप्त हो सकता है। भगवान्की भावनासे अलौकिक आनन्द आता है। वीतराग अमृत रसके प्यासे उन भव्योने भी यही बात पूछी थी। जब आकुलता होती है तभी ऐसी बातें पूछी जाती हैं। वे भी ससारके दु खोसे दुखी थे अत आत्माकी खोजमे लगे। बताओ कहा तो आत्माका आनन्द और कहा ये ससारके दु ख ? वह आनन्द मुझमे है, मैं आनन्दका सागर हू किन्तु जब वह वीतरागकी समाधि होवे तभी यह आनन्द मिल सकता है। जब मैं ज्ञाता दृष्टा रहू तभी वह सुख मिल सकता है। उन सबकी भरत श्रेणिक आदिकी भीतरी भावना यही थी कि ससारका दु ख न रहे अत वे भी इस बातको पूछनेके लिए परिवार सहित सर्वज्ञ तीर्थंकरोके समवशरणमे पहुचे, नमस्कार कर बादमे यही प्रश्न किया था कि दुनियाके दु खोसे छुटकारा दिलाने वाला यदि कोई भगवान् है तो बताओ। आगममे तीन लोक तीन काल आदि का वर्णन तथा किन परिणामोसे कर्मबन्ध कट जावें ? यह सब पूछ लेने पर यही प्रश्न किया था, जो आज तुमने पूछा है इसका उत्तर ले लेना बहुत आवश्यक है।

श्री प्रभाकरभट्ट भी ससारके दु खोसे दुखी थे। आत्माके स्वभावको पहिचाननेके लिए लगन लगी हुई थी। अत जो यह प्रश्न पूछा कि वह परमात्मा बताओ जो हमे छुटकारा दिलाये, कितना सारगर्भित प्रश्न है। सबका सब निचोड भरा है और बातोकी पृच्छनासे क्या लाभ है ? साराका सारा सार तो इसी प्रश्नमे भरा हुआ है। इस प्रकार ढाढस दे श्री योगेन्दु जी आत्माको तीन प्रकारका बता रहे है—(१) अन्तरात्मा (२) बहिरात्मा। (३) परमात्मा। परपदार्थोमे दृष्टि जावे कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरा बन्धु है, यह मेरी पौत्री है, मकान है, धन है, माता है, पिता है आदि आदि यह हुआ बाहिरात्मा तत्त्व। भीतरके मर्मको जानना सो अन्तरात्मा तत्त्व, अपने को पहिचानना कि मेरा स्वरूप ज्योतिपुञ्ज है, चेतना है चैतन्यस्वरूप है आदि सो अन्तरात्मा है। जो चैतन्यस्वभाव को ही आत्मा मानता है वह अन्तरात्मा कहलाता है। भैया, ससारमें रुलना न रुलना यह सब अपने आप पर है। कही भी रहे किसी भी परिस्थितिमे क्यो न रहे किन्तु यही विचार करता रहे कि मैं तो चिद्स्वभाव हू, मेरा लक्षण चेतना है। इसके अतिरिक्त कुछ नही। मैं रूप रस गध रहित अरूपी हू। आत्माका लक्ष्य करने वालेको अन्तरात्मा कहते हैं। भैया किसीसे कुछ मिलना जुलना तो है नही इसे, किन्तु व्यर्थ ही बाह्य पदार्थोमे पडकर अपने स्वभावसे, अपनी आत्मासे दूर होता जा रहा है और जिसकी श्रद्धा सही है अटल है, समझो कि उसका कदम मोक्षके मार्गमे जमकर है, स्थिर है।

भैया, तीन प्राणी थे, एक बूढा, एक जवान, एक बच्चा। तीनोने विचार किया कि हमे अब आत्महित करना चाहिये। अच्छा ऐसा किया जावे कि जिसे वैराग्य हो जावे पहिले वह सबको चेतावेगा। सबको उपदेश देगा। यह विचारकर रहने लगे। कुछ दिनो बाद बूढेने सोचा कि अब तो मैं बहुत बूढा हो गया अत आत्मकल्याण करना चाहिये। अत उसने अपने घरकी सम्पूर्ण व्यवस्था सुव्यवस्थित करके सब काम लडकोको समझा दिया और स्वय तपस्याहेतु चल दिया। रास्तेमे पडती थी जवानकी दुकान। उससे जाकर बूढा बोला कि भैया हमने घर छोड दिया अब आत्मचिन्तन हेतु जा रहा हू। घरकी सब व्यवस्था ठीक कर दी है। जवान ये बातें सुन खुली दुकान छोड उसके साथ हो लिया और बोला कि चलो मैं भी चलता हू। वह बूढा बोला कि तुम तो सब कुछ ऐसे ही अव्यवस्थित

छोड चल दिये, कमसे कम जहा-जहा सब सामान रखा है, रुपया पैसादि जो भी जिस पर है यह सब अपने लडका को सम्भाल दो अच्छी तरह, कोई अधिक समय न लगेगा। जवान बोला कि जिस चिजको छोडना है उसमे दूसरा का क्या लगाना ? फिर मेरे लिए तो सब समान है क्या घरके क्या बाहरके, अत किसको सम्भाल दू मैं ये सब इस प्रकार सब कुछ उसी प्रकार छोड चल दिया। कुछ दूर पर उन्हे वह बच्चा मिला खेलता हुआ। उन्होने उसको अपना समाचार कहा कि हम अब जा रहे हैं आत्महित करने। वह लडका यह सुन खेल छोड साथ हो लिया। तब वे बोले कि हमारा जाना तो ठीक है किन्तु तुम अभी क्यों जाते हो ? अभी तो तुम्हारी सगाई ही हुई है शादी तो जाने दो, कुछ दिन गृहस्थीमे रह लो तब चलना। वह लडका बोला जो बात हितकी न हो उसमे फसकर फिर छोडे यह बात, क्या पता फिर छोड भी सकें या नहीं ? इस प्रकार समाधान कर वह भी चल दिया। अत भुक्षुजनो ! इन सब बातोमें मत फसो। यह क्या कि पहिले तो कीचडमे पैर देवे जान बूझकर फिर धोवे, इससे तो अच्छा है जब यह जानता है कि इसमे पैर देनेसे धोना होगा अत उसमे पैर ही न देवे। देकर धोना यह कहाकी बात हुई ?

श्री प्रभाकर भट्टजी उसी प्रकार विनती कर रहे हैं जैसे कि कोई बच्चा रोकर कहता है कि मुझे तो मा के पास जाना है, इस प्रकार जिद करता है। वह जानता है कि माके पास जानेसे उसे शान्ति मिलेगी। तीनो अवस्थाओमे ही तुम्हारे अन्दर भगवान् बस रहा है। जब नही पहिचाना तब भी है और जब पहिचाना तो दर्शन कर लिए और जब भगवान् बन गये तो कहना ही क्या है और जहा मोह माया है वहा भगवान्का दर्शन कैसे हो सकता है ? अत गुरु श्री योगेन्दुजी बता रहे हैं कि सब प्रकारसे उपादेय जिसमे असारताका नाम नही ऐसा जो परमात्मतत्त्व उसे कहूगा। तीन प्रकारका जो आत्मा है उसमे जो आत्माका शुद्धस्वरूप बताया है, चैतन्यस्वरूप है, वह सदाकाल रहता है चाहे आत्मा उल्टा ही क्यो न परिणम रहा हो। वह ग्रहण करने योग्य ऐसा मैं हू। इस प्रकार विचार करना चाहिये।

अप्पा तिविहु मुणेवि लहु मूढहु मेल्लहि भाउ।
मुणि सण्णाणे णाणमउ जो परमप्पसहाउ ॥१२॥

जब यह प्रश्न किया श्री प्रभाकरभट्टजीने कि यदि चारो गतियोके दु खसे छुडाने वाला कोई परमात्मा है तो बताओ ? तो श्री योगेन्दुजी बता रहे हैं कि आत्मा तीन प्रकारकी हैं—(१) मूढ (२) ज्ञानी (३) भगवान्। मूढ तो मोही है। जो मूढपनको छोड अपने ज्ञानके द्वारा ज्ञानमयभगवान्को भजे यह हुआ अन्तरात्मा और जो निर्दोष सवज्ञ है वह है भगवान्। इन तीनो अवस्थाओमें रहने वाला परमात्मस्वभाव वही सहज भगवान् हुआ। वही अपना दु ख हर सकता है। योगेन्दु जी बता रहे हैं कि जैसा तुमने प्रश्न किया है वैसा सभी भव्योने पूछा था क्योकि वे भी इन दु खोसे दुखित थे। सगर चक्रवर्तीने श्री अजितनाथ भगवान्से पूछा था कि यदि इन चारो गतियोसे छुटकारा दिलाने वाला कोई भगवान् है तो बताओ ? इसीको पाण्डवोने श्री नेमिनाथ भगवान्से पूछा था कि यदि इन चारो गतियोमे न रुलाने वाला कोई परमात्मा है, भगवान् है तो बताओ और इसी प्रकार श्री श्रेणिक जी ने महावीर भगवान्से पूछा था। अत तुम्हारा प्रश्न बहुत उत्तम है उसका समाधान सुनो।

हे भट्ट ! जो तुम्हारी आत्मामे चेतनास्वभाव पडा है वही भगवान् है। उसीके दर्शन कर लो तो इसीमे स्थिर होनेका यत्न करोगे और भगवान् हो जाओगे। इनके दर्शन करनेसे दु ख ही दूर नही होगे बल्कि हमे अपने स्वरूपका पता चल जावेगा। इस प्राणीका स्वभाव तो देखो उपाधिमे रत होकर तो नाना प्रकारकी लीलाए कर रहा है, चारो गतियोंमे नाटक कर रहा है और जब ज्ञान हो जाता हैं तो ज्ञानमय लीला करने लगता है। भेद-रत्नत्रयको पालता है और अभेदरत्नत्रयकी लीला करता है। आत्माका दृढ श्रद्धान् सो सम्यक्दर्शन, आत्माका सच्चा ज्ञान सो सम्यक्ज्ञान, जीवोकी रक्षा करना, समिति गुप्तिका पालन करना सो हुआ भेद सम्यक्चारित्र। इन तीनो

का नाम भेदरत्नत्रय है। भेदरत्नत्रय अभेदरत्नत्रयमे पहुचनेका उपाय है। अपने आपमे बसा हुआ जो असाधारण चिद्स्वभाव है उसरूप श्रद्धा करना ऐसी दृढ प्रतीति करना अभेद सम्यग्दर्शन है। ऐसा ही शुद्धआत्माका चैतन्यमात्र ज्ञान सो अभेद सम्यग्ज्ञान हुआ और उसमे ही रम जाना सो अभेद सम्यक्चारित्र हुआ। अभेदरत्नत्रय तो साक्षात् मुक्तिका कारण है और भेदरत्नत्रयमय, अभेदरत्नत्रयमयमे पहुचानेका कारण है।

यह जीव ज्ञान होनेपर ज्ञानकी ही लीला करता है। अपने ज्ञानके द्वारा ससारके समस्त पदार्थोंका साक्षात् ज्ञान रखता है किन्तु उनमे उपेक्षा भाव रखता है। लब्धि उनकी ज्ञान लीला है ऐसे वे अरहन्त भगवान् हैं। शकर भी वही हैं, क्योकि सुखको जो करे उसे शकर कहते हैं। अत शकर कहलाये। दुनियाको जो मोक्षमार्गका विधान वताते हैं उन्हे ब्रह्म कहते हैं अत ब्रह्म भी अरहन्त भगवान् ही हुए। उनको ज्ञानमार्गमे रचा देना यह भी तो ज्ञान-सृष्टी है तो उसके वे कारण हैं। मोक्षमार्गकी सृष्टीके ये कारणभूत है। अरहतदेव विष्णु हैं। जो व्यापक हो, सब जगह फैला हुआ हो उसे विष्णु कहते हैं, सो जिस प्रकार आकाशका अन्त नही उसी प्रकार ज्ञानका भी अन्त नही ऐसे ये अरहन्त भगवान् हैं। हरि भी ये ही क्योकि जो पापोको हरे सो हरि कहलाता है। इनके गुणस्मरणसे पाप दूर होते हैं अत अरहन्त भगवान् हरि भी हुए। जो स्वय लौकिक कार्योंमे लगे हुए हैं वे क्या पापोको हरेंगे, निष्पाप आत्मा ही पापोका हरण कर सकता है ऐसे ये जिनेन्द्र भगवान् हैं, ये ही पुरुषोत्तम हैं क्योकि पुरुषोमे उत्तम है अरहन्त भगवान् मनुष्यगतिके जीव कहलाते हैं वे उनमे सबसे उत्तम हैं अत पुरुषोत्तम कहलाये। ऐसा जो परमात्मा है उसकी भावना यह ज्ञानी करता है।

तीन प्रकारकी आत्माका ज्ञान करानेका प्रयोजन है कि वहिरात्माको परपदार्थोंमे रागबुद्धि है कि ये मेरे हैं आदि, इसे तो छोडे और परमात्माका ध्यान करे। इन दोनोका उपाय एक ही है कि अन्तरात्मा बन जावे। यहा वीतराग स्वसवेदन ज्ञान होता यही उत्तम है। जीव विषयोके स्वादमे लग रहे हैं, उनको उससे हटानेका एक यही उपाय है कि उन्हे उससे अधिक आनन्दका स्वाद चखा दो तो विषयोकी ओर दृष्टिपात न करेंगे। उनसे विषयोसे दिल हट जावे इसका उपाय है अन्तरात्मा बनना। उसका जो निर्विकल्पक वीतराग निर्विकल्पक स्वसवेदन ज्ञान है इसके द्वारा तुम परमात्म स्वभावको जानो। अपनेको जानोगे तो परमात्माको जानोगे। क्योकि परमात्मा केवल ज्ञानसे भरा हुआ है, वह केवल ज्ञानका ही तो पुञ्ज है। क्योकि ज्ञान बिगड गया तो दु ख, नही तो आनन्द। इसके असख्यप्रदेशोमे सवत्र ज्ञानरस भरा हुआ है यही स्वभाव अपना है। तीन प्रकारकी जो श्री योगेन्दुजीने आत्मा वताई है—(१) वहिरात्मा (२) अन्तरात्मा (३) परमात्मा, इनमेसे वहिरात्मा अर्थात् परपदार्थमे रागद्वेष कि मैं अमुक जातिका हू, अमुक मेरा धर्म, अमुक मेरा शहर आदि, ये मेरा भाई, ये मेरी बहिन, ये मेरा पुत्र, ये पत्नी आदि, ऐसी मेरी पोजिशन है इतना मैं धनशाली हू, मेरे इतनी खेतीवाडी है आदि आदि परपदार्थोको ये मेरे हैं, मैं इनका हू—ऐसा मानना वहिरात्मापन है। क्या तू आज तक किसीका हो सका, क्या कोई आज तक तेरा शरण हुआ या तू आज तक किसीका शरण हो सका? जब ये शरीर ही अपना नही तब परपदार्थ मेरा कैसे हो सकता है? अत ये वहिरात्मा तो छोडने लायक है और परमात्मा ध्यान करने लायक है। और इन दोनोका उपाय अर्थात् वहिरात्मा के त्याग करनेका और परमात्माके ध्यान करनेका उपाय, इन दोनोका उपाय है।

भैया! अपने सहजस्वभावका अपने चैतन्यस्वभावका ध्यान करो, क्योकि पहिले कह आये हैं कि स्वयको जानोगे तो परमात्माको भी जान सकते हो दूसरा उपाय नही है। अपने ज्ञायकस्वभावको जाननेसे जो प्राप्त हुआ वह दुखोको दूर कर देगा। किन्तु वही निर्विकल्पकज्ञान स्वसवेदन वीतरागज्ञान होना चाहिये। अब यहा पर शका की जा सकती है कि ज्ञानके साथ स्वसवेदन वीतराग ज्ञान क्यो लगाया? इसका उत्तर है कि विषयोका जो अनुभव होता है वह भी तो स्वसवेदन है किन्तु वह सराग स्वसवेदन ज्ञान है। अत वीतराग स्वसवेदन ज्ञान कहा। इसके

द्वारा परमात्माको जान सकते हो। जो इस वीतराग स्वसवेदन ज्ञान द्वारा प्राप्त हुआ परमात्मा वही उपादेय है। इसमे यही बताया है जो कि प्रभाकर भट्टने अपने गुरुमे प्रश्न किया है कि चारो गतियोके दुखोको दूर करने वाला कोई परमात्मात्मा हो तो बताइये। उसका उत्तर इसमे बताया है आत्माके तीन भेद बताकर।

नोट —इसके बाद लिपीकी अनुपस्थितिके कारण १३वे दोहेका प्रवचन नोट नही हो सका।

देहविभिण्णउ णाणमउ जो परमप्प णिएइ।
परमसमाहिपरिट्ठियउ पडिउ सो जि हवेइ ॥१४॥

लोकमे जितने आत्मा है वे तीन प्रकारके हैं। इनमे कोई तो बहिरात्मा, कोई अन्तरात्मा और कोई परमात्मा है। आत्मा शब्द सबमे लगा है। जिसकी दृष्टि बाह्य पदार्थोमे है कि यह मैं हू, यह मेरा है, वह जीव तो बहिरात्मा है। जिसकी दृष्टि अन्तरमे लगी हो, सहज ज्ञानस्वरूपमे लगी हो कि यह मैं आत्मा हू, वह अन्तरात्मा है और जो परम हो गया है वह परमात्मा है। परमका अर्थ है पर माने उत्कृष्ट म माने ज्ञान लक्ष्मी, अर्थात् ज्ञान जिसके पूर्ण प्रकट हो गया है उसे कहते हैं परमात्मा। जो पुरुष परम समाधिमे स्थित हो, देहसे भिन्न ज्ञानमय परमात्माको जानता हो उसे अन्तरात्मा कहते हैं।

परमात्मदेव दो जगह देखा जाता है। एक तो अरहत और सिद्ध देवोमे और दूसरे अपने आत्मामे। अरहत और सिद्धदेव तो प्रकट सर्वज्ञ वीतराग हो गये हैं। और आत्मामे परमात्मत्व स्वभावरूप ध्रुव है तो अन्तरात्मा कहते हैं। जो अपने सहज ज्ञानस्वरूपको निरखे। मेरा स्वरूप जैसी परमात्माकी छटा है वैसा यह अव्यक्त-स्वरूप है। है वही स्वरूप अन्य नही है। जैसे जलका स्वभाव और निर्मल जल इन दोनोका वर्णन एक ही प्रकारका है। कोई पूछे कि निर्मल जल कैसा होता है? तो कहते हैं अत्यन्त स्वच्छ और जलका स्वभाव कैसा होता है? अत्यन्त स्वच्छ। इसी प्रकार आत्माका स्वभाव कैसा है? जैसा परमात्माका स्वभाव है तो स्वभाव दृष्टिसे अपने आत्मामे परमात्मतत्त्व देखा जाता है। यह अन्तरात्माका स्वरूप कह रहे हैं कि जो पुरुष परम समता परिणाममे ठहरकर अपने आत्मामे इस देहसे भिन्न परमात्मस्वरूपको जानता है उसको अन्तरात्मा कहते हैं। बहिरात्मा हेय है अन्तरात्मा कथाचित् उपादेय और परमात्मा सर्वथा उपादेय है। बहिरात्मापन छूट जाय, परमात्मापनकी प्राप्ति हो जाये इसका उपाय है अन्तरात्मा होना। अर्थात् सबकल्याणोंका उपाय एकमात्र यह ही है कि देहसे निराले अपने आपमे नित्य विराजमान शुद्ध ज्ञानस्वरूपको देखो लोकमे बाहर दृष्टि करने पर सर्वविवाद विसम्वाद ही नजर आते हैं। एकमात्र अपने स्वभावके निरखनेमे किसी प्रकारकी अशांति नही है। यह जीव अपने स्वरूपको भूलकर लोकमे अनेक आशाए और इच्छाए बनाता है। बस आशा इच्छा प्रतीक्षा यही तो दुख है। वैसे इस जीवको किसी प्रकार का क्लेश नही है।

भैया! यदि यह यथार्थपदार्थका ज्ञाता रहे किसी भी चीजको जाननेके लिए दो बातें समझनी पडती हैं। (१) इसको अन्य वस्तुवोंसे भिन्न जानना, और इसके अपने आपके स्वरूपमे पूर्ण तन्मय जानना है। जैसे यह अगूठा और यह अगूली है। यह अगुली अगुठेसे अत्यन्त जुदी है और यह अगुली अपने स्वरूपमे तन्मय है। इसी प्रकार अपने आपको भी देखो कि यह मैं आत्मा समस्त परपदार्थोसे न्यारा हू और अपने आपके स्वरूपमें तन्मय हू तब मेरी सत्ता है। मैं किसी परपदार्थमे घुल मिल जाऊ तो मेरी सत्ता नहीं है या मैं अपने स्वरूपको छोड दू तो मेरी सत्ता नही रह सकती। अपने आपको इस प्रकार देखो कि मैं सबसे न्यारा हू और अपने स्वरूपमे तन्मय हू। यही शुद्ध आत्माकी दृष्टि कहलाती है। इसको ही एकत्व विभक्त कहते हैं।

भैया! एकत्व और अन्यत्व इन दो भावनाओका जो स्वरूप है वही शुद्धतत्वके देखनेमें होता है। इस शुद्धताके प्राप्त करनेका उपाय है समता। किसी प्रकारका रागद्वेष सता रहा हो तो अपने आपका परमात्मस्वरूप नही देखा जा सकता है। यह समाधि तो शुद्ध आत्माके अनुभव रूप है। अपनेको सबसे न्यारा किसीके यहा कोई

तुम्हारा पुत्र नही, परिवार नही तुम्हारा तो शरीर तक भी नही है। यह तो केवल ज्ञानस्वरूप है–ऐसी अपने आत्मा की सुध लो। अपने अन्तरात्माकी सुधी लेनेका नाम है विवेक। पडिताई, और आत्माकी सुधि भूलकर बाहरी पदार्थोंमे हित ढूढना, बाहरी पदार्थोंसे अपना बडप्पन मानना यह सब कहलाती है मूढता, बहिरात्मापन। यह मैं आत्मा स्वभावसे वीतरागी हू। रागद्वेष आदि विकारमे रहित हू। यह मैं आत्मस्वभावसे सकल्प विकल्पसे परे हू। यह मैं आत्मा सहज आनन्द स्वरूप हू। इस शुद्ध आत्माका अनुभव होना यही परम समाधि है। जो परम समाधिमे स्थित होता है वह पडित विवेकी अतरात्मा होता है। पडित कौन कहलाता है? जो विवेकी है। पडाम् इति पडित। भेद विज्ञान जिसको प्राप्त होता है उसको पडित कहते हैं। वही अन्तरात्मा है और वही परमात्मा होता है।

भैया! ससारके इन जीवोपर दृष्टि दो तो मालूम होगा कि हमने कितनी उच्च स्थिति पाई है? प्रथम तो निगोदिया जीव, जिनकी चर्चा ही करना कठिन है वे दिखनेमे नही आते हैं, सर्वत्र भरे हुए हैं। एक आलूके धरासे खण्डमे अनन्ते निगोदिया जीव पाये जाते हैं। और जो मूली प्याज इत्यादि हैं उनमे भी अनन्ते निगोदिया जीव पाये जाते हैं। जो साग सब्जी खरीदते हैं वे यह भी सोचते है कि २ पैसेकी सब्जीमे रोगन भी खरीद लें। और उस दो पैसेके रोगनमे और भी अनन्ते निगोदिया जीव आ गये। अनन्ते निगोदिया जीव इस रोगमे ही विका करते हैं। उन साधारण वनस्पतियोंसे निकले तब पृथ्वी जल अग्नि वायु व प्रत्येक वनस्पति हुए, वहा घोर दुख उठाये। यह हमारी आपकी चर्चा चल रही है कि कितनी-कितनी योनियोको भुगतकर आज मनुष्य पदमे आये हैं।

उन एकेन्द्रियोमे निकले तो दो इन्द्रिय हुए। दो इन्द्रिय जीव होना भी बडा कठिन है। जिह्वा मिल जाये तो पदार्थोंका रस चखनेका आनन्द ले सकें। ऐसा क्षयोपसम होना यह एकेन्द्रियोमे तो कठिन चीज है। दो इन्द्रिय हो बने। इसके बाद तीन इन्द्रिय हुए, फिर चार इन्द्रिय हुए, फिर पचेन्द्रिय हुए। ५ इन्द्रिया मिल गयी तिस पर भी असज्ञी हुए तो अपने कल्याणका मार्ग नही मिल पाता है। सज्ञी जीव हुए तो पशु बन बैठे। भला बतलावो इसमे कौनसी स्थिति होगी? यह मनुष्यभव कितना दुर्लभ मिला है। सो जगतके जीवोपर दृष्टिपात करके अन्दाज करलो। मनुष्योमे भी तो निम्न जातिया हैं। निम्न कुलमे हुए, गरीबीकी दशा, दीनताकी दशा रही। यदि मनुष्य होकर भी दीनताकी हालत मिली तो उसका ही दुख मानते रहे, फिर मनुष्य बनकर क्या लाभ पाया?

आज हम आप मनुष्य हैं, उसमे भी उत्तम कुल मिला, उत्तम धर्म मिला, उत्तम बुद्धि मिली, सर्व प्रकार की साधन सम्पन्नता है। ऐसी स्थिति है तिस पर भी केवल विषयोंकी ओर ही दौड लगा रहे हैं, केवल परिग्रहोंकी ही, बडप्पन माननेकी ही श्रद्धा बनी तो मनुष्य होकर भी हमने क्या किया? हमारा कर्तव्य है कि हम विवेकी बनें, अतरात्मा बने इस देहसे भी भिन्न अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपको तको, सब इन्द्रियोंको सयत करो, मनका नियन्त्रित करो, कुछ न सोचो, कुछ न देखो, कुछ न सूघो, कुछ न चखो। कुछ भी न सोचो क्योकि इन बातोसे लाभ कुछ भी नहीं होता।

सब इन्द्रियोंके कामोको बद करके विश्रामपूर्वक अपने आपमे बैठो और इस प्रकार अपने आपको निरखो कि यह मैं जाननस्वरूप हू। केवल ज्ञान प्रकाश रूप अपने आपको निरखो तो वहा अपने स्वरूपका परिचय होता है, किन्तु इसके विरुद्ध यदि अपने आपको देख रहे है कि मैं गरीब हू, मैं सुखी हू, दुखी हू, धनी हू, अमुक हू परिवार वाला हू, स्त्री हू, पुरुष हू, गृहस्थ हू, साधु हू, त्यागी हू, मुनि हू, कितने ही रूपोमे अपनको देखते हैं तो क्या हालत होगी? सो यही देख लेना ये जगतमे रुलने वाले जीव हैं, ऐसी ही हालत होगी। इन-इन रूप मे नही हू मैं तो शुद्ध एक ज्ञानस्वभाव मात्र हू। ऐसा अपने आपमे आप निरखें तो उसे कहते हैं अन्तरात्मत्व।

"बहिरातमता हेय जानि तजि अन्तर आतम हूजै परमातमको ध्याय निरतर जो निन आनन्द पूजै॥"
बहिर्बुद्धिको तो छोडो, अन्तरात्माको ग्रहण करो और परमात्मस्वरूपका निरतर ध्यान करो। कल्याणके लिए यह एक करणीय बात रहेगी और चाहे बहुतसे यत्न कर डालो पर लाभ कुछ न मिलेगा। यह धन वैभवका समागम

पूर्वकृत कर्मोका फल है। यह वर्तमान आत्माके भावोका, इच्छाके परिणामोका फल नहीं है। धनकी प्राप्ति अपने आप होती है पुण्यका उदय पाकर। अपना कर्तव्य तो यह कि यथार्थ धर्मपूर्वक रहे, इसमें ही लौकिक सिद्धि है और पारलौकिक सिद्धि भी। शुद्ध ज्ञान अर्जन करो, अपने आपको सबसे निराला अद्भुत ज्ञानस्वभाव मात्र देखो।

देखिए स्थिति कुछ भी हो, किन्तु अपनेको शुद्ध देखेगा तो यथा सम्भव शुद्ध दर्शनका स्वाद आयगा। और घर छोडकर एकांत जगलमे भी बस जाय किन्तु अपनेको अशुद्ध तक तो वहाँ अशुद्धका ही स्वाद आयगा। एक बार बादशाहकी सभामे सब लोग बैठे थे। बीरबलको नीचा दिखानेके लिए बादशाहने एक बात छेड दी। बोला—बीरबल आज मुझे ऐसा स्वप्न आया कि हम तुम घूमने जा रहे थे। रास्तेमें दो गड्ढे मिले। एकमें भरा था गोबर और दूसरेमे भरी थी शक्कर। तो पहिले गड्ढेमे आप गिर गये और दूसरेमे मैं गिर गया तो जिस गड्ढेमे मैं गिर गया वह तो शक्करका गड्ढा था और जिसमे आप गिर गये वह गोबरका गड्ढा था। बीरबलने कहा महाराज मालूम होता है कि हमारा और आपका एक ही चित्त है। हमने भी ऐसा ही देखा पर इसके आगे और भी कुछ देखा कि आप हमे चाट रहे थे और मैं आपको चाट रहा था। अच्छा यह बतलावो, बादशाह क्या चाट रहा था? गोबर, और बीरबल क्या चाट रहे थे? शक्कर। देखो बीरबल पडे हैं गोबरके गड्ढेमे पर स्वाद किसका ले रहे हैं? शक्करका। और बादशाह किसका स्वाद ले रहे है? गोबर का। इसी प्रकार हम आपकी भी स्थिति हो रही है। कोई गृहस्थीके समागममे पड़ा हुआ है पर गृहस्थीसे उसे सम्बन्ध है, वैराग्य है, आत्मस्वभावकी प्राप्तिके लिए बडी उत्सुकता है तो घरमे रहकर भी धन वैभव कमाईमे ही अधिक ध्यान न कर अपने आपके ज्ञानस्वरूपमे लीन हो रहे है। और कोई पुरुष घर त्याग करके बड़ी तपस्या सहित अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं किन्तु उनके भीतर विषयोकी वाञ्छा नहीं गयी तो वे स्वमे लग रहे हैं कि विषयोमे, समागमे?

भैया! जिसकी जैसी दृष्टि होगी वैसा ही उसका निर्माण होगा। इस कारण हम अपनी दृष्टिको स्वच्छ ज्ञानपूर्ण बनाए जिससे हम सुखी हो सकें। इस वैभवको महत्व न दो। जिस किसी भी प्रकार धन बढानेकी चाह न करो। अपना श्रद्धान आचरणरूप ज्ञानरूप रहा तो उस वृत्तिसे अपना कल्याण होगा। इसके लिए अनेक यत्न करके भी, अपना तन, मन, धन, वचन न्यौछावर करके भी ज्ञानकी प्राप्ति करना चाहिए और अपनी दृष्टिमे यह श्रद्धा रखना चाहिए कि इस लोकमे सर्वोत्कृष्ट वैभव है तो आत्मतत्त्वका शुद्ध ज्ञान है। इससे बढकर और कोई वैभव नहीं है। मान लो धनमे हजारपतिसे लखपति हो गये। आखिर है तो आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप है। उसमे क्या पहुच गया, वहा भी कुछ आदर होता है तो उस धनीके उदार भावो रूपकार भावोसे ही तो कर रहे हैं। उत्थान क्या किया?

जब तक विवेक नहीं जागता है तब तक प्रत्येक स्थितिमे अपने विकारोका ही स्वाद लिया जाता है। अविकारी ज्ञानस्वरूपका स्वाद आना यह सबसे दुर्लभ वैभव है। "धन, कन, कचन, राज सुख सबहिं सुलभ कर जान। दुर्लभ हैं ससारमे एक यथारथ ज्ञान" सब चीजें मिल जायें किन्तु एक यथार्थज्ञानका पाना अत्यन्त दुर्लभ चीज है। हम सब जीवोको देखते हैं। सबको हम इस शरीर रूपमे देखते हैं। तो जैसे अपने आपको अपने शरीर रूप देखना बहिरात्मापन है, इसी प्रकार दूसरोको इस शरीररूप देखना यह भी मूढता है, बहिरात्मापन है। जैसे हम आपको शरीरसे भिन्न ज्ञानमात्र तकते हैं इसी प्रकार इन सबको भी इस शरीरसे भिन्न अपने स्वरूपको ज्ञानमात्र देखो। यही प्रभु है, हम सब जीवोको प्रभुके स्वरूपमे देखें और उनसे व्यवहार करते समय यथासम्भव यह दृष्टि बनाओ कि यह प्रभु है जिसकी बात कर रहे है। भले ही इसकी प्रभुता रागद्वेषके कारण तिरोहित हो गई है यह प्रभु है।

यदि हम इन सब जीवोको प्रभुके स्वरूपमे देखते हैं तो उससे हमारा कल्याण है और इन्हे इसी अशुद्ध-पर्यायके रूपमे देखते हैं तो इसमे शुद्धदृष्टि पहिले बन गयी। जब तक हम इसको अशुद्ध देखेंगे तब तक हमारे बधन

के ही परिणाम बने रहेंगे। हम जीवोंके गुणोंकी ओर दृष्टि दें। यद्यपि ये ससारी जीव स्वभावमे तो गुणमय हैं किन्तु उपाधिवशमे परिणति कुछ दोषरूप हो गई है। पर वहा यदि हम दोषरूप देखते हैं तो हमे पहिले अपनी दृष्टि मलिन बनाना पडेगा और यदि हम ज्ञानरूप देखते हैं तो हमे अपनी दृष्टि पहिले निर्मल बनानी पडेगी। इसलिए सर्वत्र हम गुणरूप दृष्टि बनाए, दोषरूप दृष्टि न बनाए।

पूजा पढनेके बाद अतमे शाति पाठके समय पढते हैं ना "शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुति सगति सर्वदार्यै सद्वृत्ताना गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् सर्वस्यापिप्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे। सपद्यन्ता मम भवभवे यावदेतेऽपवर्ग ॥ हे प्रभु! जब तक मुझे अपवर्ग न मिले, मोक्ष न मिले तब तक ये सात बातें मुझमे बनी रहें। प्रथम तो शास्त्राभ्यास, शास्त्रका पढना यह जिनवाणी मेरे पालन पोषणके लिए माताकी तरह है इसलिए जिनवाणी को माता कहते हैं। जैसे माता पुत्रके दोषोंकी परवाह नही करती, केवल हितकी परवाह किया करती है इसी प्रकार यह जिनवाणी इन दोषी जीवोंके दोषोंकी परवाह नही करती। एकदम हितकी बातें बताने करनेमे लगी रहती है। इस तरह हित ही प्राप्त होता है। शास्त्रोंका अभ्यास करना यह मूल कर्तव्य है। दूसरा काम है भगवान् जिनेन्द्रदेव के चरणोंका ध्यान बना रहे, उनमे मेरा परिणाम बना रहे, यह दूसरी बात मानी है। किसने? पूज्य करने वाले ने। तीसरी बात कहते है कि सदा श्रेष्ठ पुरुषोंकी सगति मिले। चौथी बात कहते हैं कि सद्वृत्तोंके गुणगानकी कथा बराबर बनी रहे। किसी जीवोंके बारेमे बोलो तो दूसरोंके गुणोंको बोलो। दूसरे मनुष्योंकी प्रशसा आप करेंगे तो उसमे सक्लेश आपको अन्तरमे न करना पडेगा और बडे आनन्दका आप भोग करेंगे और सुनने वालोंका कुछ डर न रहेगा।

पाचवी बात है किसीकी निन्दा न करना। किसीकी निन्दा करें तो आपको सक्लेश उत्पन्न करना पडेगा। जब आप अपनेको सताकर बुरे परिणाम बनायें तब दूसरोंकी निन्दा करनेमे आपका साहस होगा और जिसकी आप निन्दा करेगे वह आपको क्या पुरस्कार देगा? पुरस्कार क्या देगा? निन्दा करनेका परिणाम तो अच्छा न मिलेगा। परिणाम ही यही मिलेगा कि आप अपनेमे सक्लेश उत्पन्न करेंगे। दूसरे पुरुषोंको नीचा दिखाना, अपने आपको ऊ चा निरखना इसके फलमे विपत्ति ही आती है। जिसकी निन्दा की उसमे कुछ न कुछ भयका परिणाम बना और निन्दा करनेके बाद जो कुछ उत्तर मिलेगा वह आपको ही भोगना पडेगा। कर्मबधन होगा। कर्मबधनसे ससारमे रुलनेकी बात बनाली। कितना अवगुण है और सिद्धि कुछ भी नही है। जीवोंकी बुराई करना, भाईकी, पडोसीकी, मित्रकी बुराई करना क्या यह व्यर्थका श्रम नही है? किसी धनीकी, किसी प० की जिसकी आप बुराई चाहते हैं यदि कोई बुराईका प्रसग छिड जाय तो चाहे रात्रिके ११ बज जायें तो भी नीदका कोई काम नही है खुद बुरे हैं सो बुराई चाहते हैं तो इससे बढकर अनर्थ और कहो क्या हो सकता है? व्यर्थके विवादमे तो समय ही खोते हैं, लाभ कुछ नही मिलता है। जब उठ कर घर जाते हैं तो अपनेको रीता और शून्य अनुभव करते हुए जाते हैं। अगर कोई गुण की बात छिड जाय गुणगानमे ही समय व्यतीत हो तो उस चर्चाको सुनकर जब घर जाते हैं तो ऐसा लगता है कि कुछ कुछ लेकर जा रहे हैं, कुछ कुछ भरपूर होकर जा रहे हैं। इतनी दृष्टि करनेमे कितने गुण है। ऐसी ही दृष्टि करनेमे सम्पत्ति मिलती है। इसके विपरीत दृष्टि करनेमे विपत्ति मिलती है। पर मोही जीव विपत्ति मिलनेकी ही दृष्टि बनाना सुगम समझता है और पारमार्थिक सम्पत्ति मिलनेकी दृष्टिको कठिन मान रहा है।

भैया, खूब सोचलो इस जगत्मे हमे क्या करना है? आपको क्या करना है? यह जगत् बिखर जायगा, ये समागम बिखर जायेंगे, इस तरहसे कुछ भी हाथ न रहेगा। केवल अकेले यह यहांसे जायगा। क्या होगा इसका? जैसा जीवनभर परिणाम किया उसके अनुसार ही इसकी सृष्टि होगी। यहा तो अपना गौरव और पोजीशन बनानेमे माया छल करके अपना काम बना रहे हैं पर मरनेके बाद अपना पोजीशन बनानेमे छल माया काम नही कर सकता।

जिस पर्यायमे उत्पन्न होनेका काम बन गया है तो मरनेके बाद चाहे कैसा ही बडा पुण्य हो उसका छल नही चल सकेगा, वैसी ही गति वैसी ही चेष्टा हो जायगी जैसा उसने परिणाम किया था तो हमें परिणामोका बडा ध्यान करना चाहिए। इस थोडेसे वैभवको कमानेके लिए कुछ बेइमानी बर्ती जाती है, छल किया जाता है किन्तु इसका परिणाम अतमे बडा भयकर बनता है। कुबुद्धिके कारण धोखा अन्याय भी करते है, कुछ दिन वैभवका समागम रहा फिर समाप्त हो गया। इन वैभवोमे कषाय बुद्धि रहनेके कारण पापबध किया। परिणाम मलीन किया था सो पाप बध बहुतसा बना लिया था अब पापोका उदयकाल आ गया तो वैसी ही परिस्थिति बन गई। अगर सच्चाई, दूसर की भलाईका भाव रखते हो तो उसका फल अच्छा होगा। चाह आज कुछ वैभवमे घाटा हो जाय किन्तु इस शुद्ध परिणाममे जो पुण्य बध किया है उसका उदयकाल आने पर नियमसे सुख साता होगा। अपने परिणाम ही तो सब कुछ कमाई किया करते हैं। तो सर्वप्रकारका उद्योग करके अपने आत्माका सही दर्शन, ज्ञान और आत्माका आदर बना रहे यह सर्वोत्कृष्ट अपना कर्तव्य है।

भैया! यहा सुखके लिए मदिर आते है, दर्शन करते है, स्वाध्याय करते है। ऐसा करते तो हैं पर विधिपूर्वक ज्ञानरूप बर्तो तो कल्याण है। ज्ञानार्जनकी विधि यह है कि आप पहिले तो वर्षभरम एक माह कमसे कम और डेढ दो माह बन सके तो अच्छा, घर छोडकर कही चले जावो जहा पर कि कुछ ज्ञानकी शिक्षा मिले और साथ ही वैराग्य और चारित्रकी वृद्धि हो सके। फिर घर आ जावो। हम घर छोडनेकी बात नही कह रहे हैं। दूसरी बात यह है कि जो ११ महीने बाकी रहे उनमे विधिवत् शास्त्र स्वाध्याय कमसे कम एक घटा करें। तीसरा काम यह है कि कोई एक पुस्तक ले लें जिसको विद्यार्थीकी तरह पढे और उसकी लकीरें भी याद रख सकें और जान सकें। ये तीन बातें चलती रही तो ज्ञानवृद्धि क्यो न होगी? आप सोचते होगे कि वर्षो गुजर गये बडा स्वाध्याय किया और ज्ञान बढा तो पहिले आपका इन तीन बातोका प्रयोग करना चाहिए। इन तीन बातोका प्रयोग करके देखो कि ज्ञानवृद्धि कैसे नहीं होती? ज्ञायकस्वरूप ही एक सार है, वही साथ जाने वाला है, इसलिए ज्ञानकी उपासनामे लगना चाहिए।

परमात्मा कौन होता है? जो समस्त परद्रव्योको छोडकर केवल ज्ञानमय, कर्मरहित, शुद्धात्माको उपयोग द्वारा प्राप्त करता है वही परमात्मा होता है। शुद्धात्माका अर्थ है निराला, अधिकारी। शुद्ध पर्यायोवाला नहीं, किन्तु आत्माके अस्तित्व वाला, भिन्न तत्त्वो वाला परद्रव्योसे रहित अपने स्वरूपास्तित्व मात्र निजतत्त्वको शुद्धात्मा कहते हैं। केवल अपनेको सबसे निराला भर देखना है तो स्वरूप भी अवगत हो जायगा। सबसे निरालेका नाम शुद्ध है। जिसे इगलिशमे कहते हैं प्योर। पौरका अर्थ है खालिस, केवल। इसे ही शुद्ध कहते हैं और शुद्ध होनेके लिए उपाय भी यही किया जाता है। जैसे चौकीपर चिडिया वगैरहकी बीट लग गयी है तो वहा कहते है कि चौकीको शुद्ध करो। वह मनुष्य क्या करता हैं? चौकीके अतिरिक्त जितने परपदार्थ हैं, जितने परद्रव्य इस चौकीसे चिपके हैं उन सबको अलग करता है। यही चौकीको शुद्ध करनेका उपाय है। केवल खालिस रह जानेको ही शुद्ध कहते हैं। जो परद्रव्योको छोडकर अर्थात् समस्त परद्रव्योंको अपनेमे न मानकर केवल ज्ञानमय शुद्धआत्मतत्त्व देखता है, वह परमात्मा होता है। इस बातका इस गाथामे वर्णन करते हैं।

अप्पा लद्धउ णाणमउ कम्मविमुक्के जेण।
मेल्लिवि सयलु वि दव्वु परु सो पर मुणहि मणेण ॥१५॥

जिसने कर्मविमुक्त ज्ञानमय आत्माको प्राप्त किया है जो, केवलज्ञानसे रचा हो अर्थात् मात्र अपने स्वरूप से रचा हो और ज्ञानावरणादिक द्रव्य कर्मोसे और रागद्वेषादिक विकार भावोसे रहित हो ऐसे निजज्ञायकस्वभावको जिसने प्राप्त किया है वह परमात्मा होता है। अपने आपको केवल बनानेका नाम कल्याण है, मोक्ष है, केवल बनने

के लिए केवल देखना सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। अपने आपको केवल देखे बिना केवल बन नही सकता। यह परिवारमे लिप्त धन वैभवसे मुक्त, शरीरमय अपने आपको देखे और ऐसा आशय रखता हुआ धर्मपालन भी करे अर्थात् व्यावहारिक रुचिवाला धर्म भी करे तो मोक्षमार्ग नही मिल सकेगा। मोक्षका अर्थ है केवल रह जाना और केवल रह जाना तब बन सकता है जब अपनेको केवल देखे। केवल देखनेमे दो बातें आई। समस्त परपदार्थोसे रहित देखना और अपनेको स्वरूपास्तित्वमात्र देखना। इस विधिसे समस्त परद्रव्योका विकल्प छूट जाता है। जो अपनेको सहज चैतन्यस्वरूपमात्र चित्प्रकाशमात्र निरखता है वह केवल बनता है, अर्थात् परमात्मा होता है।

त्याग केवल अपने आपके स्वरूपके ग्रहण करनेका नाम है। बाह्य वस्तुयें कितनी हैं? किन किनका विकल्प बनाकर त्याग किया जा सकेगा? केवल एक चैतन्यमात्र निजस्वरूपके ग्रहण करनेमे समस्त पदार्थोंका त्याग हो जाता है। व्यवहारमे जिन चीजोमे पडकर जिसका आश्रय लेकर हम विकल्प बनाया करते हैं, बुद्धिपूर्वक उन पदार्थोमे अपनेको अपने उपयोग द्वारा बाहर हटा लेना है क्योंकि कर्मोके उदयका फल भोगनेके लिये बाह्यपदार्थ आश्रयभूत बन जाया करते हैं। हम सबपदार्थोंको कहा तक हटाए? एक अपने आपके स्वरूपके ग्रहण करनेमे सबका त्याग हो जाता है।

जैसे वनस्पतिया असख्यात हैं। कोई यह चाहता है कि मैं काम लायक ५—७ वनस्पतिके सिवाय सब वनस्पतियोको त्याग दू तो वह वनस्पतिका नाम लेकर कहा तक त्याग करेगा? उन दो चार वनस्पतियोका नाम लेकर कि इनके अतिरिक्त मेरा सब वनस्पतियोका त्याग है—ऐसा कहे लो त्याग हो गया। इसी प्रकार मैं केवल अपने ज्ञानस्वरूपका ग्रहण करता हू अन्य किसी भी तत्त्वको मैं ग्रहण नही करता, न आत्मारूप मानता। ऐसे सकल्प मे सर्वपदार्थोका त्याग हो जाता है। समस्त पदार्थोंका त्याग करके और रागादिक परभावोका त्याग करके अर्थात् आत्मारूपको न ग्रहण करके जो शुद्धस्वरूपको ही अनुभवता है वह परमात्मा होता है, ऐसा जानो। ऐसा किस प्रकारस बन सकेगा? इसके लिए प्रथम शल्योका त्याग करना होगा।

शल्यें ३ होती हैं माया, मिथ्यात्व और निदान। इन तीनो शल्योरूप जो समस्तविभाव परिणमन हैं उनसे रहित बना लेना यही आत्माकी शुद्धि है। जगत्के जीव इन तीन सकटोमे फसे हुए हैं माया, मिथ्या और निदान। इन शल्योका मूल गुरु तो मिथ्यात्व है। पदार्थोंका यथार्थस्वरूप न समझकर किसीका किसीमे हित समझना अपने आपमे असमानजातीय इन भावोको आत्मरूपसे मानना यही मिथ्यात्व है। मैं एकमात्र ज्ञानप्रकाश हू, जानन ही मेरा काम है, जानन ही मेरा भोग है, जानन ही मेरा सवस्व है और जाननका आधारभूत ज्ञानस्वभाव ही मेरे लिए ज्ञानस्वभाव है। ऐसा न जानकर अपने आपको नानारूप मानना सो मिथ्यात्व है। जब मिथ्यात्व परिणाम है तो निदान हुआ करता है, परवस्तुवोका बधन हुआ करता है। जब निदान होता है तो उस निदानमे शातिके लिए मायाचार वतना पडता है। माया, मिथ्या और निदान इन तीन प्रकारके परिणामोमे यह सर्व जगत् लिप्त हो रहा है। इन विभावोसे रहित मनके द्वारा अपने आपको परसे रहित ज्ञानमात्र निरखो। इस प्रकारके उपायसे उक्त लक्षण वाला परमात्मपद प्रकट होता है और यह परमात्मपद उपादेय है। इसके अतिरिक्त समस्त वैभवरूप परद्रव्य हेय है। इतना शुद्ध चित्त बने कि जिससे यह निर्णय बना रहे कि परमात्म दशा ही मेरे लिए हितकर है। जहा राग है, वहा फसाव है, जहा फसाव है वह न सुहावे, उससे रहित केवल ज्ञानमात्र निजस्वरूपकी बात सुहाए, इतना जिसके निर्णय है उसको ही शुद्धमन वाला कहते हैं। लौकिक बातोमे यदि चतुराई अधिक प्राप्त कर ली तो उसे चतुराई नही कहते किन्तु अपने आपके स्वरूपके दर्शनमे यदि कुशलता प्राप्त करली तो क्षणमे ही जब चाहो तब एकदम इस ज्ञानसुधाके समुद्रमे अपने उपयोगको बसा सकोगे। ऐसी योग्यता यदि बनाली तो इसको ही अपनी चतुराई कहते हैं।

एक सेठजी थे सो अपने मकानके आगे चबूतरे पर बैठकर रोज दातून किया करते थे। और सामनेसे

भैंसे निकला करती थी। उनमेंसे एक भैंस मानो पंजावकी हो वडी सुन्दर सींग वाली थी मेढ वकरी जैसी, एकदम गोलाईको लिए हुए सींगें थी। सेठजी सोचते हैं उसे देखकर कि ये सींग यदि मेरे सिर पर लगी होती ता मैं कितना सुन्दर जचता ? रोज दातून करने वैठते और रोज भैंस सामनेसे निकलती तो उसको देखकर यही विचार करते। लगातार विचार करते-करते ६ महीने हो गये। ६ महीनके वादके दिन वही भैंस सामनेसे निकली। सेठजी ने सोचा देखो विचार करते करते ६ महीने हो गये, अव तो इन सींगोको अपने सिर पर लगाऊँ। सो सोचा कि अपने सिर को सीगोमे मारने लगें तो सीगें लग जायेंगी। वह सीगमें सिर लगाने लगा तव भैंस विचकी तो और उसे कुछ न सूझा सो भैंसके गलेमे चिपट गया। वह भैंस एक फर्लांग तक दौडी। सेठजी उसके गलेसे चिपके रहे। गावके लोग सेठजी को वचाने दौडे। सेठजी से वोले अरे सेठजी ! विना विचारे यह क्या कर रहे हो ! सेठजी वोले कि मैंने विना विचारे तो कुछ नही किया, विचारते-विचारते तो ६ महीने वीत गए थे, तव फिर मैंने यह काम शुरु किया। अरे ६ महीना क्या, वर्ष दो वर्ष भी विचार करते वीत जायें तो क्या यह कोई चतुराईका विचार था ?

भैया, परमार्थके मार्गसे चलकर देखो परद्रव्योके सम्बन्धमें कुछ भी विचार करो, कितनी ही अपनी चतुराई खेलो, इस वुद्धिसे धन आयगा, इस पद्धतिसे अमुकका धन छीन लिया जायगा, उसमे सफलता भी हो, धन भी वढ जाय किन्तु वह सव चतुराई नही कही जा सकती। उसका फल तो एकदम अभी न सही तो मरनेके वाद पशु-पक्षी वनकर भोगना पडेगा। वहा कोई मना नही कर सकता कि मैं कीडे-मकोडे न वनूगा। यहा कुछ पुण्यका उदय है तो कुछ हठ भी चल जाती है मगर मृत्युके वाद कुछ हठ न चलेगी। यहां पुण्यके उदयमे थोडा वहुत मायाचार का वहकावा भी किया जा सकता है पर परिणामोका फल अवश्य मिलता है। मरण वाद चाल न चलेगी। पर द्रव्योके सम्बन्धमे हम कितना भी विचार करें, कितने ही यत्न किया करें तो उसे चतुराई नही कही जा सकती। गुरुजी कहते थे कि ठगा जाना वुरा नही है पर दूसरोको ठगना वुरा है। दूसरोके ठगनेका भाव किया तो उसमे नुकसान पडता है और खुद ठग गया तो उसमे नुकसान नही है। यदि ठग गये तो कुछ पैसा या वाह्य वस्तु कम हो गया, इतना ही तो हुआ, मगर परिणाम तो मलिन नही हुआ। ठगना वुरा परिणाम है, ठगा जाना कोई हानि वाली स्थिति नही है।

जव चित्तमे यह वात समा जाय कि यह मेरी स्थिति कर्मवध करने वाली है, विश्वासके योग्य नही है तव यह वात समा जाती है कि परमात्मपद ही सारभूत है, शरण है। भैया अगर उसे प्राप्त कर सकते हैं, थोडा चित्तमे साहस ही वनाना है विषय कषायोसे ही निवृत्त होना है फिर तो अन्य सव साधन सुगम होते चले जाते हैं। परमात्मा कौन होता है ? जो अपनेको शुद्ध निरखता है, शुद्धके माने रागद्वेषरहित नही किन्तु सव परपदार्थोंसे न्यारा केवल अपने अस्तित्व मात्र। जैसी दृष्टि होती है वैसी सृष्टि होती है। हम शुद्ध वनना चाहते हैं तो हमे शुद्ध का ध्यान करना होगा। शुद्धका ध्यान किए विना हम शुद्ध नही हो सकते हैं। शुद्ध तत्त्वका ध्यान करनेके लिये यत्न यह आना है कि किसी भी परचीजका ध्यान न करें। हम तो स्वत अशुद्ध हैं नही। रागादिविकारोसे रहित है। सो अपनी ही सहज स्थितिका ध्यान करके ही तो मोक्ष पा सकेंगे।

अरहन्त और सिद्ध परमात्मा शुद्ध हैं। वे रागादि दोषोसे रहित हैं। सो हैं तो शुद्ध किन्तु परद्रव्य है, मेरे अस्तित्वसे अत्यन्त पृथक हैं। सो किसी परद्रव्यका आश्रय करनेसे उपयोगमे निर्विकल्पता नही आती। वे पर पर ही तो हैं। परकी ओर निज उपयोग एकमेक स्थिरतासे रह सके यह नही हो सकता। किन्तु जिन जीवोकी विषयो मे ही प्रवृत्ति उपयोग है, उन्हे शुद्ध परमात्मा अरहत सिद्ध प्रभुके ध्यानमे होना ही चाहिये। उसका आश्रय करनेसे भी अशुद्धता नही होती। यदि खुद शुद्ध दृष्टिमे दृढ है तो विना किसीके आश्रय किए हम मोक्षमार्गमे वढते चले जायेंगे। इसका हल द्रव्यानुयोगसे किया है। हमें रागरहित पर्यायशुद्ध परद्रव्यका आश्रय करनेकी आवश्यकता नही है किन्तु समस्त परपदार्थोंसे भिन्न केवल खुदके स्वरूपास्तित्वमात्र निजका आश्रय करनेकी आवश्यकता है। इस ही

को शुद्ध कहते हैं ।

द्रव्यानुयोगसे शुद्धका क्या अर्थ है, परसे न्यारा अपने स्वरूपास्तित्वमात्र होना इसीका नाम शुद्ध है । वह चाहे वर्तमान परिस्थितिमे विकार पर्यायमे परिणति है और चाहे किसी भी प्रकारकी परिणति हो उस पर दृष्टि देना है । इसे एकत्वविभक्त कहते है । विभक्त माने अन्यमे न्यारा, एकत्व मान एकत्वमय, अपने स्वरूपमात्र । ऐसे एकत्व विभक्तनिज स्वरूपका आश्रय करनेसे परमात्मत्व प्रकट होता है । यहा तीन प्रकारकी आत्माओका वर्णन चल रहा है । बहिरात्मा तो वह है जो बाहरमे अपना आत्मा समझता है, अर्थात् ये बाह्यपदार्थ मेरे हैं, उनसे ही मेरा जीवन है इनसे ही मुझे सुख है, इनसे ही मेरा हित हो सकता है । जैसे माता कह देती है ना कि मेरा तो सब कुछ मेरा बच्चा है, यहि मेरा सर्वस्व है, इस प्रकार सभी चेतन अचेतन पदार्थोमे जो ऐसा विश्वास रखते हैं कि यही तो मेरा पुत्र है, यही तो मेरा जीवन है यो जो अपना नास्तित्व समझते है वे जीव बहिर्मुख कहलाते हैं । सीधे शब्दोमे जो देहको ही आत्मा मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं ।

शरीर ही मैं हू, और इन लौकिक पदार्थोमे ही मेरी इज्जत है, दो चार आदमियोंने मुझे बडा कह दिया तो मेरा जीवन सफल है, मेरी इज्जत हो गयी पोजीशन बन गयी । क्या हुआ कुछ विवेक तो करो । ये रागी, द्वेषी, मोही, प्राणी स्वय जगतमे रुलने वाले, अपवित्र, मलीमस प्राणी हैं । उन्होने अच्छा कह दिया, बडा कह दिया उसमे ही अपना पोजिसन समझते, यह सब बहिर्मुखता है । ये सब विडम्बनाये शरीरको आत्मसर्वस्व माननेके कारण हो जाया करती हैं । पहिले देहको माना कि यह मैं हू, ये मेरे हैं, तब बाहरी पदार्थोसे निमित्तनैमित्तिक चलता है ना ? इस कारण बाह्य अन्य पदार्थोमे ममता उत्पन्न होती है । ससारके दुखोका मूल शरीरमे आत्मबुद्धि करना है ।

भैया, एक यह निणय करना अपने भावनिर्माणके लिए बडे महत्वकी है कि हम अपने आपको कैसा अनुभव करें कि हम शाति, सुखी, महान, निराकुल, पवित्र, शुद्ध बन सके ? और हम अपने आपको कैसा मानते चले आये कि जिसके कारण हम ससारमे व्याकुल मोही बने हुए रहे ? निर्णय उपयोग तो यही एक है, ज्ञानकी वृत्ति तो यही एक है किन्तु यह ज्ञानवृत्ति बाह्यपदार्थोमे लगती है तो ससारमे रुलना बना है । और ज्ञानवृत्ति यदि अपने अन्तरमे त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यस्वभावमे प्रवृत्त है तो हम मोक्षमार्गी है । जो कुछ करना है वह अन्तरमे गुप्त ही गुप्त अपने आपमे करना है । धर्म कही दिखाकर नही करना है । दिखावट, बनावट, सजावटमे धर्म नही हुआ करता बल्कि वह तो पाप ही बसाता है । धर्म तो अन्तरमे गुप्त अपना स्वभावमात्र है । यह किया जा सका तो समझिये हम ससारसे तिर रहे हैं । अपने आपको सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र न तक सके तो हमारा धन पानेका बडप्पन भी व्यथ है और नाना प्रकारकी बुद्धिकी कुशलता पाना भी व्यथ है ।

भैया ! जिन जिन बातोंसे लोकमे बडा माना जाता है वे सब बातें व्यथ हैं क्योंकि दूसरे लोग, जिनके लिए तुम श्रम कर रहे हो, वे भी तुम्हारी मदद न कर सकेंगे । यो विवेक करके बाह्यमे अपनी आत्मा न मानकर अन्तरमे अपने ज्ञायकस्वरूपको ही आत्मा मानना है, इसे ही अन्तरात्मत्व कहते है । यह कमधूल कैसे उडे ? यह शरीरका बधन कैसे मिटे ? ये नानाप्रकारके विषय कषाय कैसे दूर हो ? काम बहुत पडा है करनेको । अरे काम नानाप्रकारके नही करनेको पडे हैं । काम करनेको पडा है केवल एक । एक ही कामके फलमे नानाप्रकारके कम अपने आप हो जाते हैं । यह मैं एक ज्ञायक हू, सबसे निराला केवल अपने ही स्वरूपमात्र हू । जैसा कि यह अमूर्त है, रूप, रस, गध, स्पश रहित है, ऐसा अपने आपमे अनुभवना, देखना एक ही काम है । इस कामके प्रसादसे ये सवविलक्षण काम अपने आप हो जाया करते हैं ।

इस प्रकार आत्माका प्रतिपादन करने वाले इस प्रथम महाधिकारमे सक्षेपमे तीन प्रकारकी आत्माकी सूचना देते हुए इन पाच गाथावोमे तीन प्रकारकी आत्माओका वणन हुआ है । केवल ज्ञानानन्द व्यक्तिरूप सिद्धि जिससे प्राप्त होती है ऐसे शुद्ध जीवकी व्याख्याकी मुख्यतामे १० गाथाए कही जायेंगी । व्यवहारमे तो शरण प्रभु

की स्मृति है और निश्चयसे शरण अपने आत्मस्वभावकी दृष्टि है, आत्मस्वभाव और प्रभु विकाश दोनोका समान स्वरूप है। इस कारण छठवें सातवें गुण स्थानमे प्रभु भक्ति आत्म उपासना करते हुए ज्ञानी सत कहा करते। सो भैया! परमात्माके स्वरूप स्मरणमे विश्वास वनाए, आचरण वनाए और चेतन अचेतनका यथार्थ अवगम करें क्योंकि इनको छोडकर जाना ही पडेगा। अत अपने अन्तरात्माको प्राप्त कर वस एक ही यह अपना कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त इस मुझ आत्माका कोई काम नही।

तिहुयण वदिउ सिद्धिगउ हरिहर झायहिं जो जि।
लक्खु अलक्खे धरिवि थिरु मुणि परमप्पउ सो जि ॥१६॥

परमात्माका स्वरूप स्पष्ट रूपसे इस दोहेमे कहा जा रहा है जो त्रिभुवन वदित है, तीनो लोक जिसकी वदना करते हैं। तीन लोक हैं (१) ऊर्ध्व लोक (२) मध्यलोक (३) अधोलोक। ऊर्ध्वलोकके पति देवेन्द, मध्यलोक के पति राजा और सिंह, अधोलोकके पति भवनेन्द्र व्यन्तरेन्द्र। इन इन्द्रोने जब परमात्म देवकी वदनाकी है तो इसका अर्थ है कि तीनो लोकोने इसकी वदनाकी है। वह परमात्मप्रभु शुद्धिप्राप्त है, अपने गुणोकी सम्पूर्ण शुद्धिको प्राप्त है। केवलज्ञान, केवलदर्शन अनन्तानन्द शक्ति करके सम्पन्न है। ऐसे परमात्मदेवका हरिहर, हिरण्य, गन्धर्व आदि ध्यान करते हैं। क्या करके ध्यान करते हैं कि लक्ष्यको अलक्ष्यमे स्थिर करके, (अलक्ष्यको लक्ष्यमे स्थिर करके) लक्ष्योको अलक्ष्योके द्वारा धारण करके। लक्ष्य है अपना मन जो लक्ष्यमें आता है। उस लक्ष्यमे अलक्ष्य वीत राग निर्लेप नित्यानन्द स्वभावी परमात्माको चित्तमे धारण करके हरिहरादिक ध्यान करते हैं। कैसा है वह परमात्म देव? स्थिर है जिनके सर्ग विसर्ग और उपसर्ग आता नही है ऐसे परमानन्दको हे प्रभाकर भट्ट! परमात्मा समझो, परमात्मा जानो।

परमात्मा वीतराग और निर्लेप होता है। उनका ध्यान करनेसे कही वह भगवान् प्रसन्न होकर अपनी जगह छोडकर भक्तको सुखी करनेके लिए परिश्रम करने नही आता। वह समस्त ज्ञेयका ज्ञायक है फिर भी अपने आनन्द रसमे लीन है। किन्तु यह भक्त अपने उपयोगसे जब परमात्मस्वरूपका विचार करता है, उनकी उपासना करता है उस कारण भक्तमे अपने ज्ञानका प्रभाव प्रकट करता है। अपने ज्ञानका विकाश होना यही आनन्दका हेतु है। इस कारण जैसे दर्पणके सामने मुख करनेसे मुख करने वालेका मुख स्वयमेव दिख जाता है इसी प्रकार पर-मात्माके स्वरूपमे अपना उपयोग लगाने वालोको समस्त निजी वैभव स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं। भगवान् केवल ज्ञानानन्दादिकी व्यक्ति रूप मुक्तिको प्राप्त है।

प्रभुदर्शनसे हम सीखें कि परमात्माके सदृश रागादि रहित आनन्दमय परमात्मा साक्षात् उपादेय हैं। जिस कार्यमे अपना यथार्थप्रयोजन सिद्ध न हो उस कार्यकी वाच्छा विवेकीजन नही करते हैं। तो परमात्मास्वरूपकी उपासनामे यदि अपना यथार्थ प्रयोजन नहीं निकलता है तो वह प्रभु अन्य लोगोकी तरह एक बडा है। इसलिए उनकी दासता करली है, इससे प्रयोजन कुछ नही निकलता। किन्तु ऐसा नही है, क्योंकि जैसे हम अपने ध्यानसे यदि विषय कषायोंके साधनभूत कुटुम्ब परिवार आदिका ध्यान करते हैं तो वहा मोह मलीनता आदि विकार हस्तगत होते हैं, वैसे ही स्वय वीतराग शुद्ध ज्ञानमय परमात्मदेवकी उपासना करते हैं तो इस ज्ञानमे स्वयमेव ही ज्ञानका विकास होता है।

जगतमें सुख और दुख ज्ञानकी कला पर निर्भर हैं। ज्ञान ही आपकी सर्वसम्पत्ति है, सर्वसाधन है किन्तु ज्ञानी अपनेमे कुछ हीनताका अनुभव करता है, अथवा किसी प्रकारका विकल्प वनकर अपनेको दुखी समझता है तो वह दुखी है और चाहे कितनी ही विपत्तिकी स्थितिको प्राप्त होना पडा हो किन्तु उस ज्ञानके द्वारा अपने आपको ऐसा निरखो कि यहा विपदाका क्या काम है? यह तो मैं अकेला ज्ञानमय, नित्य विराजमान हू। इसमे किसी पर-

की स्मृति है और निश्चयसे शरण अपने आत्मस्वभावकी दृष्टि है, आत्मस्वभाव और प्रभु विकाश दोनोका समान स्वरूप है। इस कारण छठवें सातवें गुण स्थानमे प्रभु भक्ति आत्म उपासना करते हुए ज्ञानी सत कहा करते। सो भैया! परमात्माके स्वरूप स्मरणमे विश्वास बनाए, आचरण बनाए और चेतन अचेतनका यथार्थ अवगम करें क्योकि इनको छोड़कर जाना ही पडेगा। अत अपने अन्तरात्माको प्राप्त कर बस एक ही यह अपना कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त इस मुक्ष आत्माका कोई काम नही।

तिहुयण वदिउ सिद्धिगउ हरिहर झायहि जो जि।
लक्खु अलक्खे धरिवि थिरु मुणि परमप्पउ सो जि ॥१६॥

परमात्माका स्वरूप स्पष्ट रूपसे इस दोहेमे कहा जा रहा है जो त्रिभुवन वदित है, तीनो लोक जिसकी वदना करते हैं। तीन लोक हैं (१) ऊर्ध्व लोक (२) मध्यलोक (३) अधोलोक। ऊर्ध्वलोकके पति देवेन्द, मध्यलोक के पति राजा और सिंह, अधोलोकके पति भवनेन्द्र व्यन्तरेन्द्र। इन इन्द्रोंने जब परमात्म देवकी वदनाकी है तो इसका अर्थ है कि तीनो लोकोने इसकी वदनाकी है। वह परमात्मप्रभु शुद्धिप्राप्त है, अपने गुणोकी सम्पूर्ण शुद्धिको प्राप्त है। केवलज्ञान, केवलदर्शन अनन्तानन्द शक्ति करके सम्पन्न है। ऐसे परमात्मदेवका हरिहर, हिरण्य, गर्भव आदि ध्यान करते हैं। क्या करके ध्यान करते हैं कि लक्ष्यको अलक्ष्यमे स्थिर करके, (अलक्ष्यको लक्ष्यमे स्थिर करके) लक्ष्योको अलक्ष्योके द्वारा धारण करके। लक्ष्य है अपना मन जो लक्ष्यमें आता है। उस लक्ष्यमे अलक्ष्य वीत राग निर्लेप नित्यानन्द स्वभावी परमात्माको चित्तमे धारण करके हरिहरादिक ध्यान करते हैं। कैसा है वह परमात्म देव? स्थिर है जिनके सग विसर्ग और उपसग आता नहीं है ऐसे परमानन्दको हे प्रभाकर भट्ट! परमात्मा समझो, परमात्मा जानो।

परमात्मा वीतराग और निर्लेप होना है। उनका ध्यान करनेसे कही वह भगवान् प्रसन्न होकर अपनी जगह छोड़कर भक्तको सुखी करनेके लिए परिश्रम करने नही आता। वह समस्त ज्ञेयका ज्ञायक है फिर भी अपने आनन्द रसमे लीन है। किन्तु यह भक्त अपने उपयोगसे जब परमात्मस्वरूपका विचार करता है, उनकी उपासना करता है उस कारण भक्तमे अपने ज्ञानका प्रभाव प्रकट करता है। अपने ज्ञानका विकाश होना यही आनन्दका हेतु है। इस कारण जैसे दपणके सामने मुख करनेसे मुख करने वालेका मुख स्वयमेव दिख जाता है इसी प्रकार परमात्माके स्वरूपमे अपना उपयोग लगाने वालोको समस्त निजी वैभव स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं। भगवान् केवल ज्ञानानन्दादिकी व्यक्ति रूप मुक्तिको प्राप्त है।

प्रभुदर्शनसे हम सीखें कि परमात्माके सदृश रागादि रहित आनन्दमय परमात्मा साक्षात् उपादेय हैं। जिस कार्यमे अपना यथार्थप्रयोजन सिद्ध न हो उस कार्यकी वाञ्छा विवेकीजन नही करते हैं। तो परमात्मास्वरूपकी उपासनामे यदि अपना यथार्थ प्रयोजन नही निकलता है तो वह प्रभु अन्य लोगोकी तरह एक बडा है। इसलिए उनकी दासता करली है, इससे प्रयोजन कुछ नही निकलता। किन्तु ऐसा नही है, क्योकि जैसे हम अपने ज्ञानसे यदि विषय कषायोंके साधनभूत कुटुम्ब परिवार आदिका ध्यान करते हैं तो वहा मोह मलीनता आदि विकार हस्तगत होते हैं, वैसे ही स्वय वीतराग शुद्ध ज्ञानमय परमात्मदेवकी उपासना करते हैं तो इस ज्ञानमें स्वयमेव ही ज्ञानका विकास होता है।

जगतमें सुख और दुख ज्ञानकी कला पर निर्भर हैं। ज्ञान ही आपकी सर्वसम्पत्ति है, सर्वसाधन है किन्तु ज्ञानी अपनेमे कुछ हीनताका अनुभव करता है, अथवा किसी प्रकारका विकल्प बनकर अपनेको दुखी समझता है तो वह दुखी है और चाहे कितनी ही विपत्तिकी स्थितिको प्राप्त होना पडा हो किन्तु उस ज्ञानके द्वारा अपने आपको ऐसा निरखो कि यहा विपदाका क्या काम है? यह तो मैं अकेला ज्ञानमय, नित्य विराजमान हू। इसमे किसी पर-

पदार्थका प्रवेश ही नही है। विपदा क्या चीज है ? मोहियोने केवल कल्पना करके विपदा बनाया है। कोई इष्ट गुजर गया, लडका गुजर गया तो आत्मामे से क्या निकल गया कुछ धनकी कमी हो गयी तो आत्मामे क्या कमी हो गई ? जरा धैर्यपूर्वक अपने आपको सम्भालो तो ज्ञात होगा कि यह पूराका पूरा है पूराका पूरा था और पूराका पूरा रहेगा।

भैया ! इस श्लोकमे कहते हैं पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णात् पूर्णमादाय पूर्णमवावशिष्यते वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकलता है। पूर्णसे पूर्ण ग्रहण करके, हटा करके भी पूर्ण शेष रहता है। यह श्लोक वेदात सम्मन है, इसमे आध्यात्मिकता तो देखो। यह आत्मापूर्ण है। यह स्वभाव पूर्ण है, वह परमात्मतत्व-पूर्ण है। जितने जीव बैठे हैं ये सब पूर्ण हैं। पूर्णका अर्थ पूरा है। यहा पूरेका अर्थ ऊधोमी नही समझना। जैसे किसी बच्चेको समझते हैं कि यह भगवान्का पूरा है। पूर्णका अर्थ है पूर्ण सत्। अधूरा नही। ऐसा कुछ भी पदार्थ नही है जो आधा बन पाया हो और कुछ न बन पाया हो। जितने भी सत् हैं वे सब पूर्ण सत् हैं। यह मैं पूर्ण हू। यह मेरा स्वभाव पूर्ण है। इस पूर्ण आत्मपदार्थमे से जो भी परिणमन प्रकट होता है वह परिणमन भी पूर्ण है। पर्याय कोई अधूरी नही होती। पर्यायका समय एक है। एक क्षणमे वह पर्याय पूर्ण होती है पर्यायके बननेमे दूसरा समय नही लगता। इस पूर्णमेसे पूर्ण ग्रहण कर लिया जाय तो भी यह पूर्ण ही बचा रहता है। अर्थात् पूर्ण द्रव्यसे पूर्ण पर्याय होकर विलीन हो जाती है, फिर भी वह पूर्ण ही रहता है। यह समस्त पदार्थोंका स्वरूप है।

इस प्रकार पूर्ण आत्मपदार्थमे से पूर्ण पूर्ण पर्यायें प्रकट हो जाती हैं और लीन हो जाती हैं किन्तु यह आत्मपदार्थ पूर्णका पूर्ण बना रहता है। यह मैं सत् हू, समस्त परपदार्थोंसे, न्यारा और अपने स्वरूपमात्र हू, ऐसा यह मैं शुद्धात्मा साक्षात् उपादेय हू। किसको देखू ? किसको जानू ? किसको विचारु कि जो मेरे लिए सत्य शरण बने ? ऐसा जगतमे क्या है जिसका आश्रय करनेसे हमे सत्य शरण मिलती है ? ऐसा है यह मुझमें ही बसा हुआ। ज्ञायकस्वभावी आत्मतत्व। इसका जिसे परिचय नही वह चाहे कितना ही वैभव सम्पन्न हो, कितनी लौकिक प्रतिष्ठा सम्पन्न हो किन्तु उसने कुछ नही पाया। जिसने अपने आपके नित्य अन्त प्रकाशमान ज्ञान सामान्य स्वभावरूप अपने को समझ लिया, कुछ परवाह नही फिर चाहे पूर्वकृत पापोके उदयमे गरीबी कितनी ही हो चाहे किसीसे कुछ मागकर उदर भरना पड रहा हो लेकिन वह आत्मा अमीर है। उसे सतोष और शरणका स्थान मिल चुका है।

भैया ! जिस स्वरूपके जाने बिना जीवन बेकार है, दुर्लभ समागम भी बेकार है उस स्वरूपको जाननेके लिए आचार्य देवकी एक प्रेरणा है। तुम अन्यमे चित्त न लगाओ, निज शुद्धात्मतत्वमे अपना चित्त दो। यह शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, जो सकल्प और विकल्प रहित है। बाह्य द्रव्योमे पुत्र, मित्र, स्त्री आदि चेतन तथा अन्य अचेतन द्रव्योमे यह मेरा है इस प्रकारका जो आशय है उमे सकल्प कहते हैं। और मैं सुखी हू दु खी हू इत्यादि रूपो मे चित्तमे हर्ष विषादादिक परिणाम हो सो विकल्प है, तो सकल्प और विकल्पका परित्याग करके अपने शुद्ध आत्मा की आराधना करो। वश करने योग्य काम यह ही तो है। बाकी तो सब गले पडे काम हैं। जबरदस्तीके काम हैं। घरको महत्व न दो किन्तु अपने आपमे निराला परिणाम रहे और भगवान्स्वरूपकी भक्ति रहे ऐसे परिणामको महत्व दो। अन्यथा घरके महत्त्व देनेके भावमे इस जीवको कुछ हाथ न लगेगा। अतमे पापफलक ही अपने साथ ले जायगा यह। इसलिए रच भी अन्य चीजको महत्त्व न दो। गृहस्थकी शोभा इसमे ही है कि वह कीचडमे कमलकी तरह निर्लेप रहे। अपने धन वैभव परिवारको महत्व न दो, अपने ज्ञानस्वभावको महत्व दो। अब वह परमात्मा किन-किन विशेषताओंके सहित हैं इसका प्रतिपादन करते हुए १७वें दोहेमे कहा जा रहा है।

णिच्चु णिरजणु णाणमउ परमाणदसहाउ।
जो एहउ सो सतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१७॥

वह परमात्मा नित्य है, अविनाशी है और यह मैं ज्ञानस्वभावी नित्य हू, अविनाशी हू। निर्मल जल और

जलका स्वभाव इन दोनोके वर्णनमे अन्तर नही है। इसी प्रकार परमात्माका स्वरूप और अपना स्वभाव इन दोनोके स्वरूपमे अन्तर नही है। प्रभु नित्य है, सदा प्रभु रहेगा। यह आत्मा भी नित्य है, सदा ज्ञानमात्र रहेगा। द्रव्यदृष्टि से भगवान् नित्य है और द्रव्यदृष्टिसे ही हम आप सब आत्माए नित्य है निरजन है रागादिक कर्म मलरूप अजन से रहित हैं। एक आत्मपदार्थको निरखा जा रहा है। वे स्वय अपने किसी अस्तित्वमे विराजमान हैं। वे तो स्वय केवल चैतन्य प्रकाश है। उनमे न राग हैं और न कर्म है। कर्म हैं सो प्रकट भिन्न पदार्थ है और राग हैं सो कर्म विपाकवश होने वाली तरग है। इस आत्मामे अपना जो स्वरूप है, स्वभाव है उसमे न विकार पाया जाता है न उपाधि पायी जाती है, वह तो निरञ्जन है।

वह भगवान् केवल ज्ञान करके रचा हुआ है। केवल ज्ञानमे सम्मिलित दो शब्द हैं केवल और ज्ञान केवल-ज्ञान दो भावोमे ध्वनित रहता है। भगवान् केवल ज्ञानसे रचा हुआ है, और सभी आत्माए हम आप केवलज्ञानसे रचे हुए हैं। इस कारण परमात्मा ज्ञानमय हैं और हम आप भी ज्ञानमय है। परमात्मा परमानन्दस्वभावी है, उनके उत्कृष्ट आनन्द हैं। हम और आप भी आनन्दस्वभावी हैं। भगवान्का आनन्द एकदम पूर्ण प्रकट है क्योकि शुद्ध आत्माकी भावना उन्होनेकी थी। इस कारण ये वीतराग आनन्दमय परिणत हुए हैं। शुद्ध आत्मतत्त्वस्वरूप स्वयमे है। कोई देख सके तो सम्यक्त्व प्रकट हो जाता है। उस शुद्धात्माको देखनेका सुगम एक ही उपाय है कि सर्व परसे अपनेको भिन्न जानो। इतना ही नही कोई कर सका तो धर्मके लिए कुछ नही कर सका।

भैया! अपनेको जहा परमे मिला हुआ देखा कि मिथ्यात्व और मोहका परिणाम हुआ। इसमे धर्म प्रकट नही होता। इसलिए यह शिव शान्त परमात्मा है। शान्त यो है कि वह वीतरागी है अशाति रागोके कारण होती है। जो भी पुरुष आपको अशात मिलेंगे, दुःखी मिलेंगे उसका कारण केवल राग है। किसीके भी दुःखोकी कहानी सुनने बैठो, सुनते जावो और परखते जावो, अतमे तुम्हे यही मिलेगा कि उसके किसी चीजका राग है। उससे कहो कि यह राग छोडो और सुखी हो जावो तो कहेगा कि और कोई उपाय बतावो राग तो नही छोड सकते। ये राग और बढिया बन जायें ऐसा कोई उपाय बतलावो। परन्तु जैसे खूनका दाग खूनसे नही छुट सकता इसी प्रकार राग से रागका क्लेश नही मिट सकता। सबक्लेश मात्र रागसे है, नही तो सब अपने अपने घरमे भगवान् है। जैसे कहते हैं ना कि तुम सब अपने घरके बादशाह हो तो हम भी अपने घरके बादशाह है। सो सब जीव परमात्मा हैं। पर राग बीचमे ऐसा अडा हुआ है कि ये सब जीव परेशान हो गये हैं।

यदि कहा जाय भैया! ५ मिनटको तो राग छोड दो तो उत्तर मिलता है कि राग कहामे छोड दें? कहासे निकाल कर फेंक दें? रागोके छूटनेका उपाय हां एक है कि अपनेको केवलज्ञानमय देखा। मात्र ज्ञानमय, जाननस्वरूप यही जानता रहे, राग छूट जायेंगे। परपदार्थोका स्मरण हट जायगा, पर और उपायोसे चाहो कि राग छूट जायें तो नही छूट सकते। शातिका उपाय वीतरागता है। सो यह परमात्मा शात है। यदि अपने आपको ज्ञान-स्वभावी देख रहा हू तो मैं शान्त हू। परमात्मा शिवस्वरूप हैं, परमानन्दमय हैं, परम कल्याणमय है तो यह आत्म स्वभाव भी परमकल्याणमय है।

लोकमे सगुन परम ज्ञानस्वभावका दर्शन है। बाहरमे जिन पदार्थोको देखकर कहते हो कि यह सगुन है वह पदार्थ तुम्हारे आत्माका ध्यान करानेमे कारण है इसलिए सगुन है। जैसे कोई जल भरा घडा ला रहा हो तो कहते हैं कि सगुन मिला। क्या सगुन मिला? अरे वह पीतल तावेका हडा सगुन है क्या? वह पानी सगुन है क्या? उस पानी भरे हुए हडेको देखकर यह ख्याल आया कि जैसे इस हडेमे पानी लबालब भरा है, उसके बीचमे एक सूईकी नोकके बराबर जगह ऐसी नही है कि जहा पानी न हो। गेहूका बोरा भरा हो तो उसमे बीचमे जगह खाली रह जाती है पर घडेमे पानी भरा हो तो जितनेमे पानी है उतनी जगहमे कोई स्थान खाली है क्या? जैसे

यह हृदा पानीमे लबालब भरा है ऐसा यह मैं आत्मा भी ज्ञान व आनन्दसे लबालब भरा हू ! ऐसा ध्यानमे माना है। ऐसा यह ध्यान सगुन है। इसी तरह सबका यही अभिप्राय है कि वह सगुन माना जाता है। जो पदार्थ हमारे धर्मका ख्याल करायें ये सब सगुन हैं। बछड़ा गायका अगर दूध चूसता हुआ देखा जाय तो उसे कहते हैं सगुन। उसने ख्याल कराया हैं कि गायका अपने बछडे पर निष्कपट प्रेम है। वैसा ही प्रेम पुरुषको करना चाहिए। यह मुझे शिक्षा देनेका कारण है इसलिए सगुन है। जो पदार्थ हमे आत्मका ध्यान करायें वे सब सगुन है।

भगवान् शिव हैं क्योंकि वह परमानन्दमय हैं, कल्याणमय हैं, सो यह आत्मा भी शिवस्वरूप है, कल्याणमय है इसलिए हे प्रभाकरभट्ट तुम अपने आत्मतत्त्वकी भावना करो। किसको जावो, किसको ध्यानमे लावो ? अपने आपमे बसे हुए शुद्ध बुद्ध एक ज्ञानस्वभावकी भावनाकी भावना करो। सीधा निर्णय रखो। धनको, परिवारको, मित्रजनोको समागमोंमे महत्त्व न दो। ये विनाशीक है, परद्रव्य है। इनसे मरेमे कुछ नही आता है। अपने आपमे नित्य त्रैकालिक रहने वाले चैतन्यस्वभावको महत्त्व दो। झट झट इस इस स्वभाव पर दृष्टि लगावो, इसको ही चित्त में बसाओ। इसकी ही शरण जावो इसका ही आश्रय लो। परपदार्थोंसे मोह तजो, ऐसी वृत्तिसे आत्माका कल्याण है जैसा परमात्मस्वरूप है, वैसा ही निज आत्मस्वरूप है। सो परमात्मस्वरूपकी उपासना करके निज आत्मस्वरूपको विकसित करो।

जो णियभाउ ण परिहरइ जो परभावण लेइ।
जाणइ सयलु वि णिच्चु पर सो सिउ सतुहवे ॥१८॥

परमात्माका और आत्मस्वभावका वर्णन चल रहा है। जैसा परमात्माका स्वरूप है वैसा ही अपना स्वभाव है। परमात्माके स्वरूपमे और अपने स्वभावमे अन्तर नही है। इतनी बातको पहिचानता है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। परमात्मा कैसा है यह जब जब बताया जाय तब अपने आपमे यह अर्थ लगाना कि मेरा स्वभाव ऐसा है, जो अपने भावोको नही छोड़ता है और परके भावोमे नही लगता है वह शिव और शांत कहलाता है परमात्माका भाव है अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख और अनन्तशक्ति। इनको वह नही छोड़ता। काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकार इनको ग्रहण भी नही करता है वह शिव और शांत है। ऐसा ही परमात्मा है, जो ऐसा है वही मैं हू।

भैया ! वस्तुका सही ज्ञान करनेके लिए तीन बातें जानना चाहिए (१) द्रव्य (२) गुण और (३) पर्याय। पर्याय तो विनाशीक होता है और द्रव्य व गुण अविनाशी होते हैं, जो चीजें मिट जाये वे सब पर्यायें हैं। ये काले पीले रग दीखते हैं ये मिटते हैं या यों ही रहते हैं ? मिटते हैं तो ये सब पर्यायें हैं। खट्टा मीठा रस गध दुर्गन्ध आदि अनेक प्रकारके शब्द ये सब पर्याय हैं। और कोई मनुष्य है, कोई कीड़ा है, कोई पशु पक्षी है ये भी मिटने वाले हैं ना ? है। तो ये सब पर्याय हैं। और ये जो हम आप मनुष्य हैं, जिनमे व्यवहार किया जा रहा है ये सब मिट जाने वाले हैं। ये भी पर्यायें हैं। पर्यायें बदलती रहती हैं। इन पर्यायोंकी आधारभूत जो शक्ति हैं वह गुण है और उन समस्त शक्तियोंका अभेदपुञ्ज है वह द्रव्य है ? जैसे आममे काला नीला वगैरह रग बदलता रहता है वे सब काले नीले रग रूप शक्तिकी पर्यायें हैं। आम हरेसे अगर पीला हो गया तो रूपशक्ति तो नही बदली। रूपशक्ति तो पहिले हरे रूपमे थी अब पीले रूपमे हो गयी, पर रूपशक्ति आधार है। जैसे अगुली है, सीधी हो जाय, टेढ़ी हो जाय, गोल हो जाय तो उसकी शकलें तो बदली पर अगुली तो मेटर है, वह तो वही है। इसी प्रकार पर्यायें तो बदलती हैं पर पर्यायकी जो शक्ति हैं, गुण है वह वहीका वही है तथा जो आनन्द गुण हैं उन गुणोंका जो समुदाय है वही द्रव्य कहलाता है।

हमारा द्रव्य चेतन द्रव्य है और प्रभुका द्रव्य चेतन द्रव्य है। इस द्रव्यदृष्टिमे प्रभुमे और मुझमे रच भी

सम्बध नही है, किन्तु पर्यायोका अन्तर है। हमारे गुणोका विकाश पूर्ण नही है और भगवानके गुणोका विकाश पूर्ण है पर जो गुण भगवान्मे है वही हम आपमें है। पदार्थ एक हैं। भगवान अपने अनन्तज्ञानानन्द स्वभावको नही छोडता और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारोंको ग्रहण नही करता। यह प्रभु तीन काल, तीन लोकमें रहने वाले वस्तुवोको जानता रहता है। वह द्रव्यार्थिकनयमे नित्य है और सदा काल समस्त विश्वको निरतर जानता रहता है। लोग वैभवको चाहते हैं। लाखो करोडोका वैभव मिल जाय किन्तु जो अलौकिक वैभव स्वयम अनादिसे बसा हुआ है, उसकी रुचि भी नहीं करते।

यदि वास्तविकता पर दृष्टि दो तो सतोप और आनन्द अलौकिक वैभवमे ही मिलते हैं। ये बाहरी वैभव तो मात्र आकुलताओके कारण होते हैं। किन्तु अपना वैभव जो कि ज्ञानभावके द्वारा जाना जाता है ऐसा ज्ञान और आनन्दरूप वैभव निर्विकल्प समाधिमे प्रकट होता है। उसका यत्न नही, उसकी ओर दृष्टि नही, धम भी करेंगे तो धमके नाम पर बहुत बहुत श्रम कर डालेगे, बडा व्यय कर डालेगे, उत्सव मनावेंगे, पगत करायेंगे, बडे बडे ठाठ रचायेंगे। किन्तु इस ओर दृष्टि नही है कि यह सब प्रवृत्ति, ये सब समागम मुझसे न्यारे हैं। मैं तो स्वय ज्ञान और आनन्दका निधान आत्मद्रव्य हू, सबसे निराला हू। मुझको कोई नही जानता, कोई नही पहिचानता। ऐसी अपन आपकी ओर दृष्टि न जाय तो धर्मके नाम पर कितना ही तन, मन, धन, वचन खच कर दिया जाय पर कम बडा लिहाज नही करते कि आखिर देखो धर्मके नाम पर ये कितना कष्ट उठा रहे हैं तो थोडी सी कर्मोकी निजरा हो जाय। कर्मोके लिहाज नही है और आत्मामे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र रूप परिणमन है। तो वहा कर्मोमे इतना दम नही हैं कि क्षणभर भी ये ठहर सकें। जो काम जिस विधिसे होता है वह उस विधिसे ही सम्पन्न होता है।

भगवान् अलौकिक वैभवका स्वामी है अन्यथा भगवानको यह सारा जगत न पूजता यह प्रभु दिखनेमे आता नही, दिखाई देता नही फिर भी लोग उसकी पूजामे अपने अपने सकल्पके अनुसार पूज रहे है। क्योंकि वह अलौकिक ज्ञानानन्द वैभवका स्वामी है। प्रभुका स्मरण करके अपनी शक्ति पर विश्वास न हो तो प्रभुकी भक्तिसे फायदा क्या उठाया ? जैसा परमात्माका स्वरूप है वैसा ही अपना स्वभाव है। जो शिव और शात परमात्मा कहलाता है वह कुछ अन्य चीज नही है। कोई प्रभु ऐसा नही है जिसने शरीरसे ऐसा ठेका ले रखा हो कि मैं ही अनादिसे एक ऐसा हू कि जिसको जो चाहे सो कर बैठू। यह परमात्मपदार्थकी बातें स्वरूपसे भिन्न अन्यकी बात नही है। यह ही जीव मुक्त अवस्थामे व्यक्ति रूपसे शात और शिव होता है।

भैया ! स्वरूपकी ओर दृष्टि जाये तो सब परमात्मतत्त्वका मर्म अपनी समझमे आ सकता है, किन्तु अपने को तो इसने दीन, हीन, भिखारी माना। मेरेको अन्य सुख देने वाला और सुविधा देने वाला कोई व्यक्तिरूप हाथ पैर वाला प्रभु अलग है, ऐसी दृष्टि हो तो प्रभुताके मर्मका पता नही पड सकता। इन्द्रियोको सयत करके अपने ज्ञान बलके द्वारा प्रभुके उस ज्ञान चमत्कार मात्रको निरखो। ज्ञान पुञ्ज कार्य परमात्मा भी सर्व जिस ज्ञान प्रकाशमे समा जाता है, ऐसा उसीमे ज्ञान पुञ्जप्रभु है, ऐसा विचारते-विचाते प्रभुका तो नाम छोड दो और ज्ञानका ही दर्शन करो। फिर उस ज्ञानसे ज्ञानमात्र जानते-जानते अन्यत्र कही यह जानन है यह बात छोड दो और केवल जानन ही उपयोगमे रहे तो प्रभुकी ओर एकता हो जाती है। भैया ! जैसा वह प्रभु शिव, शात है ऐसा यह भी मैं आत्मा ससार अवस्थामे भी शक्तिरूपसे शिव और शात हू। कहा भी है, परमार्थनय स्वरूप जो सदा शिव हैं उसके लिए नमस्कार हो। सदाशिव आनन्दस्वरूप प्रभु कहा बस रहा है ? रागद्वेषोकी तरगोको दूर करके विश्रामसे अपने आपमे ज्ञान और आनन्द स्वभावको अनुभव करके जानलो—ऐसा चैतन्य स्वभावमय वह यह मैं शिव, सदा मुक्त, परम कल्याण—रूप हू, अनादिसे परिपूर्ण हू। यही देख लो, परकी चिन्ता छोडो और अभी सुखका अनुभव करो।

भैय्या ! एक कथानक है कि दो चीटिया थी एक चीटी रहती थी नमक वालेके यहा, नमकके बोरो पर और एक चीटी रहती थी शक्करके बोरो पर। तो शक्कर वाली चीटी नमकके बोरोमे रहने वाली चीटीसे बोली, बहिन तुम यहा कैसे गुजारा करती हो ? यहा खारा खारा खाती हो, हमारे यहा चलो मीठा ही मीठा खाओ। बहुत कहा तो विवश होकर नमककी चीटी शक्करकी चीटीके साथ चली पर मुहमे एक नमककी डली दाबली, कही ऐसा न हो कि वहा कुछ भी खानेको न मिले सो एक दिनका खुराक साथ कर लिया। जब वहा पहुची तो शक्करमे रहने वाली चीटीने पूछा जीजी स्वाद कैसा है कहा—स्वाद तो कुछ भी नही आया। दो बार पूछा शक्कर वाली चीटीने कहा यह कैसे हो सकता है ? शक्कर तो बडी मीठी होती है। बहिन तूने अपने मुखमे कुछ रखा तो नही है। नमक वाली चीटीने कहा कि मेरे मुखमे तो एक बारका केवल कलेवा है और कुछ नही है। शक्कर वाली चीटी बोली—अरे नमकको चोचसे निकाल और फिर चख। तेरी डली यही रखी रहेगी, कोई नही ले जायेगा। तुझे स्वाद अच्छा न लगे तो फिर अपना कलेवा ले लेना। सो उसने जब नमककी डलीको हटाया और स्वाद लिया तब नमककी चीटी कहती है बहिन तू तो बडी भाग्यशाली है। तुम रोज यही मीठा खाती हो। सो भैया यदि अपने आप पर दया हो तो विषय कषाय मोहकी वासनाको अलग कर देवो और अपनी प्रभुताका आनन्द लो।

क्यो भैया अपनी बात नही आती समझमे ? सुबहकी तो इससे भी कठिन चर्चा लगती होगी, अरे ध्यान मे कैसे बैठे ? ध्यानमे न बैठनेके दो कारण है। एक तो कारण यह है कि अपने ज्ञानमे हम दसो जगह चित्त बसाए रहते हैं और रागवश रहते हैं। अभी आप मदिरमे बैठे हैं कुछ भी घरमे हो जाय, या दुकानमे तुरन्त तो आप कुछ नही कर सकते। मुखसे भी न बोल सकेगे। जरा मनसे और विकल्प हटा दो। कभी तो हृदयपटलका सब भार हट जाय। सो होना कठिन लग रहा है। और दूसरी बात यह है कि कुछ समय देकर, यत्न करके ज्ञानार्जन भी नही किया इन बातोके कारण इन्हें अपने प्रभुकी बात समझमे नही आती।

भैया ! अपने निजी घरकी बात समझमे नही आती। तुम्हारा घर कहा है ? सोचो तो सही। अपना घर कहां है ? कहा जावोगे ? कौनसा घर है ? वह घर बतलावो जो घर अपनेसे कभी नही छूटता ? वही जावो अपना घर ही पासमे रहता है। वह घर है अपना स्वरूप, अपना प्रदेश उसकी ओर दृष्टि न दो और बाहरमे बाहरी पदार्थोंसे नाना आशाए रखें तो बनाओ किसके लिए नच रहे हो ? किसके लिए बिकते जा रहे हो ? सब भिन्न हैं। उनका कर्म प्रबल है। उदय अच्छा है सो आपको उनका दास बनना पड रहा है। किसके लिए धन बढाते हो ? किसके लिए श्रम कर रहे हो ? यह मोह और यह इतना विकल्प क्यो मचा रहे हो ? आपसे भी अधिक भाग्यवान् वे बच्चे हैं जिनके लिए रात दिन श्रम कर रहे हो, जिनके लिए दास बनकर अधिक श्रम करना पड रहा है। शिव-स्वरूप, कल्याणस्वरूप तो अपना आत्मस्वरूप है। सर्वकल्पनाजालोको छोडकर अपने आपमे अपने आपके स्वरूपको निहारो, तो ऐसे ज्ञानस्वभावी प्रभुका दर्शन होगा कि फिर उससे शाति और आनन्द निरन्तर झरता ही चला जायगा।

जो शिव स्वरूप परम कल्याण रूप, शात अविनाशी शिव तत्त्व है, वह सर्व आत्मावोमे उपस्थित है। जिसने मुक्तिपद प्राप्त किया है वह व्यक्त शिव है और जिसने मुक्तिपद प्राप्त नही किया वह अव्यक्त शिव है। मेरी सृष्टि करने वाला मुझमे बसा हुआ यह शिव है। निरन्तर सृष्टि होती चली जाती है। मेरी सृष्टिका कर्तव्य मेरे स्वतत्रपदार्थका स्वरूप है कि वह निरतर परिणमन करता रहता है। अब जैसी उपाधि मिलती है और इस उपदान की स्थिति होती है तो वैसी अपनी यह सृष्टि करता चला जाता है। अन्य कोई मेरी सृष्टिका करने वाला नही है।

एक जगत्व्यापी ईश्वर सृष्टि करता है। यह बुद्धि नयोंकी मिश्रतासे प्रकट होती है। सभी आत्मा अपनी-अपनी सृष्टिके कर्ता हैं। उन सब आत्माओका स्वरूप एक है। अत सृष्टिका सम्बन्ध और स्वरूपकी खबर इन दोनो की सम्भावनामे यह बुद्धि बनती है कि कोई एक प्रभु सृष्टि करता है। निष्कर्ष यह है कि अपने लिए आप स्वय

जुम्मेदार हो। जो कर्ता भी किसीको मानता हो और यह प्रश्न सामने ला दिया जाय कि मैं पाप तो कर रहा हूं परन्तु प्रभु तो स्वयं दयास्वरूप है उसको तो हमें सुख ही देना चाहिए। यदि वह मुझे सुख नहीं दे सकता तो उसकी अनन्त शक्ति क्या रही ? सर्वशक्ति क्या रही और तुम्हारे ही पापोंको देखकर पापोंके अनुसार दुःख देता है तो जुम्मेदारी तो सब बातोंमें तुम्हारी ही रही ना ? कोई जगतमें सुख दुःख देने वाला हो तो और न हो तो जुम्मेदारी तो तुम्हारी तुम्हारे ही ऊपर है ना ? मैं पाप करूंगा तो दुःख पाऊंगा और पुण्य करूंगा तो सुख पाऊंगा। धर्म करूंगा तो निर्वाण पाऊंगा और पुण्य करूंगा तो सुख पाऊंगा। धर्म करूंगा तो निर्वाण पाऊंगा। वह सब जिम्मेदारी मुझ ही पर तो है जरा ध्यान तो दो।

यह ही आत्मा शांत और शिव है। हम उसे शुद्ध परमात्मतत्त्वकी दृष्टिसे देखें तो सुनिश्चित होता है कि यह शुद्धात्मा ही उपादेय है। जिसके दिखने मात्रसे ही सारे संकट कट जायें यह कला यदि आ गयी तो उसे आप कितना धनी समझेंगे ? जिस जीवके ऐसी कला उत्पन्न हो जाय कि मैं कुछ ऐसा देख लूं कि देखते ही सारे संकट टल जाए तो आप उसको कितना महान् और धनी समझेंगे ? यह लौकिक वैभव तो संकट टालनेमें समर्थ नहीं होगा। कैसे ही संकट आवें जिसे झट देख लेने ता तुरन्त संकट मिटें, उसका परिचय हो तो वही सर्वोत्कृष्ट वैभव है।

जैसे लौकिक कथानकोंमें कह दिया करते हैं कि अमुकको ऐसी दटरिया मिल गई कि जिसको बजाकर जो कुछ चाहे सो मिल जाय। किसीको शंख मिल गया, उससे जो चाहे सो बन जाय। बच्चे लोग बहुत बोला करते हैं। ऐसी चीज मिल जाय तो उसे आप धनी कहेंगे या जिसके पास करोड़ोंका वैभव हो जाय उसे आप धनी कहेंगे। जिसको ऐसा दर्शन हो गया कि उसके संकट रह ही न सकें वह सबमें बड़ा धनी है। वह सबसे बड़ा वैभव सम्पन्न है। आप लोग कुछ ऐसा सोच रहे होंगे कि ऐसी चीज क्या है ? कैसी है ? क्या कहीं महाराजने देखा है और जो कहीं देखा हो तो बता दें वह एक एक चीज बांट दें। कौनसी चीजकी बात चल रही है कि जिसके दर्शन करें तो संकट सब मिट जाए। ऐसी चीज क्या ? वह बतायी नहीं जा सकती। है वह आपके आपमें ही।

जिसको ऐसा अनुभव हो कि मैं तो सबसे निराला एक चैतन्य प्रकाश मात्र हूं और ऐसी ही दृष्टि हो जाय देखिए ये चीजें आपके ही द्वारा साध्य है। कुछ धीर बनें, उदार बनें, सर्वसे दृष्टि फेरें, सत्यकी ओर मुड़े, विश्राम पायें,। परवाह जगत्‌की न करें, शर्म और संकोच जगत्‌में न रखें, एक अपने आपमें धैर्य और उदारता रखें, मोहको हटाकर शुद्ध एक प्रतिभासका अनुभव करें तो उस समय आपके उपयोगमें आपको विकल्प नहीं है, कहीं भी ममता नहीं है, कहीं भी वासना नहीं है, तो फिर कोई संकट रहा क्या ? नहीं। ऐसी स्थिति अगर बने तब तो अपनी समझमें आये। यदि हम यह सिद्धि नहीं कर पाते तो यह शंका रहती है कि महाराज बताते तो जरूर हैं मगर पेट तो रोटी से ही भरेगा। कहते तो जरूर हैं प्रभुके स्वरूपकी बात, आत्माकी बात, किन्तु काम तो रोटीसे ही चलेगा।

क्यों जी ! कहीं ऐसा उद्यम बन जाय कि रोटी खानेकी जरूरत ही न पड़े और सदा संतुष्टि रह जाय तो इसमें कोई टोटा है क्या ? ऐसा कर सकते हैं कि नहीं। आप कहें कि नहीं हो सकता तो फिर प्रभुके दर्शन क्यों करने आते हैं ? प्रभु ही तो ऐसा बैठा है जिसके आदि नहीं व्याधि नहीं, रोटी खानेका काम नहीं। है ना कोई ? अगर नहीं है तो कुछ नहीं है। यदि कुछ नहीं है ऐसा समझा तो नास्तिकता आ गई। धर्म रहे कैसे ? उत्तर कुछ मिले ना। हम भी प्रभु जैसे हो सकते हैं पर भैया ! नैया बहुत दिनोंसे फसी है, बहुत दिनोंसे बिगाड़ मचा है। आज ही ध्यान करके बैठें, अपने ज्ञान रसका स्वाद लें तो विषयभोगोंकी स्थिति नीरस लगने लगे और जहां विषय-भोगोंकी स्थिति नीरस लगने लगे तहां सब काम बन जायगा। अन्य कोई भी तत्त्व उपादेय नहीं है। ऐसा निज शुद्धात्मा ही उपादेय है।

जैसे बच्चेको कोई पीटे तो उसके दिमागमें इलाज एक ही है कि वह भागकर अपनी माकी गोदमें बैठ जाय। है ना ऐसी ही बात किसीने सताया, धमकाया तो तुरन्त उसके पास इलाज है कि झट अपनी माकी गोदमें

बैठ जाय। इसी तरह जगतके हम आप सभीको सताए, कर्मोंका तीव्र उदय आये, संकट और उपद्रव आये तो उस कालका एक ही इलाज है वह क्या कि शरीरसे दृष्टि हटाकर अपने सहजशुद्ध एकज्ञानस्वरूपके अनुभवमें आ जावो। यदि कभी दुःख आ जाये तो यह सोचो कि यहाँ बाहरमें शरण नहीं मिलेगी, सो आखें मीचो और अपने ज्ञान रसमें रचो। इतना ही कर लो फिर संकट कहा है? संकट तो जीवने भ्रम करके बना लिया। फसाव कैसा है? क्या है? तो भाई यदि कहीं लगो तो केवल एक आत्मकल्याणमें लगो तो सब फसाव समाप्त हैं।

अजी यह काम पडा है, अभी भैया छोटा है, अभी बुवाकी शादी करनी है। (हसी) अरे क्यो हसते हो, हा हो सकता है। किसीकी बुवा छोटी हो। ये सब आत्मविराधनाके चिन्ह है। तो मेरा बाहरमें कहीं कुछ नहीं है। अगर संकटोसे मुक्ति प्राप्त करना है तो उसका इलाज है शुद्ध ज्ञानका आदर करना, यही ब्रह्म विद्या है। बडे बडे राजा महाराजा लोग भी ऋषियोके चरणोमें रहकर ब्रह्मविद्या सीखते थे। पुराणोमें पन्ने पलटकर देखिए वे राजपाट की परवाह नहीं करते थे। ऋषियोंसे ब्रह्मविद्या सीखते थे। बिना ज्ञान गुणके निर्वाण पा ही नहीं सकते हैं। मोक्ष-मार्गमें न लगे और बाहर ही रहे तो उसका परिणाम क्या है? इसका परिणाम यह है कि ससारमें रुलना ही बना रहेगा। यदि कहीं कीडे-मकोडे बनना पडा तो परमात्माका काम खतम है। इस कारण अपने परमात्माको सर्वविकल्प समाप्त करके प्राप्त करनेका यत्न करो।

जासु ण वरणु ण गधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि णाउ णिरजण तासु ॥१९॥
जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय णमाणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सोजि णिरजणु जाणु ॥२०॥
अत्थिण पुण्णु विण पाउ जसु अत्थिणहरिस विसाउ।
अत्थिण एक्कुवि दोसु जसु सो जिणि रजण भउ ॥२१॥

परमात्मा जीव निरजन है अर्थात् अजनरहित है। वे अजन कौन कौनसे हैं जिससे वह परमात्मा रहित है उन अजनोका निषेधरूप इन तीन गाथाओमें एक साथ वर्णन किया जा रहा है। जैसे मुक्तात्मामें सफेद, काला, लाल, पीला, नीला रूप ५ प्रकारका वर्ण नहीं है। वर्ण तो जितने भी जीव हैं उनके नहीं हैं। चाहे निगोद हो, चाहे अन्य हो पर वर्णोंका रचमात्र भी सयोग और सम्बन्ध भी मुक्त जीवके नहीं। यह बात मुक्तात्माकी बताई जा रही है। ससारी जीवके वर्णात्मक शरीरका सयोग है पर सिद्ध महाराजके तो शरीरका सयोग नहीं है। सुगन्ध और दुर्गन्ध रूप दो प्रकारकी गध भी नहीं है। कडुवा, तीक्ष्ण मधुर, खट्टा और कषायला ये ५ प्रकारके रस भी नहीं हैं। भाषा-त्मक और अभाषात्मक इत्यादि नाना प्रकारके शब्द भी इस आत्मामें नहीं हैं ये सब चीजें भी अपनी नहीं हैं। किन्तु यहा इस प्रकारके पुद्गलोका एक विशिष्टावगाहनरूप सम्बन्ध है। इस कारण इस जीवमें रूपादिकका व्यवहार होता भी है। पर मुक्तआत्मामें ये रूपादिक भेद नहीं हैं। ८ प्रकारके स्पर्श हुआ करते हैं। ठडा, गर्म, रूखा, चिकना, गुरु और लघु, कोमल और कठोर ये ८ प्रकारके स्पर्श जिस मुक्तआत्मामें नहीं हैं उसको तुम निरजन जानो।

इस मुक्त आत्माका जन्म मरण भी नहीं होता। वह चिदानन्द स्वभाव एक रूप सदा अविनाशी है। उसको ही निरजन कहते हैं। अजन रहित, अजन माने परसयोग। वहा अजनका ही शब्द मिला। जैसे आखमें अजन लगा, उसे एक जगह कहा रखे? फैल करके सरस विस्तृत हो जाता है। ऐसे ही शरीरमें अजन भी विस्तृत हो जाता है। देखो यहा तैजस शरीर इस जीवके प्रदेशमें कैसा फैला है? कार्माण शरीर, अन्य अन्य रागद्वेषादि विकार सभी आत्मामें फैले हुए है? ये सब अजन उन मुक्तआत्माओमें नहीं हुआ करते हैं। अरु निरजन कौनसे हैं ना? एक तो किसी इन्द्रिय द्वारा लखनेमें नहीं आ सकता है इस कारण वे अजन है और अजनरहित हैं रागद्वेष विकार आदि सभी प्रकारके अजन नहीं हैं। मुक्तजीवमें किसी भी प्रकारका अजन नहीं है। क्रोध नहीं, और नहीं और ८ प्रकार

का मद भी नही, माया नही, कषाय नही, लोभ नही, देह नही, कर्म नही, ऐसा जो शुद्ध आत्मतत्व है उसको निरजन जानो ।

शुद्ध निश्चयसे तो जैसा आत्माका स्वभाव है वैसा ही मुक्तआत्माका व्यक्तस्वरूप है । ये क्रोधादिक कषाय जब होते है तब वे विकट विस्तृत हो जाते हैं । ये सब भी अजन हैं । एक ज्ञानस्वभावी आत्मामे यह प्रतिबिम्ब पडता है, ये सब भिन्न तत्त्व है, आत्माका स्वभाव नही है और इसी कारण इस मुक्तआत्मामे विकार नही होता है । जिस मुक्तआत्माके ध्यान भी नही है । ध्यान कहते हैं चित्तके विरोध होनेको । चित्तके निरोध होनेके स्थान अनेक हैं । एक तो नाभि स्थान है, जिसे टूडी बोलते हैं ना ? उस नाभिकी जगह अष्टदल कमलका चितन करके चित्तको रोका जाता है । एक हृदयका स्थान है । इस हृदयमे भी कमलका चितन करके उस हृदयमें रोका जाता है । एक ललाटका स्थान है, यहा ललाटमे तो अक्सर लोग चित्तको रोका करते हैं । यही पर वैज्ञानिक दिमागकी कल्पनाए करते है । ये सब ध्यानके स्थान हैं । इन सब स्थानोमे चित्त रोकनेका काम ससारीजीवोंका है पर जिसके केवलज्ञान स्थित हो गया, जो आत्मा रागद्वेषोसे रहित शुद्ध हो गया वह निरतर सबविश्वके जाननेके उपयोग वाला रहता है । उनको ध्यान भी नही होता है । ऐसा रूप रस गध स्पर्श रहित विषयकषायोंसे रहित ध्यानसे परे शुद्ध निरजन परमात्मदेवको जानो ।

भैया ! इस जीवका कोई सहायक है तो निर्दोष आत्माकी भक्ति । ससारके दृश्यमान ये सब पदार्थ आकुलताओके कारण हैं । इन सब पदार्थोका आश्रय करके कोई सुखी नहीं होता, न सुखी हो सकेगा । विवेकशील पुरुष वह है जो इन पदार्थोंसे आत्महितका विश्वास न करे । और देखो सभीको अनुभव भी है कि इन बाहरी विभूतियोंसे, वैभवसे आत्माको चैन नही है । क्रोध उमड आता है, घमड आ जाता है छल, कपट भाव हो जाता है, लोभ आ जाता है, बात बातमे अपमान महसूस कर लिया जाता है । ये सब ऐब और सकट क्यो हैं ? इन बाह्यपदार्थोंका आश्रय तका है, उनसे ही हित समझा है इस कारण पद पद पर क्लेशोंकी ठोकर मिलती चली जाती है ।

इस लोकमे, इस दुनियामें जो बडे आदमी मालूम होते ह, जिनके नाम जानते होगे । टाटा, बाटा, डालमिया, बिडला हैं, और कोई है, नाम गिननेस कोई मतलब नहीं जो महान् धनिक पुरुष हैं उनको ऊपरसे देखो सकल रहन सहन अच्छा है, साफ कपडे हैं, लोग सलाम कर रहे हैं । बडे आरामके साधन मिल रहे हैं पर चित्त शातिमे हो तो सुखी वास्तवमे वही कहलाता है । बाहरसे शातमुद्रा दिखती है किन्तु चित्तमे क्या है ? उसे हम क्या कहें । यदि कोई अदाजा लगा सकते हो तो लगा लो । एक साधारण बात कही जा रही है । इस लोकमे बाह्य विभूतियोमे क्या विश्वास करे । यह वैभव जिनके पास है वे भी शात और सुखी नही रह सकते । तब वह साधन कौनसा है ? वह तत्त्व कौनसा है जिसका आश्रय करनेसे शाति मिले । बस इतना ही निपटेरा तो धर्म है ।

बडे बूढे कहते हैं धर्मपालन करो । क्या पालन करें ? ये सब व्यवहारिक बातें हैं । ये तुम्हारे धर्मके साधन बन गए हैं । ठीक है, पर भीतरमे धर्मके स्वरूपका निर्णय तो हो । धर्म क्यो करना चाहिए ? आप यही बतलावो । धर्म इसलिए करना चाहिए कि हम जीवनमे यह देख रहे हैं कि किसी भी जगह किसी भी परपदार्थमे किन्ही भी भोगसाधनोमें प्रवृत्ति रहती है तो शाति नही मिलती है । कदाचित् पुण्यके अनुकूल सर्वसाधन भी हो तो भी उनका भरोसा तो नही कि कब तक रहे, कब मिट जाए ? जब ये सब क्लेश लगे हैं जगत्मे तो हमे इन क्लेशों से दूर होना चाहिए । ये विषयभोग भोगनेमे आनन्ददायक प्रतीति होते हैं पर इनके सयोगको करें क्या, सब भिन्न हैं, सदा रहते नहीं हैं और जब तक हैं तब तक भी ये तृष्णा और बेचैनीके साधक हैं । इन दृश्यमान पदार्थोंका हम करें क्या ? ऐसी स्थितिमे अन्तरमे आवाज होती है कि ये काम लौकिक हैं अलौकिक नही । जिस कार्यको करनेके पश्चात् इस जीवमे शाति न रहे उस कार्यका यह जीव क्या करे ? यह कर ही क्या सकता है ? उनमे इसके हाथ पैर नही, रूप, रस, गध, स्पर्श नही, यह कोई गांठ नही, पिण्ड नही, पकडा नही जा सकता, यह करेगा क्या ? यह

तो केवलज्ञान करता है, भाव बनाता है।

भैया! अन्तरमे परख तो, यह शरीरके अन्दर रहने वाला जीव मात्र भाव बनाया करता है। तब हमे कैसे भाव बनाना चाहिए कि शाति प्राप्त हो? वह स्थान है अपने आपमे बसने वाले सहज स्वरूपका, मै अपने सत्व के कारण स्वय क्या हू इसका निर्णय होता है तो उसे स्थान मिल जाता है, प्रभुपद मिल जाता है। कैसा हू मैं? सहज अर्थात् किसी भी परका सम्बन्ध न हो तो यह मैं आत्मा किस स्थितिमे रह सकता हू? वह है सहजभाव, इस का निर्णय हो जाना धर्मका पालन है। यह निर्णय अपने आपके पा लेनेमे होता है। आत्मनिर्णय किसी इन्द्रियके उपयोगसे नही होता है।

वे परपदार्थ कौन-कौन हैं जो इस जीवके साथ लगे हैं और जिसके सम्बन्धके कारण आत्माका सहज-स्वरूप तिरोहित हो गया है। वे पदार्थ है कर्म और शरीर। कर्म और शरीर इस जीवके एकक्षेत्रावगाह रूपमे हैं। उनके सम्बन्धसे हमारा चित्त विचित्र हो गया है। शरीर और कर्म ये मेरे नही हैं। ये तो मेरेसे स्वरूपसे अत्यन्त जुदे हैं। इस जीवने शरीरको मान रखा है कि यह मेरा है। उससे ही अपना लगाव कर रखा है। जिस उपयोगमे बाह्य तत्त्व बसे हुए हैं उस उपयोगसे प्रभुके दर्शन नही हुआ करते हैं। ऐसे समस्त विकारोसे रहित परउपाधिक सयोगसे रहित निरजन शुद्धआत्मतत्त्वको जानो। अर्थात् अपनी समाधिमे स्थित, होकर समता परिणाममे आकर परमात्माके स्वरूपका अनुभव करो।

समाधि कब बनेगी? जब विकल्प हटे। विकल्प जिसके हटते है उसे शुद्ध आत्माका अनुभव होता है अर्थात् मात्र ज्ञानस्वरूपका अनुभव होता है। केवल जाननका क्या स्वरूप है? केवल जिसको जाना ही जा रहा है वह स्थिति क्या होती है? उस स्थितिका जहा अनुभव होता है वहा ही निर्विकल्प दशा है। यह निर्विकल्प समाधि तब प्रकट होगी जब समस्त विभाव परिणामोका त्याग करो। समाधिभाव, समता परिणाम, रागद्वेषसेरहित केवल-ज्ञानदृष्टि रहनेकी स्थिति होने पर शाति मिलती है। हे आत्मन्! ऐसी समाधिकी स्थितिको प्राप्त करना यही धर्मका यत्न है। हमे क्या करना है? निर्विकल्प समता परिणाममे रहना है। यदि यह भाव उठता है तो उसके धर्मका अभ्युदय हुआ समझिए। ऐसे स्वका अनुभव करनेके लिए सर्वविभाव परिणामको त्याग करना होगा।

विभाव परिणाम नाना प्रकारके हैं। उनको सक्षेपमे कहे तो ख्यातिकी इच्छा होना यह एक विभाव है ना? मुझे सब लोग जान जायें। कौन लोग जान जायें। ये कर्मसहित, रागद्वेषसहित, मोह विकार पाप-परिणामोमे लिप्त ये जीव जान जायें। बहुत बडी शाबासीकी बात सोच रहे हैं। ये मर मिटनेवाले जीव स्वय असहाय मेरी ही तरह अशरण असार मलीन जीव मुझे जान जावें, यह यो समझो कि हुआ क्या? एक मोहीने दूसरे मोही की प्रशसा कर दी। उष्ट्राणाम् विवाहेषु गीत गायति गर्दभा एक बार ऊटका ब्याह हुआ। सो ब्याहमे गाने वाले चाहिये। गाने वालोकी जरूरत थी। सो गानेके लिए मिले गधे, सो गधोने क्या गीत गाया? अहो धन्य हैं, तुम्हारा रूप बडा सुन्दर है। सारा शरीर टेढा मेढा होता है, गर्दन टेढी होती है। पैर टेढे होते हैं। इसी प्रकारसे सारा शरीर टेढा मेढा है। फिर गधोसे ऊट बोलते हैं, अहो धन्य है तुम्हारा राग। तुम्हारा राग बडा सुरीला है। इस प्रकारसे ऊटने गधोकी प्रशसा कर दी और गधोने ऊटकी प्रशसा कर दी। इस जगत्मे यही हाल हो रहा है। जब कभी दो आदमी बैठे होते है तो एकने दूसरेकी प्रशसा कर दी, दूसरेने उसकी प्रशसा कर दी।

कोई पहिले जमाना था, जबकि जमीदार लोग जाडेके दिनोमे पौटा जलाकर बैठते थे। वही चपरासी भी बैठते थे तो मालिक तो चपरासियोकी प्रशसा कर उन्हे प्रसन्न कर देता और चपरासी मालिककी प्रशसा कर उन्हें प्रसन्न कर देता। देखो यहा भी जो दोस्ती होती है उसमे एकने दूसरेको भला कह दिया, दूसरेने उसे भला कह दिया। इस प्रकारसे यह मोही जगत् एक दूसरेकी प्रशसामे जुट रहा है। यह ख्याति चाही जा रही है। और १०-२० वर्ष जीना है मर कर यहासे चले जाना है, फिर इस ख्यातिसे क्या लाभ मिलेगा? जैसे लोगोके व

साधनोसे कुछ लाभ नही मिलना है इसी प्रकार इस ख्यातिकी चाहके परिणाममे भी कुछ लाभ नहीं मिलता है। ख्यातिकी चाह एक मलिनताका विभाव परिणाम है।

पूजाकी चाह, मेरी पूजा हो, प्रसिद्धि हो, यह भी विभाव परिणाम है। लाभकी चाह, धन वैभव हो जाय, इतने हजार रुपयोका मुनाफा हो जाय, ऐसी स्थिति बन जाय कि बैठे-बैठे किरायेसे ही गुजारा हो तो किरायेसे भी गुजारा चल जायगा, मगर फिर भी बैठे बैठे खा न सकेंगे। कुछ न कुछ बिना करके उद्यम करनेका यत्न करेंगे। शातिका कारण तो बाह्यपदार्थ है ही नही। शान्तिका हेतु तो शुद्ध ज्ञान है। यथार्थ ज्ञान है। बाहरमे चाहे कुछ भी हो, मैं तो सबसे निराला एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप विराजमान हू, यह मेरा मतलब किसी अन्यमे नही निकलता है।

सहज स्वरूपका जिसके बोध होता है, वह अपने उपयोगको वही ले जाता है। यदि ऐसा अपना उपयोग कर ले तो सारे काम बन जायें। बाह्य चीजोमे न फसकर उनको हितरूप न मानकर अपने आपका जैसा सहज-स्वरूप है उसको हितकर समझो। यदि ऐसी दृष्टि बनती है तो वही धर्मका पालन है। यदि ऐसी दृष्टि नही बनती है तो चाहे मदिरमे साक्षात् प्रभुके सामने विराजमान हो जावो तो भी आप धर्म नही कर रहे हैं। यदि अपने आपके स्वरूपका भान हो जाये तो ऐसी स्थिति होनेपर आपको रागके साधन न मिलेंगे, फिर रागादि विकारोका आदर न करके आप अपने स्वभावका आदर करने लगेंगे। यदि मदिरमे भी मोहकी वृत्ति हो रही है, स्त्री पुत्रोको ही अपना सर्वस्व समझ रहे हो तो उस समय भी आप धर्म नही कर रहे हो।

भैया! धर्मका सम्बध तो आत्मभावसे है। धर्म मन, वचन, कायकी चेष्टाओसे नही है। धर्म करनेके लिए विभाव परिणामोका त्याग करना होगा। वे विभाव परिणाम बताये जा रहे हैं। भोगकी इच्छा करना भी विभाव परिणाम है, भोग तीन प्रकारके हैं (१) दृष्ट (२) श्रुत और (३) अनुभूत। कुछ भोग तो ऐसे हैं कि सुख दुःख है। कुछ भोग ऐसे हैं कि जिन्हे सुना है और कुछ ऐसे हैं कि जिनका अनुभव किया है। अनुभूत भोग निकटके भोग हैं और दृष्ट उससे दूर हैं और श्रुत उससे अधिक दूर हैं।

भैया! इस जीव पर एक सकट यह लगा कि दूसरोके भोगोको देखकर यह वाछाए बनाने लगता है। जैसे तुमको अगर वाछा है तो भोग भोग लो, कितना भोगोगे? थोडा भोगनेसे ही तृप्त हो जावोगे, मगर दूसरोको भोगते जब यह जीव देखता है तो बेचैन हो जाता है। गावोके लोग कितना खाकर सतुष्ट रहते हैं सो समझते ही होगे। सीधी वह दाल रोटी चाहिए। उनको कुछ मिठाई, रबडी, चटपटी खानेकी इच्छा नही। उन्हे सूखी दाल रोटीमे ही सतोष रहता है। इच्छा बढ गई है सो अब गुजारा नही चलता है। क्या हो गया? अरे अपने आपकी आवश्यकतासे भोग साधे जाते थे। वे भोग थे किन्तु दूसरोके भोग देख करके तृष्णा बढी है यह बडा कठिन रोग है।

दृष्ट, श्रुत और अनुभूत भोगोकी आकाक्षा होना यह सब विभाव परिणाम है, सुन लिया कि अमुक अमुक प्रकारके रेडियो बने हैं। सिनेमा बने हैं तो दिल हो जाता है कि इनको देखना चाहिये। यह क्या है? भोगोकी बात सुनकर उसके इच्छा बढी और जब यह सब सही अनुभूत हो जाता है तब तो और भी अधिक रग जाता है। ये सब बडे सकट जीव पर छाये हैं। वह गृहस्थ पुरुष धन्य है कि जो बडी विभूतिके बीच रहते हुए भी सात्विक रहन सहनसे रहे। व्रत तपस्या परिणाम पूर्वक रहे, भोगोके त्याग पूर्वक रहे, वह गृहस्थ धन्य है। भले ही लोग कहे कि इन्हें मिला तो सब कुछ है मगर रुखे सूखे व्रत तपोमे रहा करते हैं, अमुक सेठकी यह बुद्धिमानी है क्या? परन्तु सेठ स्वय बुद्धिमान है, जानता है कि ये भोग आज हैं कल न रहे तो अपनी वृत्ति तो ऐसी बनाओ कि ये भोग न रहे तो कोई आकुलता न रहे।

कठेरामे सुना करते है कि एक धनिक जैन था। वह रायसाहब कहलाता था, धार्मिक था। वहाका राजा भी उसका आदर करता था। यद्यपि उसके पास बडा धन था पर उसका काम था कि प्रतिदिन दो घन्टे

नमक तम्बाकूकी खास पीठ पर लादकर फेरी लगाया करे और खुद तौलकर वेचा करे। दो घन्टेके वाद फिर हजारो रुपये सैकडो रुपयोका काम करे। लोग पूछते थे कि तुम्हारा तो इतना ठाठ है कि राजा भी आदर करता है और तुम तम्वाकूकी फेरी करते हो। वह कहता था कि आज तो ठाठ है कल यह कुछ न रहे तो फेरी लगानेमे कोई सकोच तो न होगा। यह उसकी बात थी। इतनी वातके लिए तो भैया आपको नही कह रहे है पर सव प्रकारके साधनोमे रहते हुए भी अपना रहन सहन सात्विक हो यह जरुर ध्यानमे रहे और आज कल तो सात्विक रहन सहन का महत्व भी है।

श्रृगार अपना वनाना है तो दीनोकी दुखियोकी सेवामे उपकारमे धन खर्च करो। अपने खर्चमे पान, वीडी सुपाडी, तम्बाकू, सिनेमा आदि मे जो खर्च किया जाता है उससे न अपनी उन्नति है, न लोगोकी दृष्टिमे वडप्पन है। रहन सहन सात्विक हो और परोपकारमे यत्न होना अपना श्रृगार है। इसी श्रृगारसे अपनी शोभा है। आश्रितोका भरण पोषण करो यही श्रृगार है। दीन दुखियोके उपकारमे धन व्यय हो और अपना व्यय कम रखो तो इससे धर्मकी बातोको अधिक स्मरण करनेका वातावरण रहेगा। सो किसी भी प्रकार विभाव परिणामोको त्याग कर अपने समाविभावमे स्थित होओ।

भगवान् परमात्मा निरजन है। अजन अनेक हैं उन सव अजनोसे रहित है, जिसके पुण्य और पाप भी नहीं है। कर्म भी अजन हैं और वे दो प्रकारके हैं, (१) पुण्यरूप और (२) पापरूप। जिसके हर्ष और विषाद भी नही है हर्षमे आये राग और विषादमे आये द्वेष तथा जिसके क्षुधा तृष्णा आदि १८ दोषोमे भी एक भी दोष नही है। हे प्रभाकर भट्ट! उसको तुम शुद्ध आत्मा निरजन समझो। अर्थात् निर्विकल्प समाधिमे स्थित होकर अनुभव करो। जव तक उस शुद्ध आत्माका विशद यथार्थ जानन न हो तव तक उसको जानना ही नही वताया गया है। और शुद्ध आत्माका जानना शुद्ध आत्माके उपयोग रूपमे अनुभव किए विना होता नही है। यहा जैसा कुछ वाह्य पदार्थोका जानना तो है नही कि यथा तथा जान गया। शुद्ध आत्माका जानना चरित्रके उपयोग बिना नही हो सकता। अत वीतराग निर्विकल्प समाधिमे स्थित होकर शुद्ध आत्माका अनुभव करो।

वह निर्विकल्प समाधि कैसी है? कि निज शुद्ध आत्माके सम्वेदनरूप निर्विकल्प है। चाहे यह कहो कि किसी प्रकारका विकल्प न हो और चाहे यह कहो कि मात्र अपने शुद्ध आत्मतत्त्वका सम्वेदन हो, दोनोका भाव एक ही है। ज्ञान एक गुण है। वह गुण किसी न किसीको जाने विना रह ही नही सकता। किसीको न जाने और ज्ञान गुण वना रहे यह कैसे हो सकता है? वाह्यपदार्थोको न जाने तो ज्ञानका आधारभूत जो निज शुद्ध आत्मा है उसको तो जान ही लेगा तो केवल शुद्ध आत्मतत्त्वके सम्वेदनमे रहकर शुद्ध आत्माका अनुभव करो। इस प्रकार तीनोमे वताये गये निरजन परमात्माको जानना चाहिए और अन्य प्रकारका कोई निरजन कल्पित आत्मा नही है। इस प्रकार परमात्माके स्वरूपको निरजन शब्दके द्वारा वताया गया है, उसमे जिन जिन अजनोका विरोध किया है उन सव अजनोका सद्भाव इन सव आत्माओके स्वभावमे नही है। सो शुद्ध ज्ञान दर्शनस्वभाव वाले जो शुद्ध आत्मतत्त्व है वे उपादेय हैं ऐसा समझना चाहिए।

भैया! लोकमे मनुष्यजन सव कुछ कर डालते हैं, अपने आनन्दके लिए सव कुछ कलाएँ खेलते है किन्तु एक ज्ञानरसका स्वाद लेनेकी कला और देख लो। करनेका काम केवल एक ही है, अपनेको ज्ञान मात्र निरखना इस ज्ञानमात्र स्वरूपसे वाहर मेरा अस्तित्व नही है। इस ज्ञानमात्र स्वरूपसे वाहर मेरा कुछ कर्त्तव्य नही है। मेरा काम है अपने आपका जानन वना रहे। ज्ञान ही कार्य, ज्ञान ही भोग है। ज्ञानमात्र अपने आपको समझनेसे सहज आनद प्राप्त होता है। उसका स्वाद लेना एक ही कर्त्तव्य शेष रह गया है और तो सब कुछ किया यह ही निरजन स्वरूप हम आपके लिए उपादेय हैं। अव उस निर्दोष आत्माकी आराधनाके ग्रहण करनेमे व्यवहार ध्यानका विषयभूत धारणा ध्येय तत्र मत्र मुद्रा आदिका निषेध करते हैं।

जिस परमात्माके वायु धारणादिक ध्येय नही है वे वायु धारणा तीन प्रकारकी होती है—(१) कुम्भक (२) रेचक और (३) पूरक। ये ध्यानके प्रकार हैं उपाय है। स्वासको धीरे-धीरे अन्दर लेना और फिर पेटमे श्वास वायुको थाम लेना, फिर उस वायुको धीरे-धीरे स्वासनासिकासे निकालना इसको कहते हैं कुम्भक पूरक और रेचक। ये ध्यानमे कुछ सहायक होते हैं।

यद्यपि मोक्षमार्गका प्रयोजकभूत ध्यान ज्ञानसे ही सम्बन्ध करता है, भेदविज्ञानके विना ये कुम्भक, पूरक, रेचक इत्यादि क्रियायें कुछ लाभ नही देती। हा मनकी उद्दण्डताको वचानेके लिए और मनको स्थिर बना सके इस अभ्यासके लिए यह कारण बनता है वस्तुके मर्मके ज्ञानके विना क्रियायें धर्मफल नही दे सकती हैं। कर्मोका क्षय जिस पद्धतिसे होता है उस पद्धतिसे ही होगा वह तन, मन, वचनकी चेष्टावोसे नही होगा। भेदविज्ञानका फल है अपने सहजस्वरूप शुद्ध आत्मतत्त्वका अवलोकन। जब तक इस केन्द्रभूत निजआत्मतत्त्वको न जान लिया जाय तब तक भेदविज्ञान कैसा ? अनात्मा कौन है ? यह बात आत्माके ज्ञानके विना नही निर्णीत हो सकती है। इस शुद्ध आत्मा का तो मात्र एक प्रतिभास स्वरूप है सो प्रतिभासमात्र करनेकी परिणतिसे यह अनुभूत होता है।

इसका वायुधारणादिक स्वरूप नही है अथवा प्रतिमादिक ध्येय नही है। ये सब साधन हैं पर ये कुछ वस्तु आत्माके स्वरूप नही है। स्वरूपके बोधके विना क्रियाओसे कही कर्म क्षयका अथवा शाति लाभका काम नही गुरुजी एक दृष्टात बताया करते थे कि एक बार शीत ऋतुमे देहातोसे बजाज लोग घोडोपर बैठकर ललितपुरको चले क्योकि ललितपुरमे उधार माल मिलनेकी बडी ख्याति थी और लोग कह भी बैठते हैं कि खासी गलेकी फासी, ततिया गलेका हार। ललितपुर तब तक नही छोडिये, जब तक मिल उधार।।' तो ललितपुरको तीन चार लोग चले, जाडेके दिन थे। रातमे ठहर गये जगलमे एक पेडके नीचे। उनको बडा जाडा लगा। तो उन लोगो ने यहा वहासे खेतोकी बाडीसे जरेंटोको बटोरा, उनको इकट्ठा किया। बादमे माचिस या चमकसे आग निकालकर उसे बढाकर कुछ जडोमे डाल दिया और सब लोग तापने बैठ गये। रात्रिभर ऐसा ही किया और सुबह सबके सब लोग वहासे चल दिये।

अब दूसरा दिन हुआ तो उस पेड पर रहने वाले बदरोने सोचा कि देखो जैसे हाथ पैर उन मनुष्योके थे वैसे ही हमारे हैं। वे लोग किस प्रकारका यत्न करके अपनेको ठडसे बचाकर चले गये। वही अपने कामके लिए अपन लोग करें तो अपनी भी ठड मिट जाय। तब बदर लोग भी वैसा ही काम करने लगे। शामके समय सब बदरोंने सलाह करके वही काम किया। सब दौड गये और जल्दी-जल्दीसे जरेंटोकी जडें बीन कर इकट्ठा कर लिया। अब इकट्ठा करनेके बाद सब बदर बैठ गये। आपसमे चर्चा करने लगे कि ठड तो नही मिटी इतना तो काम कर डाला तो उनमेसे कोई समझदार बदर बोला कि अभी ठड कैसे मिटे ? अभी इसमे वह लाल चीज तो डाली ही नही जो उन मनुष्योने डाली थी। तो लाल चीज क्या थी ? आग। तो बदर लोग उस लाल चीजको तलासमे चले तो जुगनू कुछ मिल गयी। उनको पकडा और जरेंटोमे डाला। जुगनू डाली तब भी ठड न मिटी। सोचने लगे क्या बात है ? सब कुछ कर लिया पर ठड न मिटी तो उनमेसे एक चतुर बदर था। वह बोला कि वे हाथ पर हाथ रखकर बैठ गये थे हम तुम भी बैठ जाए। वे हाथ पर हाथ पसारकर बैठ भी गये। अब भी ठड न मिटी सोचो तो भैया ! बदरोने सब कुछ कर लिया पर ठड न मिट सकी। ठड कैसे मिटे ? ठड मिटनेका साधन तो आग थी। आगका उनको ज्ञान नही था। बहुत बहुत चेष्टाए करी पर आगका ज्ञान न होनेसे ठड न मिटी।

इसी प्रकार कर्मोका क्षय शांतिका प्राप्ति किसी मुद्रासे, श्रमसे, वायु धारणामे मिलती है या अन्य किन्ही बातोसे नही मिलती है। एक शुद्ध निज आत्मतत्त्वके ज्ञानसे ही शाति मिलेगी। बाह्यमे सब जगह तलाश लो, यत्न कर लो पर शाति न मिलेगी। भैया ! इन परपदार्थोमे शरण माननेसे शरण न मिली, शाति न मिली बल्कि वेदना

ही मिली। मोहका प्रताप देखो। कुछ थोडा सा समझ भी रहे हैं कि बाह्यपदार्थोंसे आखिर आत्माका हित क्या होगा ? फिर भी लगते हैं बाह्य पदार्थोंमे ही। ठोकरे भी खाते, बाह्य पदार्थोंमे लगते भी जाते।

जैसे लाल मिर्च खाने वाले तेज लाल मिर्च खाते हैं तो उनके पसीना भी बहता जाता है, आखोसे आंसू भी गिरते जाते हैं पर वे मिर्च खाना नही छोडते। वे खूब चरचरा खाते हैं। आंसू गिरते जाते है फिर भी मांगते जाते हैं कि मुझे और मिर्च चाहिये। इसी प्रकार मोहियोंको भी देखा जा रहा है। इस शुद्ध आत्माको, जिसके कि अवलोकनसे सारे सकट टल जाते है। कोई यन्त्र मन्त्रस्वरूप नही है। मन्त्र क्या कहलाता है जिसमे अक्षर रचनाए की गयी है और सम्मान, मोहीकरण वशीकरण आदि विषय लेकर वह यन्त्र मन्त्र माना जाता है। वह सब इस मुझ शुद्ध त्मामे नही है और मन्त्र नाना प्रकारके उच्चारण रूप होते हैं यह भी शुद्ध आत्माके नही है। ये तो एक अशुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं।

अच्छा, सब कुछ तो जाना पर यह तो बतलावो कि जानन क्या कहलाता है ? ऐसा सोचते सोचते उस समयमें जानते जानते जो प्रतीत होता है, प्रतिभासमात्र केवल एक ज्ञानप्रकाश, ऐसा ज्ञानप्रकाश मात्र, चित् प्रकाश ही जो वर्तना है वह सब जानन है और जो यह जानना है वह ही मैं हू। इससे आगे जो कुछ है वह सब दोष है, औपाधिक भाव है। मैं नही हू, ऐसा मात्र जाननस्वरूप मैं हू।

इस शुद्ध आत्माके मण्डल भी नही है। ध्यानके काममे इनका प्रयोग किया जाता है। पृथ्वीमण्डल जल-मण्डल, अग्निमण्डल वायुमण्डलमे जैसे पृथ्वीमण्डलमे विचार किया जाता है कि यह मैं आत्मा जिनेन्द्रदेवकी ही तरह निर्मलमुद्रामे इस जम्बूद्वीपके बीच मेरुपर्वतके ऊपर बहुत विस्तृत एक कमलमे कर्णिकाके ऊपर एक श्रेष्ठ आसनपर मौजूद हू बहुत ऊचा हू पृथ्वीसे बहुत ऊचे कमलके आसनपर मैं मौजूद हू ऐसा कल्पनामे विचार रहा है पृथ्वी-मण्डलको ज्ञानीपुरुष। देखा जब अपनेको कल्पनामे ऐसा विचारते है कि मैं इस जमीनसे बहुत ऊचे कहा स्थित हू ऐसा विचारते हुए मैं अपनेको भाररहित हलका अनुभवता हू।

जैसे जब बच्चे लोग कोई बटा वगैरह खेलते है तो कोई जगह खडे होकर और तलाके पास बटा फेंकते हैं उनमे प्रथम ही प्रथम फेकनेकी कोशिशमे रहते है। जैसे कहते है कि हम पानीसे पतरे तो कोई लडका कहता है कि हम हवासे पतरे। जो अपने आपको जितना पतला बता सके वह सबसे पहिले अपने खेलका अधिकारी है। जरा देखो तो सही इस आत्माको यह आत्मा कितना पतला है। है ना पतला ? यह आत्मा हवासे भी अधिक पतला है तो क्या यह आकाशसे भी पतला है ? आकाशकी तरह मान लो पर आकाश तो एक स्थिर व्यापक है। यह आत्मा अपने ज्ञानविकासमे असीमित है। समस्त आकाश ज्ञानके एक बिन्दुमे रह सकने वाला है इसलिए यह बहुत अधिक पतला है और अपने आपको केवलज्ञानमात्र जाननमात्र ही निरखनेमे आ जाय तो उस समय न इसको शरीरका भान है और न स्थानका भान है। केवल जाननस्वरूप भान वाला आत्मा कितना भार रहित कहा जाय ? अपनी इस वर्तनेकी स्थितिमे सहज सत्य आनन्दका अनुभव करता है।

यह पृथ्वीमण्डलका जो चिंतन है कि मैं समुद्रके बीचमे जम्बूद्वीप रूपी कमल बनमे मेरुपर्वतरूपी कमल-नाल पर एक सिंहासनपर विराजमान हू। यह पृथ्वीमण्डल ध्यानाभ्यास करने वालेके एक ध्यानका विषयभूत विषय है। परन्तु कैसा तो यह शुद्ध आत्मा और कहा ये कल्पनाओंकी चीजें ? इनमे बडा अन्तर है। इस शुद्ध आत्मामे ये पृथ्वीमण्डल इत्यादि कुछ नही हैं।

वह ज्ञानी फिर यह विचार करता है कि लो इस नाभिकमलके उन ८ दलोंसे ज्ञानके प्रतीक अरहत सिद्ध-स्वरूपके ध्यानसे या मात्र ज्ञानस्वरूपके स्वच्छ विस्तारके अनुभवनसे एक ज्वाला निकली और उस ज्वालासे हृदय कमलके ऊपर स्थानपर उल्टी पखुडियोको लिए हुए दलके ८ कर्मोंकी ओर वह ज्वाला बढी और उसने इन कर्मोंको

दग्ध किया। आप लोग सोच रहे होंगे कि क्या बात कही जा रही है ? यह तो सब ध्यानकी और कल्पनाकी बात है। लेकिन भैया ! सुनो अभी कोई लड़का बड़ा ऊधमी हो और कहे कि तू तो राजा है, राजा कही ऊधम करता है। वह जल्दी ही सोच लेता है कि मैं राजा हू, उसका ऊधम छूट जाता है। ध्यानमे अपने आपको इस प्रकार सिद्ध स्वरूपमे विचारा जा रहा है तो आखिर यह उपयोग विशुद्ध बने तो शुद्धका अनुभव करोगे ना ? वह शुद्धात्मतत्त्व की ध्यानाग्निकी ज्वाला ऐसी बढ़ी कि सब कर्म भस्म हो गए, जलकर राख हो गए। ऐसे चिन्तनमे निर्भार ज्ञानमात्र अनुभव हुआ।

अब इतनेमे बड़े वेगसे एक आतरिक हवा उठी और हवाने इस सब कर्मधूलिको उड़ा दिया। लो अब सुधारसकी वृष्टि हुई। उसको छटा उड़नी भी शेष न रही। तब यह शुद्ध आवश्यकता निर्लेप ज्ञानमात्र रहा। इतना तो ध्यान किया और थोड़ी देर बादमे वही अपना मनुआ दिखाई दिया, तो कुछ यहा फर्क नही आया। यह एक ध्यानका प्रकरण है। यह ध्यान ध्येय भी इस शुद्ध आत्माका कुछ नही है। इसका तो मात्र एक ज्ञायकस्वरूप है। इस एक निजको ग्रहण करे तो सर्वस्व वैभव पा ले। एक इस निजको छोड़ दे तो श्रमके कितने भी यत्न करे कुछ नही पाया।

एक राजाने किसी राजाको जीता और उसी देशमे रहने लगा। सब रानियोको राजाने पत्र लिखा कि जिस रानीको जो चाहिए वह पत्र लिखे। किसी रानीने साड़ी लिखी, किसीने अगूठी, किसीने हार, किसीने कुछ, पर छोटी रानीने पत्रमे केवल एकका अक लिखा और दस्तखत कर दिया। जब राजाने पत्रोको खोला तो ठीक, पर छोटी रानीका जब पत्र देखा तो राजा उस एकके अकको देखकर कुछ समझ न सका। मन्त्रियोसे राजाने पूछा कि रानीने क्या मागा है ? तो मन्त्रीने कहा कि छोटी रानीने केवल आप अकेलेको चाहा है, उसे साड़ी, अगूठी कुछ चीजें न चाहियें। अब राजा जब अपने देशको चला तो सारी चीजें रानियोंके लिए ले ली। जब अपने नगरमे पहुचा तो कहा यह उस रानीको भिजवाओ, यह उस रानीको भिजवाओ। सो जिसने जो मगाया था सो वह चीज भिजवा दी। पर राजा छोटी रानीके यहा स्वय चला गया। भला बतलाओ कि सबसे ज्यादा वैभव किसने पाया ? छोटी रानीने। राजा व राजवैभव सब छोटी रानीके यहा है।

इसी प्रकार एक जो शुद्ध आत्माको ही चाहता है उसे सब कुछ मिल जाता है। अपने आपमे बसे हुए अपने सहजस्वरूपके दर्शनके बिना आत्माका उद्धार हो नही सकता। धन वैभव सम्पदामे उपयोग देनेसे लगाव करनेसे कोई सारतत्व न बनेगा। अन्तमे रीताका रीता ही मिलेगा, पछताना ही हाथ रह जायगा। यदि इस जीवनमे समय-समय पर अपने आपको शुद्ध ज्ञानमात्र अनुभव करके ज्ञान रसका सिंचन किया, स्वाद लिया तो यहा भी तृप्ति निर्दोष मिलेगी और परभवमे भी इस ही निर्दोष आनन्दको भोगेगा। इस कारण सर्व प्रकारके प्रयत्न करके शुद्ध ज्ञानतत्वका करना परम आवश्यक है। चाहे सब कुछ न्योछावर करना पड़े और यथार्थज्ञान मिले तब सब कुछ प्राप्त हुआ समझिये।

यह परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है। इसमे परमात्माके प्रति प्रकाश डाला है कि परमात्मा क्या है ? परमात्मा दो प्रकारसे देखा जाता है एक तो व्यक्तपरमात्मा और एक अव्यक्तपरमात्मा। जिसके दूसरे नाम हैं—एक कार्य परमात्मा और दूसरा कारणपरमात्मा। कार्यपरमात्मा तो वह कहलाता है जो साधु व्रत अगीकार करके अपनी निर्विकल्प समाधि बनाकर कर्मोंसे रहित हो गया है, अनन्तज्ञान अनन्तसुख जिसके प्रकट हो गया है, ससारके सकटोसे मुक्त हो गया है, उनका तो नाम है कार्य परमात्मा। वे हुए अरहत और सिद्ध, और कारणपरमात्मा घट-घटमे विराजमान कारणपरमात्मा कहलाता है। जिस परमात्मातत्वके दर्शनसे कर्म कटते हैं, वह कारणपरमात्मा है ? ऐसे इस कारण परमात्माका वर्णन इस ग्रन्थमे है।

कारणपरमात्माके स्वरूपको जल्दी समझनेके लिए अपने आपमे ऐसा ध्यान बनाओ कि यह मैं केवल हू। शरीर भी साथी नही हो तो, कर्म भी साथ नही रहते और इस आत्माके स्वभावसे रागादि विकार भी नही रहते। तो मैं किस रूपमे हू ऐसा ध्यान बनाओ। यदि यह शरीर भी न होता तो मैं किस प्रकार होता ? ऐसा ख्याल करो। शरीर तो भिन्न है और जीव जुदा है। जीव तो समझने वाला एक पदार्थ है और शरीर रूप, रस, गध, स्पर्शका पिण्ड है पुद्गल है। यह शरीर अलग है, आत्मा अलग है।

कोई कहे कि केवल बातें ही ये हैं। जो शरीर है सोई मैं हू। शरीरसे न्यारा मैं कुछ नही हू। तो भाई आखे खोलकर अपनी इन्द्रियोको इस ओर लगाकर देखते हैं तो वहा अपना पता नही रहता। इन्द्रियोको बन्द कर शरीरकी भी चेष्टा छोडकर अन्तरमे जाननरूपसे विचार किया जाय तो मालूम होता है कि इसके अन्दर जानने वाला पदार्थ और है, शरीर और है। यदि न होता जीव कोई और तो फिर मरण क्या कहलाता है। शरीरको छोडकर जीव चला जाय इसीके मायने है मरण हो गया। शरीर जुदा है, तब शरीरका जीवसे निकलना मरण है। शरीर ही जीव होता तो फिर निकलता कुछ नही।

जैसे तिलके दानेमे तैल रहता है और फुलकी भी रहती है। वह तैल उसमे शुरुसे है। अगर कोल्हूसे पेलने पर फुलकी रह जाती है तेल अलग हो जाता है। तो अब स्पष्ट विदित हुआ कि उस तिलके दानेमे तेल भरा हुआ है। इसी प्रकार इस शरीरके भीतर जीव है। जीव निकल गया, शरीर रह गया। अब उस जीवकी बात देखो कि जो इस शरीरसे निकलकर जायगा वह कुछ चीज है क्या ? उस जीवका यह लोक समागम कुछ हित कर देगा क्या ? उस अपने जीवकी बात विचारो। कुछ भी सम्बन्ध नही है किसी भी जीवसे।

भैया ! बडा ही ऊचा होनहार हो तब यह बात समझमे आती है कि मैं सत् अलग हू, यह देह सत् अलग है। इससे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नही है। यह यथार्थता मेरी समजमे आती है तो कुछ होनहार अच्छा है। निकट भव्यता है, मोह छूटने वाला है। तो इस तरह से अपनेको ध्यानमे लावो। इस शरीरका मेरे साथ सम्बन्ध न लगा होता, ये पुण्य पाप भेदरूपकम मेरे साथ न होते तो मैं केवल क्या कहलाता ? मैं कहलाता केवल ज्ञान और आनन्दस्वरूप। ज्ञान और आनन्दस्वरूप यह मैं इन शब्दोसे न्यारा हू। इस मेरेका ज्ञान और आनन्द मेरेसे सतत झरता रहता है क्योकि ज्ञान और आनन्द मेरा स्वरूप है।

ज्ञान और आनन्द प्रकट होनेके लिए किसी दूसरी वस्तुकी पराधीनता नही है। ऐसा ज्ञानानन्दस्वरूप मैं आत्मा स्वभावरूप कारणपरमात्मा कहलाता हू। सबको पार करके और अपने ही अन्तरमे सद से विराजमान जो चैतन्यस्वभावको अनुभवे वह कारणपरमात्मा है उसे स्वभावकी परखसे कर्म कटते हैं। उस स्वभावके आश्रयसे भगवान बनते हैं, सो यही कारण कहलाया जिजकी दृष्टि रखनेसे परमात्मा स्वय प्रकट होता है वह कारण परमात्मा है। जीवने धर्मके नाम पर बहु. कुछ परिश्रम किया, स्वाध्याय किया, पूजा किया, दर्शन किया, यात्रा किया, बडे-बडे श्रम किये, उत्सव किया, विधान किया, तपस्यायें की, किन्तु अपने आपमे बसा हुआ यह कारणपरमात्मा शरण है ऐसा कभी निगाह नही किया और इतनी बात न समझनेके कारण कितना भी तप किया, व्रत किया, यत्न किया उससे कर्म नही कटे।

परोपकार करनेसे लोगोको दान करनेसे पुण्य तो बढ जायगा परन्तु कर्म नही कटते। कर्म कटेंगे तो इस कारणस्वरूप परमात्माके दर्शनसे कटेंगे। उस कारण परमात्माको इस ग्रन्थमे बताया है। कैसा है यह परमात्मा ? इसका वर्णन बहुत पहिलेसे चल रहा है और निकट समीपमे यह बताया गया है कि यह कारणपरमात्मा नित्य है। रहता है ना ? यह मेरा चैतन्य स्वभाव किसी दिन आया हो और किसी दिन खत्म हो जाय ऐसा नही है। कारण-परमात्मा नित्य है। हम किसका ध्यान करें कि हमको कोई सदेह न रहे कि हम नियमसे मोक्षमे पहुचनेका काम

करनें। ऐसा कुछ तत्व है ? ऐसा तत्व अपने आपकी आत्मामे बहुत भीतर छुपा हुआ स्वभाव है। इस स्वभावकी दृष्टि हो तो सम्यग्दर्शन होता है।

जैसे हड्डीकी फोटो लेने वाला एक्सरा यन्त्र होता है। उसमें आदमीको लिटा दो और हड्डीका फोटो लो तो खून चाम, मास और मज्जा सबको एक दम छोड़कर हड्डीका फोटो ले लेता है। इसी तरह इस ज्ञानकी ऐसी शक्ति है प्रज्ञामे, भेद विज्ञानमे कि यह शरीर भी नही छुवेगा, शरीरके अन्दर जो कुछ भी मल है, धातु है उसको भी नही ग्रहण करता है और जो द्रव्य कर्म हैं उनका भी नही ज्ञान करता। विकारोंको छोड़ देता, विचारोको छोड़ देता, सीधा नित्य चैतन्यस्वभावको ग्रहण करता है। यह अध्यात्मविद्याका मर्म है। इसकी विद्या यद्यपि कठिन नही है पर जिसने नही सुना अथवा ख्याल नहीं किया उसके लिए कठिन हो सकती है।

अन्य पदार्थविषयक ज्ञानोकी अपेक्षा अध्यात्मज्ञान बहुत सरल है। और यह कारणपरमात्मा कैसा है कि इसमे परद्रव्योका कोई लेप नहीं है। यह अपने स्वरूपमे है, ज्ञानमय है, आनन्द स्वभावी है, स्वय कल्याणरूप है, इसमे क्लेशोका नाम नही है। क्लेश तो जीवको परपदार्थोंकी दृष्टिसे आते हैं, परपदार्थोंकी दृष्टि न हो तो इसको कोई क्लेश नही है। जैसे यहां कोई मनुष्य कष्टमे नही है पर किसी दूसरेकी निधिको देख ले, दूसरेके रहन सहनको देख ले तो उसके क्लेश आ जाते हैं। मेरे पास इतना क्यो न हुआ ? इस बातसे क्लेश हो जाता है।

देहातमे रहने वालोका आप विचार कर लो। जब तक देहातमे रहे तब तक खोटेमे साधारण भोजनमे खुश रहते थे पर वे शहरमे आकर दूसरोका रहन सहन मकान महल ज्यो ज्यो देखते जाते हैं त्यो त्यो उनके क्लेश बढते जाते हैं। नही तो स्वय अपने आपमे क्या क्लेश हैं ? कुछ भी तो क्लेश नही है। दूसरे पदार्थोको यह जीव न तके तो इसे कोई क्लेश नही है। यह कारण परमात्मा कैसा है ? जो इसका स्वरूप है उसको तो कभी छोड़ता नही और जो इसका स्वरूप नहीं हैं उसे कभी ग्रहण नही कर सकता है। जलमे कमल जैसे अछूता रहता है, जलमें रहता फिर भी कमल जलसे न्यारा है। इसी प्रकार शरीरके कर्मोंके अनेक अगोके बीच यह आत्मा फसा है फिर भी सबसे अछूता है। जैसे पानीमे पड़ा हुआ कमलका पत्ता हो उसे पानीमे चाहे जितनी गहराईमे ले जावो, वह पत्ता पानीके बीचमे रहकर भी पानीसे अछूता है। पत्तेके रग और स्वरूपमे पानीका प्रवेश नही, पानीसे उस पत्तेको निकालो ज्योका त्यो सूखा पत्ता देख लो। कमलका पत्ता ऐसा ही होता है। पानीमें डूबा देने पर भी वह पानीसे अछूता है और पानीसे निकालो तो देख लो कि बिल्कुल अछूता है। इसी प्रकार यह आत्मा सबसे निराला स्वरूप मात्र है।

भैया ! कारणपरमात्माकी चर्चा हो रही है, इसका स्वभाव जाननेका है। यह परमात्मा सबको जानता है, इस विश्वमे जो है उसको जानता है। जानना ही परमात्माका स्वभाव है। यह जानन जिसके पूर्ण प्रकट हो गया उसको तो कहते हैं कार्यपरमात्मा, पर हमारे जाननेकी जो शक्ति पडी हुई है उसको कहते हैं कारणपरमात्मा। कार्य और कारण ये दो बाते सब सिद्धान्तोने करीब-करीब मानी है। जैसे ये जो दृश्यमान भौतिक पदार्थ हैं ये सब कहलाते हैं कार्यपरमाणु और इसमें एक-एक परमाणु है, और उन परमाणुओमे कभी मिलकर एक दृश्य भौतिक बननेकी शक्ति है उन परमाणुओंको कारणपरमाणु कहते हैं। और भी देख लो जहा यह माना गया है कि रामजी श्रीकृष्ण जी आदि अनेक ईश्वरके अवतार होते हैं तो वे अवतार कार्यरूप कहलाए और ईश्वर कारण रूप कहलाया। हर जगह यह दो रूपता मिलती है।

भैया अपनेको अपने आत्मामे निरखो, इसका अचिन्त्यस्वरूप है। इस लोकमें भी देखते हैं कि बडे बडे पुरुषोके बडे-बडे चमत्कार समझमे आते हैं। बडे बहुत ऊचे पहुचे हुए हैं, बहुत बडा ज्ञान है। सब आत्माकी शक्ति का चमत्कार है। उनमे अभी पूरी शक्ति नही प्रकट हुई। पूर्णशक्ति प्रकट हो गई उसका नाम है कार्यपरमात्मा। अपने अन्तरमे विराजमान कारणपरमात्माके दर्शन करो। उसका ही भरोसा रखो अपने स्वरूपकी दृष्टिमें अपनेको

सु क्षित व शरण समझो । जगतमे कोई दूसरा जोव, कोई भी वैभव शरण अपनेको नही है । मोहमे दिन गुजर रहे हैं तो वह जीवनकी बर्बादी है ।

भैया ! जितने क्षण मोह न रहे, अपने आपके और परमात्माके ही दर्शन रहे तो समझो जीवनके उतने क्षण सफल रहे । जीवन तो भैया तभी सफल होगा जब मोह राग द्वेष छूटेंगे । भैया अपने लडकोको खूब पढा लो, खूब बडा बना लो, यह लोककी व्यवस्था है, पर उसमे यदि यह भाव है कि यह मेरा है मैं इसको खूब ऊंचा बनादू, मैं इसको सुखी बनादू तो यह मोहका परिणाम है । जीव तो अनेक हैं । उन सब जीवोमे से इन दो तीन जीवोको ही क्यो छाटा कि ये मेरे है, इनको खूब सुखी रखूंगा । अरे यह कितना मोह अधकार है ? जैसे सब जीव हैं वैसे ही वे घरके दो चार जीव भी हैं । घरमे बसने वाले दो चार जीवोंके लिए तन, मन, धन, सब कुछ न्यौछावर और दूसरे लोगोके लिए उसमेसे एक पाई नही है । यह बुद्धिमानी मानी जाती है जगत्के अन्दर परमार्थके बिना यह जीवन बेकार गवाना माना जाता है ।

समयका सदुपयोग तो वह कहलायेगा कि मरनेके बाद भी कुछ साथ रह सके । मरनेके बाद एक पैसा भी तो साथ नही जाता । घरमे जो गुजर गये हैं उन पर दृष्टिपात तो करो क्या वे साथमे कुछ ले गये हैं ? उनका कितना अनुराग था कितनी श्रद्धा थी उन्होने कितना धन कमाया पर बिल्कुल सूने चले गये हैं । उन्होने जो कुछ पुण्य परिणाम किया होगा, ज्ञान परिणाम किया होगा वही उनके साथ गया होगा । तो यह जो पुण्य परिणाम किया यही उनकी हुई कमाई, और जो कुछ यहा छोड गये सब मुफ्तकी ही चीजे थी । तो हम मरनेके बाद भी वैभव सम्पन्न कहलाए, महान् कहलाए ऐसी चीज क्या हो सकती है ? वह है सम्यग्ज्ञान ।

भैया ! अपने आपमे बसी हुई अनेक परदोंके भीतर छिपी हुई उस चैतन्यशक्तिका ज्ञान करो, उसका ही सहारा लो । यदि ऐसा दृढ ध्यान करो तो वह अपने आपमे बसी हुई चैतन्यशक्ति ही अपनी शरण है । ऐसी दृष्टि जगे और निर्विकल्प बनकर ऐसा आत्मामे अनुभव बने तो जीवन सफल है और कारणपरमात्माके दर्शन हुए समझो । इस कारणपरमात्मामे न तो रूप है, न गध है न स्पर्श है, न शब्द है, न जन्म है, न मरण है । इस शरीरके अन्दर जो एक चेतने वाला ज्ञानानन्द स्वभावी निर्लेप आकाशवत् अमूर्त जो आत्मा है वह अन्य कुछ नही है । ज्ञानानन्दभव है इसमे न क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न ध्यान है, न विकाशकी डिग्रियां हैं, न पुण्य, न पाप है, न हर्ष है न विवाद है ।

यह कारणपरमात्मा स्वभाव दृष्टिसे देखा जा रहा है । जब हम अपने स्वभावको छोड देते हैं और अन्य पदार्थोंको देखते हैं तो इसमे भेद उत्पन्न हो जाता है । यदि हम निर्लेप रहे तो इसमे कोई भेद नही आ सकता । यह अपने आपके कारणपरमात्माकी चर्चा है । कभी इसको कारणपरमात्मा दर्शन होते हैं और उसकी भक्तिमे परिग्रहका सग छोड कर ध्यानावस्थामे लगता है तो वह भी जो धारण करता है यत्र मत्र मण्डल मुद्रा प्राणायाम इत्यादि साधन करता है ये सब भी इस कारणपरमात्मामे नही है ।

यह कारणपरमात्मा तो सदा अपरिणामी ध्रुव चैतन्यशक्तिमात्र है । जिसके ये सब परपदार्थ और परभाव नही है उस परमात्मदेवको आराध्यदेव समझो । अर्थात् द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे अनन्त अविनाशी । अनन्त ज्ञान आदि गुणोके स्वभाव वाला समझो । देखो दूसरी बात, वस्तुके जाननेके दो तरीके हैं । (१) द्रव्यार्थिकनय और (२) पर्यायार्थिकनय । जो ज्ञान पर्याय पर दृष्टि देनेसे दिखता है उस ज्ञानको कहते है पर्यायवाला ज्ञान और जो ज्ञानपर्यायो पर दृष्टि न देकर शक्तिपर दृष्टि देनेसे दिखता है उसे कहते है ज्ञानस्वभाव ।

कार्यपरमात्मा पर्याय है और कारणपरमात्मा द्रव्य है । दो चीजें चलती हैं (१) द्रव्य और (२) पर्याय । सदा रहने वाली चीज और उसमेसे प्रकट होनेवाली चीज । सदा रहने वालेको द्रव्य कहते हैं और प्रकट होने वाली बातको पर्याय कहते हैं । जैसे आपकी आत्मा चैतन्यद्रव्य है और आत्मामे जो बात प्रकट हो रही है, कार्य हो रहा

है वह मायामय हो रहा है या अनन्तानन्द हो रहा है ? ये सब पर्यायें हैं। जहां सारे विश्वका ज्ञान हो गया है, किसी प्रकारकी आकुलता नही रही है, सदाके लिए असीम मुक्ति हो गई है ऐसी जो दशा है वह भी पर्याय है। वह चेतन कार्यपरमात्मा है और कारण परमात्मा बननेकी शक्ति आत्माका चैतन्यस्वभाव वह कारणपरमात्मा है।

भैया ! अनुकूल प्रयत्न करके कारणपरमात्माकी आराधना करो। परमात्मादेवकी भक्ति कर रहे हो तो वहा भी ऐसा विचार करो कि धन्य है परमात्मदेव, यह पूर्णज्ञान और आनन्दसे तन्मय है और जैसा इसका स्वरूप है तैसा उसका स्वभाव है। द्रव्यदृष्टिसे हम और भगवान् एक है और कहते भी हैं सब लोग कि जो हम है सो परमात्मा है। जो आत्मा सो परमात्मा। परमात्मा कोई भिन्न चीज नही है। भिन्नता कितनी है हम आत्माओमे विषयकषाय विकल्प है और परमात्मामे विषयकषाय रागद्वेष विकल्प नही हैं। किन्तु जिस स्वभावसे बना हुआ वह परमात्मा है उसी स्वभावसे बने हुए हम सब आत्मा हैं। द्रव्य पृथक नही है किन्तु करणीका अन्तर है। जिस मार्गसे सयम साधकर आत्मसमाधि बनाकर वह परमात्मा बना है उस मार्गको यदि हम अपनाएं तो हमारा भी वही काय हो सकता है।

भैया ! एक ही काम है इस जिन्दगीमे। जो करता सो पार होगा। किसी बाह्यवस्तुमे मूर्छा ममत्व न रखे। सबको विनाशीक जाने, अपनेसे भिन्न समझें और अपने आपको सबसे निराला जानकर इसमे बसा हुआ जो ध्रुव चैतन्यस्वरूप है वही मैं हू—यों इस कारण परमात्माके स्वरूपकी प्रतीति करे, बस यही एक जीवनमे करनेका काम है। यह परमात्माका प्रकाश है। परमात्मा दो प्रकारसे देखा जाता है। एक तो कार्यपरमात्मा और एक कारण-परमात्मा तो वह कहलाता है कि जिसके अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तशक्ति, ये अनन्तचतुष्टय प्रकट हों और कारणपरमात्मा वह कहलाता है जो सभी जीवोंमे परमात्मा बननेकी शक्ति है अथवा जो सहजज्ञान सहजदर्शन सहजआनन्द सहजशक्तिमय है वह है कारण परमात्मा।

कारणपरमात्माका ध्यान करनेसे कार्यपरमात्मा बनता है याने अपने आपके आत्मामे जो शुद्ध ज्ञानकी शक्ति है उस शक्तिका ध्यान करनेसे भगवान् होता है, अपने आपमे जो कषायके विषयके विकार लगे हैं वे दूर होते हैं अपने कारणपरमात्माका ध्यान करनेसे। छहढालामे लिखा है ना कि "जहा ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वच भेद न जहा" जहा ध्यान ध्याता ध्येय एक हो जाता है ज्ञान, ज्ञाता, और ज्ञेय एक हो जाता है ऐसा जो अपना परिणमन है उससे कर्मोका क्षय होता है याने अपने आत्माके स्वभावका ध्यान करनेसे कर्मोका क्षय होता है। किसी का सहारा ढूढना व्यर्थ है, सब जीव अपने स्वार्थमे है, यहा सब अपने विषयकषाय वृत्तिमें हैं, खुब ससारमे रुलने वाले हैं उनका सहारा नही हो सकता। सच्चा सहारा तो अपने आपमे बसे हुए स्वरूपके ध्यानसे हैं। मेरा स्वरूप सबसे निराला ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण स्वत सिद्ध है उस प्रभुका ध्यान करनेसे कर्मोका क्षय होता है।

जब किसीमे सहजप्रभुका ध्यान किया जाय तो उसका उपाय एक ही रहा है कि सबसे पहिले तो जिह्वा इन्द्रियके विषय पर विजय करना। सब इन्द्रियोंसे कठिन इन्द्रिय रसना है स्वाद लेना, अमुक चीज बने इसका स्वाद लू अमुक स्वाद लू। तो पहिले जिह्वाइन्द्रिय पर विजय प्राप्त करो। जिह्वा इन्द्रियका जो स्वाद है वह इन्द्रियजन्य है, क्षणिक हैं, जो विकल्प मचानेवाला है। रसनाके स्वादसे कुछ लाभ नही है, आत्मामे अपने आप सहज स्वाद बसा है। अतीन्द्रिय सुखके स्वादमे रुचि करो। जिह्वा इन्द्रियके स्वादकी आसक्ति स्पर्शनेन्द्रियभोगकी ओर प्रेरणा देती है इसलिए सर्वप्रथम जिह्वाइन्द्रिय पर विजय प्राप्त करो।

मोहपर विजय प्राप्त करो। मोहविजय तो सर्वप्रथम करनेकी बात है, किन्तु साधारणजनोकी दृष्टि रख-कर कहा जा रहा है। किसी भी परद्रव्यको अपना मत मानो। मोहको दूर करनेका उपाय क्या है ? मोहरहित शुद्ध आपका जो स्वभाव है उसका ध्यान करो। इसीसे मोह पर विजय हो सकती है। दूसरा काम है निर्मोह शुद्ध आत्म-स्वभावका ध्यान करो और मोह पर विजय प्राप्त करो। तीसरी बात है ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करो मन, वचन काय

का कृनकारित अनुमोदन, ब्रह्मचय ब्रतका पालन करना मुमुक्षजनोका कार्य है। ब्रह्मचय ब्रत कैसा है कि जिसके प्रताप से वीतराग सहज समता रूप सुखरसका अनुभव होता है और अब्रह्मभाव इससे विपरीत है। इसलिए अब्रह्मभावको त्यागकर ब्रह्मभावका पालन करें यह मुमुक्षुजनोका तीसरा कदम है। फिर चौथी बात मनके सकल्प विकल्प जगजालो पर विजय प्राप्त करना। ये मनके जो सकल्प हैं ये ही वीतराग समाधिका घात करते है। जीवका घात करने वाले सकल्प विकल्प ही होते हैं। यदि ये न हो तो जीव तो आनन्दमय है। उसे किसी प्रकारका क्लेश नही है। सो इन सकल्प विकल्पोपर भी विजय प्राप्त करो। हे प्रभाकरभट्ट! सवप्रयत्न करके एक इस शुद्ध आत्माका अनुभव करो।

श्री मूलाचारजी मे कहा है कि इन्द्रियोमे सवसे प्रवल इन्द्रिय रसना इन्द्रिय है। रसना इन्द्रियपर विजय प्राप्त करना कठिन है। और ८ कर्मोमे सवसे विकट कम मोहनीयकर्म है, मोहनीयकर्मके कारण श्रद्धान विगडता है, चारित्र विगडता है। श्रद्धान और चारित्र विगडा तो जीवका सव विगडा। ज्ञान और दशन विगडता नही है किन्तु कम ज्यादा हुआ करता है। पर श्रद्धान् और चारित्र विगडा तो ससारमे रुलना ही पडेगा। जिसकी श्रद्धा विपरीत हो गयी, देव, शास्त्र, गुरुको छोडकर कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुमे मन लग गया। राग, द्वेषोकी परम्परा लग गयी तो फिर मोक्षमाग कैसे मिलेगा? इस कारण सवसे प्रबलकम मोहनीय कर्म है। मोहनीय ही तो इस जीवको ससारमे रोके हुए हैं और ब्रतोमे सवसे कठिन ब्रत ब्रह्मचय। और गुप्तियोमे सवसे कठिन है मनोगुप्ति।

भैया! किसीसे कहो कि एक आसनसे निश्चल वैठ जावो तो वह शरीरसे निश्चल बैठ जायगा और कहा जाय कि वचन भी न वोलो, वोलते बोलते भी वद कर देगा। अव कहो कि मनसे कुछ न विचारो, मनकी चचलता न करो तो यह वात कठिन है। मन तो सर्वत्र दौड लगाता ही रहता है। शरीरको मूर्तिकी तरह निश्चल करने पर भी, वचनोका काय वद करने पर भी मनका वद नही किया जा सकता है। तो सव कठिन काम है मनको वसमे करना। यदि इन चारो पर विजय नही होती है तो साधु होना वडा कठिन है।

यहा जैसे कहते हैं ना कि सव व्यसनोका मूल जुवा है जुवा खेलनेके आगे सव व्यसन लघु वाते है। इसी तरह सव पापोका मूल एक रसनाइन्द्रिय है। रसनामे स्वादकी आसक्ति होती है कुछ मौज मानना चाहते हैं, आराम से रहना चाहते हैं तव अनेक प्रकारके पापोके विकार इनमे आने लगते हैं। इन इन्द्रियोमे गडवडी करने वाला मूल रसनाइन्द्रिय है। इस लिए रसनाइन्द्रियोको अवश्य ही सवप्रथम वसमे करो। इस कारण साधु लोग कभी रसका त्यागकर देते हैं, कभी आहारका त्याग करते हैं, कभी मन, वचन, कायपर सयम वनाते चलते हैं। सव विगाड करने वाली मूल जड यह एक रसनाइन्द्रिय है।

कम ८ होते हैं। ज्ञानावरणका काम तो ज्ञान रोकनेका है, दशनावरणका काम है दशनको रोकनेका। रोके रहते हैं पर विगाड नही करते और वेदनीयका काम सुख दुखका अनुभव करना है किन्तु वेदनीय स्वय अपने अपने कारण सुख दुखका अनुभव नही करता है किन्तु मोह साथमे लगा हो तो सुख और दुखका अनुभव होता है। मोह साथ न हो तो धनका सुख नही मान सकते। और कैसी ही विपत्ति हो पर मोह न हो तो दुख नही मान सकते तो वेदनीयमे सुख दुख देनेकी प्रपलता मोहनीय कमसे है।

आयुका काम जीवको शरीरमे रोकनेका है। जीव शरीरमे रुका रहे तो वुरा नही है, चला जाय तो वुरा नही है। पर शरीरमे मोह हो तो अज्ञानकी वात है। नामकर्मका काम है शरीरकी रचना करना ऐकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पचेन्द्रिय नाना प्रकारके जो जीव है इनके शरीरकी रचनाका कारण नामकर्म है। सो नामकम भी वास्तवमे दुखी करने वाला नही है पर इसके साथ मोहनीय कर्म लगा हो तो शरीर भी दुखोका कारण वन जाता है। अव देखो गोत्रकर्म। गोत्रकर्मका यही फल है कि कोई उच्च कुलमे पैदा हो जाय और कोई नीच कुलमे पैदा हो जाय। नीच कुल और उच्च कुलमे पैदा होनेसे आत्मा दुखी नही होता है किन्तु मोहवश जब

ये नीचकी कल्पना कर लेते हैं तो दुःखी होते हैं और उच्चपनेकी कल्पना कर लेते हैं तो अपनेमें मौज मानने लगते हैं। तो गोत्रकर्म भी इन जीवोंका दुःखका कारण नहीं है पर उसके साथ जो मोह लगा हुआ है वह दुःखका कारण है। इसी तरह आठवां कर्म है अन्तराय, उसका परिणाम देखिये, अन्तरायका परिणाम यह है कि दान देना चाहते हैं पर दानका भाव बिगड़ जाता है। या शक्ति नहीं है या विघ्न हो जाता है लाभकी बात आती है तो ऐसी खुदकी चेष्टा बन जाती है कि वह लाभ खतम हो जाता है। इसी तरह भोगकी बात मिलती हो तो वहां भी विघ्न आ जाय। शरीरमें आत्मामें शक्तिका विकाश नहीं हो पाता यह भी अन्तरायका फल है।

कैसी भी स्थिति हो, यदि मोह साथ है तो दुःख होगा और मोह साथ नहीं है तो दुःख नहीं है। इसलिए दुःखोंका कारण तो मोहनीय कर्म है। इसीसे ८ कर्मोंमें सबसे प्रधान मोहनीय कर्म माना गया है। देखो भैया! बड़े बड़े तप कर डालते हैं बहुमिसत, पर मनमें रंच भी विकार न आये यह बात बहुत कठिन है और जो विकारोंका जीत लेता है, अपने ब्रह्मचर्य व्रतको निर्बाध पाल लेता है वह सब व्रतोंका अधिकारी हो जाता है। बाह्यमें तो त्याग है ही, अब मनकी बात है। जितना बुरा दोष जो कुछ लगता है वह मनसे लगता है। किसीका मनसे कोई बुरा चिंतन कर ले चाहे वह शरीरसे, वचनेसे वैसा बुरा न कर सके लेकिन मनमें दूसरोंका बुरा सोचनेसे सोचने वालेका बुरा हो जाता है। सो प्रत्येक उपायसे अपने मनको सयत रखना साधु पुरुषका कार्य है।

यह परमात्मतत्व वेद शास्त्र इन्द्रियादिकका विषय नहीं है अर्थात् यह परमात्मस्वरूप न तो वेदसे जाना जाता है न शास्त्रोंसे जाना जाता है, न इन्द्रियादिक परद्रव्योंसे जाना जाता है किन्तु यह खुदके ज्ञानबलसे जाना जाता है। इस अपने आपमें बसे हुए परमात्मस्वरूपका जब पता पड़े तब रागद्वेष कम होते ही हैं। चिन्ता तो कहीं लगा रखी हो और परमात्माका भाव हो जानकी आशा करें तो कैसे हो सकता है? धर्म तो करते हैं पर थोड़ा-थोड़ा मनको डुलाकर करते हैं। यदि कुछ क्षण भी मनकी पूरी सम्हाल कर सके रागद्वेषोंको तजकर केवल अपने सत्य प्रभुका आग्रह करके रह जावो तो परमात्माके दर्शन होंगे।

भैया! किन्हीं बाह्यपदार्थोंसे इस आत्माका मेल नहीं है। जिसकी चिन्ता करते हो उससे कुछ लाभ तो नहीं मिलता है। चाहे वह भाई हो, चाहे बहिन हो, चाहे माता हो, चाहे पिता हो, किसी भी अन्य पुरुषसे अपनेको लाभ नहीं मिलेगा क्योंकि वे खुद अपने स्वार्थ और विषयोंमें फसे हुए हैं। कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यको अपना परिणमन नहीं देता है। कोई भी जीव मेरा सुधार नहीं कर सकता? और न बिगाड़ कर सकता, फिर हम दूसरेकी चिन्ता क्या करें? किस दूसरे पदार्थका चिन्तन किया जाय? किसी भी जीवसे अपनेको सिद्धि कुछ नहीं होती है। अपने ही ज्ञानसे अपनेमें देखा गया जो अपना प्रभुस्वरूप है उस प्रभुके स्वरूपका शरण लिए बिना किसी जीवका उद्धार नहीं हो सकता है। अब इस ही परमात्माके स्वरूपका प्रतिपादन करते हैं।

वेयहिं सत्थहिं इंदयहिं जो जिय मुणहुण जाइ।
णिम्मल झाणहं जो विसउ सो परम्प अणाइ ॥२३॥

यह मेरा परमात्मा अनादिकालसे है अर्थात् जबसे मैं हूं तबसे ही यह मेरा भगवान है। मेरा भगवान् याने मेरा चैतन्यस्वरूप वेदोंसे जाननेमें नहीं आता, शास्त्रोंसे जाननेमें नहीं आता, इन इन्द्रियोंसे भी जाननेमें नहीं आता। यह तो निर्मल ध्यानका विषयभूत है। रागद्वेष रहित निर्मल ध्यान बन जाय तो परमात्माका अनुभव हो सकता है। उस परमात्माके अनुभवमें केवल ज्ञान ही ज्ञानका प्रकाश दीखता है। वहां कोई परपदार्थ न इष्ट दीखता, न अनिष्ट दीखता बल्कि अपने उपयोगमें कोई पदार्थ विशेषताका अनुभव कराता हुआ आता ही नहीं है रागद्वेष-रहित समतारसका पूर्ण ध्यान बन जाय तो वहां परमात्माका ज्ञान होता है। यह परमात्मा एक ध्यानका ही विषय है। कैसा ध्यान बने? उत्कृष्ट, नित्य आनन्दका स्वाद लेता हुआ ध्यान बने, जिसमें शुद्ध आनन्दका अनुभव हो रहा

है ऐसे ध्यानका विषय ही यह परमात्मा है। वह शुद्ध आनन्द कैसे प्रकट होता है ? अपने शुद्ध आत्माका सम्वेदन हो अर्थात् रागद्वेषोको छोडकर केवल शुद्ध ज्ञाता दृष्टा रहनेकी स्थितिका अनुभव हो तो उससे आनन्द प्रकट होता है।

इस आत्मामे किसी प्रकारका आस्रव नही लगा हुआ है। आस्रव ५ प्रकारके होते हैं। जैसेकि सूत्र जीने कहा है। मिथ्यात्वविरतिप्रमादकषाययोगाबन्धहेतव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इनसे कर्म आते हैं बधते हैं। मिथ्यात्वका अर्थ है मिथ्या परिणाम होना। अपनेसे भिन्न वस्तुवोको अपना स्वरूप मानना सो मिथ्यात्व है। परवस्तुवोसे अपना हित समझना मिथ्यात्व है। परवस्तुवोमे अपनी रुचि उत्पन्न होना मिथ्यात्व है सो सबका मूल आस्रवमिथ्यात्व है।

अविरति कोई प्रकारका व्रत न हो, न हिंसाका त्याग हो, न झूठका त्याग हो, न चोरीका त्याग हो, न कुशीलका त्याग हो, न परिग्रहका त्याग हो। ५ प्रकारके पापोमे लगना उनसे विरक्त न होना सो अविरति नामका आस्रव है। ऐसी तीव्र कषाय होना है, जिन तिव्र कषायोके वेगमे यह जीव ससारकी ओर ही झुका रहता है, मुक्ति-मार्गके द्वारसे दूर रहता है, ऐसा जो भाव है उसका नाम प्रमाद है, और फिर चौथा आस्रव है कषाय। क्रोध, मान, माया, लोभ हो उससे कर्म आते हैं। जिसे कर्म न चाहिए उसे कषायके भावोका त्याग करना चाहिए। सो चौथा आस्रव है कषायभाव और ५ वा आस्रव है योग। मनका चन्चल होना, कषायकी चेष्टा करना वचनोकी प्रकृति होना सो योग है। जब मन, वचन, कायका योग होता है तो कर्मोका आस्रव होता है।

इन ५ प्रकारके आस्रवोसे रहित निर्मल जो शुद्ध आत्मा है उसका सम्वेदन होनेसे एक नित्य अविनाशी आनन्द प्राप्त होता है। उस आनन्दरूप अमृत स्वादसे छका हुआ जो ज्ञानपरिणमन है उसमे ही परमात्माका स्वरूप जाना जाता है। कष्ट सह रहे हैं, चिन्तन कर रहे हैं, विकल्प मचा रहे है, केवल आकुलताए बसी हैं और चाहे कि परमात्माका दर्शन न हो तो परमात्माका दर्शन नही हो सकता। जब शुद्ध हृदय हो, ज्ञानसे परिपूर्ण हो किसी वस्तुमे मोह न हो, अपने शुद्ध ज्ञानका प्रकाश अनुभवमे आता हो तो ऐसी स्थितिमे परमात्माका दर्शन होता है। यह पर-मात्मा अपने आपमे अनादि कालसे है, अपने ही घटमे विराजमान है। ज्हा शुद्ध चैतन्यस्वरूपको देखा गया कि परमात्माके स्वरूपका अनुभव हो जाया करता है। इसलिए हे प्रभाकर भट्ट ! तुम अपने आपके स्वरूपका ध्यान करके परमात्माको जानो।

लोकमे जितने भी जीव हैं वे तीन प्रकारोमे से किसी न किसी प्रकारके हैं। (१) बहिरात्मा (२) अन्त-रात्मा (३) परमात्मा। बहिरात्मा तो उसे कहते है जिसकी बाहरमे आत्मीय दृष्टि है कि यह मैं हू, यह मेरा है, शरीर मैं हू, धन मेरा है ऐसी जिसकी दृष्टि है उसको बहिरात्मा कहते हैं और अपने अन्तरमे ज्ञानमात्र मैं हू ऐसी जिसकी दृष्टि है उसे अन्तरात्मा कहते हैं। और अन्तरात्मा बनाकर और ज्ञान तपस्या करके कर्मोका नाश कर देते हैं और केवलज्ञान केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तशक्ति जिसके प्रकट हो जाती है उसे परमात्मा कहते है। और तीन प्रकारके आत्मामे जो ध्रुव तत्व है चैतन्यस्वरूप है उसे कहते हैं कारणपरमात्मा। तो अब चार चीजें समझना चाहिए। कारणपरमात्मा, बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। कारणपरमात्मा तो सब जीवोमे मौजूद है, चाहे वह मिथ्या-दृष्टि हो, चाहे सम्यग्दृष्टि हो। सब आत्माओमे कारणपरमात्मा मौजूद है। कारणपरमात्माका अर्थ है आत्माका चैतन्यस्वभाव। जिसके चैतन्यस्वभाव पूर्णविकाशमे प्रकट हो गया है उसको कहते हैं परमात्मा। और जिसके चैतन्य-स्वभावकी पहिचान तो हो गई है पर पूर्णविकसित नही हुआ है उसको कहते हैं ज्ञानीजीव अन्तरात्मा और जिसे चैतन्यस्वभावकी खबर नही है बाहर-बाहर डोल रहा है उसको कहते हैं बहिरात्मा। और जीवोका जो स्वभाव है चैतन्यभाव है उसको कहते हैं कारण परमात्मा।

भैया ! इन जीवोने सबका तो ज्ञान किया, सबका लाभ लिया पर अपने आपमे विराजमान जो कारण परमात्मा है उसकी पहिचान नही की याने स्वभावकी पहिचान नही थी वह कितना ही वेदमे पडित बन जाय उस

की पडिताई व्यर्थ है, शास्त्रमे पडित बन जाय उसकी पडिताई व्यर्थ है और कितना ही बडा तप करले तो भी वह तप करना व्यर्थ है, अपने आपको भीतर जो एक ज्ञानस्वभाव मौजूद है, जिसका काम केवल जानन है उस ज्ञानस्वभावको न जान सके तो धर्मके नाम पर कितना ही कुछ उत्सव मनावो पर वह व्यर्थ। भैया! कुछ मोह ऐसा पडा हुआ है कि धर्मके नाम पर भी और और बातोमे बहुत खर्च कर डालते हैं और स्वयको ज्ञान मिले, शांति मिले ऐसा उपाय नही करते हैं।

जैसे मान लो विधान ही किया तो विधानमे ५ हजार दस हजारका खर्चा किया। इतनेमे ही एक विद्वान अच्छा सा रख लेते तो ज्ञान मिलता। यदि कुछ ज्ञान मिलता तो उससे लाभ था। भक्ति तो करो, किन्तु ज्ञानका अनादर मत करो। वैसे यह भी भक्तिका काम है मगर ज्ञानका काम भक्तिके कामसे बडा है क्योकि ज्ञानरहित भक्तिमे अपना श्रम अपना धन खर्च करनेके बाद भी कुछ साथमें न रहा, पर ज्ञानसाधनासे गाठमे कुछ रहा, जिसके उपयोगसे वह किसी भी समय सुखी हो सकता है। इसने अपने आपके अन्तरमें बसे हुए कारणपरमात्माका परिचय नहीं किया तो वेद शास्त्र तप ये सब क्लेश ही रूप हैं। इनसे व्यग्रता ही बढती है इसलिए सब उपाय करके एक अपने आपके ज्ञानस्वभावका परिचय कर लो।

भैया! अपने आपमे बसे हुए प्रभुके दर्शनके लिए एक सरल काम हैं। करते बने तो आज करके देख लो। उसमे बहुत पढने लिखनेकी भी आवश्यकता नही है। जो पुरुष यह समझते हैं कि धन वैभव मेरा कुछ नही है, ये न्यारी चीजें हैं। इनको छोडकर जाना पडेगा। यह शरीर भी मेरा कुछ नही है। इसको भी छोडकर जाना होगा। ससारमे जितने भी दृश्यमान पदार्थ हैं वे सब असार है, विनाशीक हैं, इसमे आत्माका हित नही है। इतनी बात जिसने समझ लिया हो, कैसी भी स्थिति हो, हठ करके बैठ जावो कि मुझे तो अपन ज्ञानमें किसी दूसरे पदार्थको सोचना ही नही है। किसी पदार्थका हमे ख्याल नही करना है। अगर स्त्री ख्यालमे आ गयी, हट जावो, तुम मेरी बर्बादीके ही कारण हो। धन वैभवका ख्याल आ गया, हठ जावो, मैं तुम्हारा ख्याल नही करता क्योकि तुमसे मेरा पूरा नही पडेगा। ऐसे सब पदार्थोंका ख्याल छोडकर हट जावो, तब हटते-हटते किसी समय ऐसा विश्राम अपने आत्माके छूनेसे मिलेगा कि खुद जान जावोगे कि यह प्रभुका स्वरूप है, यह है कारणपरमात्मा।

वह कारण परमात्मा सबके अन्दर मौजूद है। जो दर्शन कर लेता है वह कर्मोंको नष्ट कर लेता है और जो अपने आपके परमात्मस्वभावको नही जान पाता वह कर्मोंका विनाश नही कर पाता है। इसलिए ये चार चीजें जाननेकी हैं। वेदान्तने भी चार चीजें कही हैं। जिसमे यह कहा कि ब्रह्मके चार पाद हैं। एक तो जागृत दशा, दूसरी सुप्तदशा, तीसरी अन्तःप्रज्ञ दशा और चौथीका नाम नही कहा। चौथीको तुरीयपाद कहते हैं। जागृत दशा उसको कहते हैं कि जहा व्यवहार है, व्यवहारमे लग रहे हैं। सुप्तदशा उसे कहते हैं जहा व्यवहार सोया हुआ हो अर्थात् ज्ञानदृष्टि है। अतःप्रज्ञ दशा उसे कहते हैं कि जहा परमात्माकी दशा बन गयी है। चौथा है तुरीयपाद, जो सबमे बसा हुआ है।

ज्ञानी समझता है कि आत्माके जाननेसे क्लेश नही आते है, आत्माका स्वभाव ज्ञान है, आनन्द है। ज्ञान और आनन्दमात्रके अनुभव द्वारसे आत्माका परिचय होनेसे कर्म दूर होते हैं। धर्मका पालन सही रूपमे तब बनता है जब मोह रच भी न हो। अगर मोह है तो धर्म रच भी नही होता। कही ऐसा नही होता कि हाथ जोडने से कर्म डर जाते हो और वे भाग जाते हो। किसीने पैदल चलकर हजारो मीलकी यात्रा कर ली है और अपने ज्ञानप्रकाशका अवलोकन नही किया है तो इससे कर्मोंका क्षय नही होता है। जिसने अपने आपको समझ लिया कि मैं ज्ञानमात्र हू। इससे आगे मेरा कही कुछ नही है ज्ञानप्रकाशको ही मैं करने वाला हू और ज्ञानप्रकाशको ही मैं भोगने वाला हू। इस ज्ञानप्रकाशके अतिरिक्त न मेरे कुछ आधीन हैं और न मैं कुछ किसीमे करता हू। ऐसा जिसका विश्वास है

उसके कर्मोंकी बात नही आती है। तो इस गाथामे प्रयोजनभूत बात यह बताई है कि अपना जो निजी शुद्ध आत्मा है वह ही उपादेय है और बाकी सब हेय चीजें हैं।

यह आत्मा वेदका विषय नही है किन्तु समाधिका विषय है। परमात्माकी भेट आखोसे न होगी, किसी प्रकृत्तिसे न होगी किन्तु जब उपाय अभी कहा था कि सब परवस्तुवोको हटाओ। हटाते हटाते अपने आप आत्मामे समाधिका परिणाम पैदा होगा और वह विश्रामका परिणाम एक सेकेन्डको भी होगा, मगर उतने समयमें जो आनन्द मिलेगा उसमें इतनी शक्ति है कि अनगिनते भवोके बाधे हुए कर्म खिर जाते हैं, कम कष्टोसे नही खिरते। कोई कहे कि पर्वत पर गर्मीके दिनोमे तपस्या करनेसे कर्म खिरें सो नही, किन्तु तपस्यामें लगे हुए भीतर ही भीतर ज्ञानस्वभाव में प्रवेश हो रहा हो, उससे जो आनन्द आ रहा है उस आनन्दसे ही कर्मोका क्षय होगा। ऊपरी कितने ही क्लेश हो उनसे कर्म नही हटते। अब जो परमात्मा वेदका, शास्त्रका, इन्द्रियोका विषय नही है किन्तु समाधिका विषय है, समता परिणाम, का स्वरूपके अनुभवका विषय है उस परमात्माके स्वरूपको व्यक्त करते हैं।

केवल दसणणाणमउ केवल सुक्खसहाउ।
केवल वीरिउ सो मुणहि जो जि परावरु भाउ ॥२४॥

जो केवल है, असहाय है, खालिस है याने जिसके साथ उपाधि नही लगी है, शरीर आदिका सम्बन्ध नही है ऐसा जो ज्ञानदर्शन करि रचा गया परमात्मा है वह इस कारणपरमात्माका व्यक्तस्वरूप है। जैसे पत्थरकी मूर्ति पत्थरसे ही निकलती है, बाहरसे नही निकलती है। इसी तरह हम आपका परमात्मतत्व हम आपसे ही निकलेगा कोई बाहरकी चीजसे नही होगा। यह आत्मा जब मोह करता है तो उसका नाम मोही है यही आत्मा जब ज्ञानमे लगता है तो उसका नाम ज्ञानी है, यही आत्मा जब राग द्वेषोसे छूट जाता है तो उसका नाम वीतराग है। यही आत्मा जब पूर्ण विकाश पा लेता है तो उसका नाम परमात्मा है।

भैया! अपनी शक्तिका विश्वास हो जाय तो सबसे बडा प्रथम पुरुपार्थ यही है। धन वैभव किसीको कम मिलता है, किसीको ज्यादा मिलता है तो इससे किस बातका अन्तर है? जिसका पुण्य अधिक है उसे धन वैभव ज्यादा मिलता है और जिसका पुण्य कम है उसे धन वैभव कम मिलता है. जिसकी धर्ममे रुचिके साथ साथ शुभराग था, उसे बडा पुण्य मिलता है, छोटा मोटा पुण्य तो भूखोको रोटी दे देने आदिसे मिलता है। बहुत बडा पुण्य धर्म साधनोके बिना नही मिलता है। धर्म माने आत्माका स्वभाव मेरे आत्माका स्वभाव सब परवस्तुवोसे निराला केवल प्रतिभास स्वरूप है। ऐसी दृष्टि जगे बिना धर्म नही होता है। धर्मदर्शी ज्ञानी पुरुषके ही सातिशय पुण्य होता है। सातिशय पुण्य चक्रवर्ती और तीर्थंकर इत्यादिके फलित होता है थोडा बहुत पुण्य तो मात्र पुण्यकार्योंसे हो जाता है।

भैया मोक्षमार्गमे लग सके ऐसी शक्ति तो धर्ममे ही है। लौकिक सुख तो पुण्यके प्रतापसे होते है किन्तु अलौकिक सुख धर्मके प्रतापसे प्राप्त होता है। यहा अरहत और सिद्ध भगवान्का स्वरूप बतला रहे है। हम जिनकी पूजा करते हैं उनको ही न जानें तो वह हमारी भक्ति क्या कहलायेगी? जिसकी हम पूजा करते उस प्रभुका स्वरूप कैसा है? यह जानना प्रथम आवश्यक है। जिसकी पूजा रोज करते हो उसका स्वरूप नही जाना तो उससे तो यह अच्छा है कि दो महीने तक चाहे पूजा करनेका अवसर न रहो, मगर भगवान् क्या है? उसका क्या स्वरूप है यह जाननेमे ही समय लगा दो। यदि प्रभुकी पूजा करते है और प्रभुके स्वरूपको न समझा और पूजाका अर्थ न समझा तो उस पूजासे क्या लाभ? पहिले प्रभुका स्वरूप समझो, फिर प्रभुकी पूजा कर लो, भक्ति करलो, प्रभुका स्वरूप जाने बिना प्रभुकी पूजा कैसी?

आत्मामे चार गुण हैं—(१) ज्ञान (२) दर्शन (३) आनन्द (४) सुख ये सब जीवोके अन्दर पाये जाते हैं। किसीके ज्ञान कम है किसीके ज्यादा है, किसीको अच्छा है किसीको अच्छा नही है, किसीको सुख थोडा है किसीको

बहुत है, किसीकी शक्ति कम है, किसीकी ज्यादा है मगर सबमे ये चार चीजे मौजूद हैं। जैसे ये पुद्गल है तो इनमे रूप, रस, गध, स्पर्श ये चारो चीजें जरूर हैं। चाहे किसी पुद्गलमे रूप न मालूम पडे और रस वगैरह ही मालूम ही मालूम हो, किसीमें कुछ न मालूम पडे मगर हैं सबमे ये चारो चीजे। जैसे हवा है तो वह भी एक पुद्गल है। हवाका रूप किसीने नही जाना, हवा तो केवल स्पर्शसे ही मालूम पडती है मगर उसमे भी ये चारो चीजें हैं। हवा मे तो केवल स्पर्श मालूम पडा, इसमे तीन चीजें नही मालूम पडी, फिर भी इसमे चारों चीजें हैं। और जैसे आग है। क्या किसीने आगके रसको मालूम किया कि आग मीठी है या खट्टी है। मगर उसमे भी रूप है तो रस जरूर है। तो पुद्गलमे चार गुण नियमसे हुआ करते हैं।

इसी प्रकार आत्मामे ज्ञान, दर्शन, आनन्द और शक्ति ये चार गुण जरूर हुआ करते हैं। भगवान्के ये चार गुण पूरे विकसित होते हैं। जिसके ये पूरे प्रकट होते हैं उसको परमात्मा कहते हैं। भगवान्का ज्ञान पूर्ण प्रकट है जिस ज्ञानके द्वारा तीन लोक तीनकालके सब पदार्थ ज्ञात होते हैं। कुछ कुछ ज्ञान तो हम आपमें है मगर भगवान्को पूर्ण ज्ञान है और शुद्धज्ञान है और हमारा अपूर्ण ज्ञान है और अशुद्ध ज्ञान है। हम ऐसा जाना करते हैं, यह घर मेरा है, यह वैभव मेरा है, ये भाई मेरे हैं? यह हमारा अशुद्ध ज्ञान है। भगवान् शुद्ध जाना करते हैं, भगवान् तो जैसा है तैसा जाना करते हैं। वह नही जाना करता कि यह इनका मेरा घर है, यह उनका घर है। भगवान् तीन लोक तीन कालके सब पदार्थोंको जानता है और शुद्ध जानता है।

भगवान् निश्चयत ज्ञेयाकार परिणत निज आत्माको जानता है। ऐसे ज्ञाता निज आत्माको देख लेता है यह उनका अनन्त दर्शन है और सुख कितना है? तीन लोकके जितने जीव हैं, जितने देव हैं, जितने इन्द्र है, जितने धनी हैं, जितने राजामहाराजा आदि हैं उन सबको मिला करके उनका जितना सुख है उससे भी अनन्तगुणा सुख उस प्रभुको है। और अनन्तगुणेकी बात क्या उनका सुख तो इन सुखोसे विलक्षण अलौकिक सुख है। यह प्रभु निरतर अनन्तानन्द स्वभावको बतता रहता है। यह सब प्रताप है मोह रागद्वेष हटनेका। मोह रागद्वेषोपर विजय किया, यह तो उनकी उत्कृष्ट स्थिति है इसके ही परिणाममें भगवान् अनन्त सुखी हैं।

प्रभुमे अनतचतुष्टयमे चौथा गुण है अनन्तल, जिसके यह अनन्त चतुष्टय प्रकट होता है उस आत्माको तुम परमात्मा समझो। जो परमात्मा कैसा है कि परात्पर है याने गुरु तो हुए अरहत परमेष्ठी और उससे उत्कृष्ट हैं सिद्ध भगवान् और उन परात्परोमे भी परव्यक्त सहजसिद्ध कारणपरमात्मा है। अरहत भगवान्के ये चार गुण प्रकट हो गये। यद्यपि अरहत देवके शरीर है पर औदारिक है, स्फटिक मणिके समान व, पर शरीर सुख दु खकी अनुभूतियोंका निमित्त भी नही है। सिद्ध भगवान्के शरीर नही रहा चार आघातिया कर्म भी नही रहे। ये भगवान् शरीरादिसे अत्यन्त जुदे हैं केवल आत्मा ही आत्मा रह गये। वे सिद्ध भगवान् हैं।

परमात्मामें अरहत भी आगए और सिद्ध भी आगए और अन्तरात्मामें चौथे गुणस्थानसे लेकर १२वें गुणस्थान तकके ज्ञानी जीव आ गए और वहिरात्मामे तीन गुणस्थान आते हैं उनमे भी पहिले मिथ्यात्व गुणस्थानके जीव तो पूर्णबहिरात्मा हैं और दूसरे तीसरे गुणस्थान वाले जीव तारतम्यरूपसे वहिरात्मा है। इन सभी जीवोमे जो शुद्ध आत्मपदार्थ वह है कारणपरमात्मा। स्वभावदृष्टिसे वह आत्मस्वभाव देखा जाय तो वह हममे भी है, ज्ञानीमें भी है। भगवानमे भी है। वह है कारणपरमात्मा सहजसिद्ध आत्मा। उस परमात्माका ग्रहण हो तो कर्मोका क्षय होगा औरधर्मका काम भी होगा। परमात्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दसे सम्पन्न है, जिसको न वेदोंसे; न शास्त्रोंसे, न इन्द्रियोसे जाना जा सकता है किन्तु केवल अपने निर्विकल्प समता परिणाम वाले ज्ञानसे ही जान सकते हैं। ऐसा परमात्मा रहता कहा है? इस प्रश्नका उत्तर इस दोहामें दे रहे हैं—

एयहिं जुत्तउ लक्खणहिं जो परु णिक्कलु देउ।
सो तहिं णिवसइ परमपइ जो तह लोयह झेउ ॥२५॥

परमात्मा त्रिभुवन वंदित है ? तीन लोकके जितने जीव हैं वे सब प मात्माकी वदना करलें यह बात तो असम्भव है ना ? असज्ञी जीवोमे तो वदना करनेकी योग्यता ही नही है। इन सज्ञी जीवोमे कितने मनुष्य हैं ? कितनेके धर्मबुद्धि है ? जिसके धर्मबुद्धि नही है वे तो वदना करनेके भाव ही क्या करेंगे ? कितने मनुष्य बच जाते हैं, कितने नारकी बच गये, कितने देव बच गए। थोडेसे मनुष्य, थोडेसे इन्द्रादि जीव और थोडेमे मुख्य जीव ये ही वदना कर पाते हैं। केवली भगवान्को कहते हैं। इनकी तीन लोक वदना करते है। तीन लोकके कितने जीव हैं वे सब भगवान्के चरणोमे नमस्कार करते है। यह कैसे ठीक हो ? इसका उत्तर सुनिये।

गतिया चार हैं, अथवा तीन लोक हैं (१) ऊर्ध्वलोक (२) मध्यलोक और (३) पाताल लोक। ऊर्ध्वलोक मध्यलोक व पाताल लोकका इन्द्र जब भगवान्के चरणोमे झुक गया तो इसका अर्थ यह है कि तीन तीन लोकके सब प्राणी झुक गये और उन इन्द्रियोके अतिरिक्त अन्य अन्य भी धर्मप्रेमी आत्माए हैं जो परमात्माके चरणोमे नमस्कार करते हैं। जो त्रिभुवनवदित है, अनन्तचतुष्टयके स्वामी हैं, जो जो निर्विकल्प समाधिमे ही जाना जा सकता है ऐसा निश्चल निरजन परमात्मदेव रहता कहा है ? इस बातको इस दोहेमे कहा जा रहा है।

वह परमात्मा उत्कृष्ट स्वभाव वाला है। आत्माका जो गुण है उस गुणका पूर्ण विकाश परमात्मदेवके हैं क्योकि गुणोके बाधक हैं रागादिक विकार और निमित्त दृष्टिमे हैं द्रव्य कम। साक्षात् बाधक तो है रागादिक विकार। जब रागादि विकारोकी पर्याये रहती हैं वहा गुणके पूर्णविकाशकी पर्याय नही चलती। इसलिए साक्षात् बाधक रागद्वेष विकार है। रागद्वेष विकार आत्मामे स्वरसत नही उत्पन्न होते हैं। आत्माकी परिणतिसे, किन्तु पर-उपाधिका सम्बन्ध पाकर होते है। इस कारण निमित्तरूपसे बाधक द्रव्यकर्म हैं। जिसके द्रव्यकर्म भी नही, ५ प्रकार का शरीर भी नही, रागादिक भावकर्म भी नही, छुटपुट ज्ञान भी नही, क्षयोपसमका भी अभाव हो गया ऐसा सिद्धदेव परमात्मदेव उत्कृष्ट स्वभाव वाला है।

परमात्मा कहा रहता है ? इसे निश्चयदृष्टिसे सोचो कि जीव जितने हैं वे सब परिणमते रहते है। सिद्ध भगवान भी निश्चयदृष्टिसे जैसा शुद्ध वह है वह अपने स्वरूपमे रहता है। जैसे कोई आपसे पूछे कि आप कहा रहते हैं साहब ? तो आप यह कहेंगे साहब अपने स्वरूपमे रहते हैं ? कोई पूछे कि आप कहासे आ रहे है ? कहा जावोगे ? तो कहोगे पता नही कहा जायेंगे ? जीवका स्वरूप अपने आपमे है और वह अपने स्वरूपमें ही निवास करता आया है। इतना ही तो अन्तर हुआ कि हम अशुद्धावस्थामे है और परमपदमे है। प्रभु उत्कृष्ट अवस्थामे है, लेकिन है तो अपने ही स्वरूपमे। मोक्ष कहा है ? आत्माकी जो सिद्ध अवस्था है वही मोक्ष है। प्रभु मोक्षमे रहता है, इसका अर्थ है कि परमात्मा अपने परिपूर्ण ज्ञानानन्द विकासमे वतता रहता है इसका ही नाम है मोक्षमे रहना।

अब सिद्धोका निवास व्यवहारदृष्टिसे देखो। जितने भी जीव कर्ममुक्त हुए है वे सब लोकके अग्रभागमे रहते हैं। क्योकि अजन मुक्त होने पर, जीवका स्वभाव ऊर्ध्वगमन है ना, इस कारण ऊपर चला जाता है लोकके बाहर आकाशके सिवाय किसी द्रव्यका अस्तित्व नही है। अत लोकके अग्रभागमे प्रभु ठहरते है। लोकाग्रभावमे भी कितनी जगह है लोकका अग्रभाग एक राजू लम्बा चौडा है, उसमे भी कितनी जगहमे मुक्तजीव रहते हैं तो सीधी बात है जो जिस जगहसे मुक्त हुआ है उसका सीधा लोकके अग्रभागमे निवास हो जाता है। अब यह देख लो कि मुक्ति कितनी जगहसे हुआ करती है ? फिर उसके सीधमे ऊपर सिद्धदेवका निवास समझलो। ढाई द्वीपके अन्दर ही मुक्ति होती है इसलिए ढाई द्वीपमे जितना विस्तार है उतना ही मोक्ष स्थान है।

वह परमात्मदेव निश्चयसे कहा रहता है ? अपने शुद्धज्ञानानन्दके परिपूर्ण विकासमे रहता है अपने स्वरूप में रहता है, और व्यवहारसे कहा रहता है ? तो ढाई द्वीपके विस्तार प्रमाण जो लोकका अग्रभाग हैं वहा रहता है। वहा रहना व्यवहारसे क्यो बताया कि शुद्ध जीव और है और स्थान और पदार्थ है। भिन्न-भिन्न पदार्थोका सम्बन्ध

करना, वर्णन करना, कुछ सम्बन्ध बताना वह सब व्यवहार कहलाता है। एक ही पदार्थमे से एक पदार्थको बताना सो तो निश्चयकी पद्धति है और भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें किसी भी प्रकारका सम्बन्ध बताना सो व्यवहारकी पद्धति है।

क्या मुक्तजीव लोकके अग्रभागमे नही रहते हैं ? रहते हैं, झूठ नही है किन्तु एक पदार्थके स्वरूपकी दृष्टि से बिगकर दो पदार्थोंके सम्बन्धमे कुछ दृष्टिकी जा रही है कि प्रभु किस जगह रहता है ? इसका जो उत्तर हुआ वह व्यवहारपद्धतिसे हुआ। और प्रभु कहा रहता है ? प्रभु अपने शुद्धस्वरूपमे रहता है। यह निश्चय पद्धतिका उत्तर हो गया। इस वर्णनसे हमे शिक्षा क्या मिलती है ? जितने भी वर्णन किए जाते हे उन वर्णनोमे आत्महितकी बात यदि मिलती है तब तो वह वर्णन शिक्षाकी बात हुई, हमारे हितका उपदेश हुआ। यदि परमात्माका वर्णन करके भी हम अपने आत्माके लिए लाभकी कोई बात न समझ पायें तो चाहे विज्ञानशालामे जाकर और चीजोंकी निगरानी करले, चाहे सिद्धस्वरूपकी करलें तो कोई लाभ नही हो पाता है। सिद्धस्वरूपके वर्णनसे कोई लाभ न उठा पाया। इसलिए सब वर्णनोमे यदि सम्यग्ज्ञानका सम्बध है तो उससे आत्महितका शिक्षा मिलती है ? यह शिक्षा मिलती है कि जिस कारणपरमात्माके ज्ञानसे ऐसा उत्कृष्ट विकास रूप परमानदमय कार्यपरमात्मत्व प्रकट होता है। उस कारण-परमात्माकी दृष्टि उपादेय है।

यह तो है प्रभुके स्वरूपकी बात। तीन लोकके द्वीप समुद्रका वर्णन करके भी आत्महितकी शिक्षा ग्रहण करो और जगतमे अनेक प्रकारके जीवोंकी अवगाहना देखकर आत्महितकी शिक्षा लो। अभी रास्तेमे जाते जाते भी यदि कोई पीडित सूकर मिल जाता है, कोई भाला वगैरहसे बेधा हुआ, काटा हुआ, खून निकल हुआ तो आपके मन मे दयाका भाव आता है वह दया सूकर पर नही की जा रही है किन्तु यह समझमे आया कि जैसा सूकरका अथवा इस जीवका स्वरूप है वैसा ही हमारा स्वरूप है। जैसे इसको वेदना दी जा रही है वैसे दी मुझे वेदना दी जा सकती है तो इस तुलनाका भाव आने पर आपके दया उत्पन्न होती है। कुछ सम्बध मिला ना ?

जीवकी आगममे अवगाहना बताई है। स्वयम्भूरमण समुद्रमें उत्पन्न हुए महामत्स्यको लो वह एक हजार योजन लम्बा, पाच सौ योजन चौडा और ढाइ सौ योजन मोटा है। तो इस वर्णनसे अपने हितके लिए क्या बात मालूम पडी कि अहो जिस कारण परमात्माके ज्ञानके बिना जीवके अन्य अन्य देहोंकी स्थिति हुआ करती है वह कारणपरमात्मा उपादेय है। उसका ज्ञान हो तो इन सब अवगाहना वाले देहोमे निवास करना छूट सकता है। इतनी बात वर्णनसे समझमे आसके, मनमें उतर सके तो वह वर्णन धर्मप्रद हो गया।

तीनो लोक कितने बडे हे। ३४३ घन राजूप्रमाण हैं। कैसी कैसी रचनाए हैं, सब ज्ञान कर लिया। इस ज्ञानसे कुछ शिक्षा भी मिली ? हा मिली। देखा निजस्वरूपके बोधके बिना जीवका ३४३ घन राजू प्रमाण लोकमे प्रत्येक प्रदेशो पर अनन्त बार जन्म हुआ है, मरण हुआ है। यदि अपनेमे शुद्ध सहजस्वरूपकी अनुभूति हो जाय तो यह जन्म मरणसे छूट सकता है। जो इतनी शिक्षा यदि उस वर्णनको सुनकर प्राप्त कर पाते हैं उनका जन्म सफल है। प्रभुस्वरूपका हम ध्यान करते हे, वर्णन करते हैं, चिंतन करते हैं उससे हमें यह शिक्षा लेना है कि जैसा परमात्माका स्वरूप है वैसा ही हम सब आत्मद्रव्योका भी स्वरूप है यह बात समझमे आये। मुक्त जीवोके सदृश द्रव्यत शुद्ध आत्मा है और वह उपादेय है। यह परमात्माके स्वरूपको जानकर हमे भाव ग्रहण करना चाहिए। जैसे बिल्कुल निर्मल जल और कीचडसे मिला हुआ गदा जलकी बात सोचें। हम आपसे कहे कि जरा निर्मल जलके स्वरूपको वर्णन करो और गदे जलके स्वभावका वर्णन करो तो आप निर्मल जल और जलके स्वभावका वर्णन एकसा करेंगे। गन्दे जलमे रहने वाले जलके स्वभावका वर्णन और स्वच्छ गिलासमे रखें स्वच्छ जलका वर्णन दोनोका एक समान वर्णन होगा।

हाँ, गदे जलकी पर्यायकी दशाका वर्णन भिन्न होगा मगर गदे जलके स्वभावका वर्णन और निर्मल जलके स्वभावका वर्णन एक सा होगा। इसी प्रकार ससारी जीवकी दशाका वर्णन भिन्न होगा और परमात्मस्वरूपका वर्णन

भिन्न होगा। पर परमा-माके स्वरूपका वर्णन और जीवके स्वभावका वर्णन एक समान होगा। उसमे रच भी अन्तर न आयगा क्योकि जो परमात्मा होता है वह शुद्ध आत्मस्वभावका विकास ही तो है। सो प्रभुके वर्णनके साथ-साथ अपनी शक्ति अपने स्वभावकी श्रद्धा भी जगती जाय, श्रद्धा वनी रहे तो ऐसी स्थितिमे कभी ऐसा अवसर आ सकता है कि प्रभु और भक्तका यह भेद भी मिट सकता है और भक्त भी शुद्ध चैतन्य प्रकाशमय रह जायगा।

जिस क्षण उपयोगका विषय त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यप्रकाश रह जाता है उस क्षण जो सहज आनन्द उत्पन्न होता है वही आत्मानुभवकी स्थिति है। और उस आनन्दके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होता है, इसी प्रकार तीन प्रकार की आत्मावोका कथन इन वर्णनोमे किया गया है, और सब वर्णनोमे यह बात बतायी गयी है कि मुक्तिको प्राप्त शुद्ध जोवके स्वरूपकी तरह द्रव्यत समस्त ससारी जीव हैं, यही समस्त जीवोका स्वभाव है। अब इसके बाद कुछ, दोहोमे यह बात बतावेंगे कि जैसा व्यक्तिरूप परमात्मा मुक्तिमे ठहरता है वैसा ही शुद्ध निश्चयसे शक्तिरूपसे यह आत्मा ठहरता है।

जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहि णिवसइ देउ।
तेहउ णिवसइ वभु परु देहहि म करि भेउ ॥२६॥

जितने भी मनुष्य हैं, प्राणी हैं वे सब दो बातोको लिए हुए रहते ही है। मैं क्या हू और मुझे क्या बनना है ? बच्चोमे भी ये दो बातें मिलेगी। मैं क्या हू और मुझे क्या बनना है ? मैं सेठका कुवर हू और मुझे करोडपति बनना है। कोई सोचता है कि मैं पडितका लडका हू और मुझे पडित बनना है। मैं क्या हू और क्या बनना है ये दो बातें सबके चित्तमे बैठी हुई हैं।

अभी रास्तेमे एक नवयुवक बोलता था कि साहब मेरा तो ऐसा दिल है कि गृहस्थीमे चित्त नही लगता है। मेरी तो ऐसी इच्छा है कि मैं समाजमे कोई ऐसा काम कर जाऊ कि मेरा नाम हो जाय। हालाकि शुद्ध भावसे कहा पर बेचारेको कहनेकी अध्यात्मपद्धति न मालुम थी। अध्यात्मपद्धतिके जानने वाले तो उसके वचनोकी निन्दा करेंगे। इसके अन्दर यो चाह है कि मेरा नाम हो जाय। उसका प्रयोजन विशुद्ध था कि गृहस्थीके झझटोमे नही रहना चाहता हू और समाजका कोई अच्छा कार्य करना चाहता हू।

भैया ! जैसे जैसे ज्ञानका विकास होता जाता है तैसे तैसे अपनी वृत्तियोकी गल्तिया मालूम होती जाती है। शुरूमे वहा मैं यों करु, भक्ति करु, ज्ञानी बनू, सब प्रकारसे अपने धर्मको करना समझते हे। कुछ और शुद्ध जानने पर यह काम करना है तो भी ध्यानमे यह रखना है कि जीवके जाननेका प्रयोजनभूत यथार्थज्ञान होना चाहिए। उस ज्ञानसे ही परमात्म विकास है और उससे ही स्वयकी सिद्धि है। सो अब ज्ञानको बढाओ ज्ञानके बढाने पर भी जाननकी आवश्यक क्रियायें रह जाती हैं सो फिर और ऊचे चलकर यह सोचना है कि जो जो यत्न मैं करता हू वह ज्ञानके लिए करता हू, धर्मके लिए करता हू, इसके अतिरिक्त जितनी भी चेष्टाए है वे सब अज्ञानकी चेष्टाए हैं। ज्ञानकी चेष्टा तो केवल शुद्ध ज्ञानका अवलोकन होता है। जहा मात्र जानन रहता है वह है ज्ञानकी स्थिति। ये तो सब मद कषायकी चेष्टाए हैं। कषाय तो ज्ञानका स्वरूप नही है। तो जैसे जैसे ज्ञान वृत्ति जगती जाती है तैसे तैसे अपने किए हुए यत्न अपनेको गलत मालूम देते जाते है। कब तक ये गलत मालूम होते रहेगे ? जब तक शुद्ध ज्ञानमे पूर्ण लीनता नही हो जाती है।

इस दोहेमे कह रहे हैं कि जैसा केवल ज्ञानानन्द व्यक्तरूप कार्यसमयसार है वैसा ही यह शक्तरूप कारण-समयसार है। कार्यपरमात्मा, कार्यसमयसार, अरहत सिद्ध ये सब एक ही अर्थको बताने वाले शब्द हैं। जो कार्य समयसार निर्मल है, भावकर्म द्रव्यकर्म नोकर्मसे रहित है, ज्ञानमय है, केवलज्ञानसे रचा हुआ है, सिद्धभगवान मुक्तिमे ठहरता है, परमआराध्य है ऐसा ही शुद्ध बुद्ध एकस्वभाव शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे यह आत्मा देहमे बसता है।

जैन शासनको पाकर आत्मलाभ कर लीजिये। इतनी बात सबके मनमे रहना चाहिए कि मेरा स्वरूप ज्ञानकर रचा हुआ है और इस ज्ञानमय मुझ आत्माका लोकमे परमाणुमात्र भी कुछ नही है। यह मैं आत्मस्वभावसे

आनन्द करके पूर्ण हू, यह बात श्रद्धामे रहे तो आपके धर्मके अर्थ किए हुऐ श्रमसे लाभ है, और अगर धर्म इस लिए किया जा रहा हो कि धर्ममें लगे रहे, घर बार अच्छा बनेगा, लडके खुश रहेगे, कुटुम्ब परिवार सब मौजमें रहेंगे, केवल इतनी बातोंके लिए धर्मका रूपक बना रहे तो उससे आत्माको लाभ नही मिलेगा ।

जिन जिन पदार्थोका आपको समागम मिला है उनमेसे कोई भी पदार्थ ऐसा बतलाओ जो आपके पास सदा रह सकता हो । जितने भी समागम मिले हैं उनमें नियमसे वियोग होगा । तो इन समागमोंमे चैन माननेका फल क्या होगा कि वियोगके समय आपको बहुत कष्ट होगा । जितना अपनी उमरभर मौज मानते हो उस मौजमें जितना जो कुछ मौज इकट्ठा कर लिया है उससे भी कई गुणा क्लेश आपको वियोगके समयमें होगा । तब विवेक क्या है कि इन समागमोके समयमे उन बातोमे हर्ष न मानो । बात मान लो अन्यथा तो क्लेशमय ससारकी अवस्था होगी ।

एक सेठ था । उसकी मृत्यु निकट आ गयी । तो नगरके ४ ६ आदमियोको बुलाकर कहा कि मेरी इस जायदादका ट्रस्टनामा लिख दो, मैं इस दो वर्षके बच्चेको छोडे जा रहा हू । ये चार पाच ट्रस्टी हैं जो जायदादकी रक्षा करेंगे । जब बच्चा बडा हो जाय तो सारी जायदाद इस बच्चेको सौंप देना । सेठ गुजर गया । कुछ दिनोके बादमे बच्चा सडक पर खेल रहा था । उस सडकसे एक ठग निकला । उस ठगको बच्चा बडा सुन्दर लगा । मनमे बडी प्रसन्नता हुई । वह ठग उस बच्चेको उठा ले गया क्योकि उसके भी कोई बच्चा न था । उसकी स्त्री ठगनीने उसे खूब पाला पोसा । अब १७ १८ सालका हो गया—वह तो यही समझ रहा है कि मेरा बाप तो यही है, मेरी मां यही है । मेरा वैभव तो यह खेती गाय भैंस ही है ।

अब वह एक दिन शहरमे निकला तो उसे एक ट्रस्टी सेठ मिल गया । सेठने पहिचान लिया व कहा—अरे बेटा, कहां जा रहे हो यह तुम्हारी १० लाखकी जायदाद पडी है अब तो इसे सम्भालो । हम लोग कहां तक सम्भालेंगे । तो उसने समझ लिया कि सेठ मुझे बहका रहा है, उसने उसकी बात अनसुनी करदी । अब दूसरे ट्रस्टी ने कहा, तीसरे ट्रस्टीने कहा कि बेटा लो अपनी यह १० लाखकी जायदाद अब तो सम्भालो, उसने फिर अनसुनी करदी । फिर चौथे ट्रस्टीने कहा, आखिर बालक तो वैश्यका था । सोचता है कि ये सब देनेको ही कह रहे हैं कुछ छुडा तो नही रहे हैं । कहा अच्छा ठहरो, १५-२० दिनमे जायदादको सम्भालेंगे ।

अब वह अपने घर जगलमे गया । अपनी ठगनी मासे पूछता है बडी नम्रतासे कि मां सच तो बतलावो कि मैं किसका बेटा हू ? ठगनीने कहा कि तू तो एक सेठका बेटा है, तू मुझे सुन्दर लगा इसलिए तुझे मैंने उठा मंगाया और तुझे पाला पोसा । उसको ज्ञान हो गया । सोचा ठीक कहते थे वे चारो । मैं फला सेठका लडका हू, अब मुझे १० लाखकी जायदाद मिलेगी । तो इतना जानने पर क्या वह अपनी माको मा नही कहेगा ? क्या वह कहेगा कि ऐ ठगनी ! तू मुझे पानी पिला ? क्या वह अपने खेत, गाय, बैलकी रक्षा न करेगा ? सारी बातें करेगा मगर दिल कहा लगा है ? दिल लगा है ? दिल लगा है अपने वैभवमें । फिर कुछ समयमें आसानीसे जाकर वह अपनी जायदाद सम्भाल लेता है ।

इसी तरह हम सबमे जीव बालक हैं । जब तक अज्ञान है तब तक बालक कहते हैं । इस बालकको जायदाद जो अनन्तज्ञान अनन्तसुखकी निधि है उसके ट्रस्टी हैं कुन्दकुन्दाचार्य, सुमन्तभद्रमहाराज आदि । इस निधिको हम आप सब भूल बैठे हैं । इसलिए कहते हैं कि यह मेरा घर है, यह मेरा धन वैभव है, यह मेरी मा है, यह मेरा पिता है । यही हम आप सब मान रहे हैं । यह हम आपको पता नही है कि यह मनुष्यभव बडी कठिनाईसे मिला है, इस मनुष्यभवमे तो अपने कल्याणकी बात सोच लेना चाहिए ।

हमारे ट्रस्टी एक आचार्य देवने बताया कि तुम्हारा सुख इन बाह्य चीजोमे नही है । तुम्हारा अनन्तवैभव है तुम ही मे गुप्त है, अनसुनी कर दिया । दो चार ट्रस्टीयोने समझाया तो कुछ ख्याल करता है कि ये मेरे हितके

लिए ही लिख गये हैं। कह -हे हैं, सो कुछ सोचा कि अच्छा मानूगा तुम्हारी बात। एकान्तमे बैठा और इन अनु-भूतियोसे बडी दयाकी दृष्टीसे पूछने लगा नम्रताके साथ पूछने लगा कि सच तो बतलावो कि मेरा सच्चा घर कौन है ? अनुभूतिने सरलतासे जवाब दे दिया कि तेरा घर तेरा शुद्ध स्वरूप है, इस तेरे स्वरूपमे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन की निधि है। अब उसे पू । ज्ञान हो गया क्योकि यह गृहस्थ तो समक्ष ही रहा था। ये ट्रस्टी लोग तो पुकार ही रहे थे, अब अनुभूतिने भी समर्थन कर दिया कि यह तेरा घर है, यह तेरी जायदाद है। बस उसे समग्ज्ञान हो गया।

सम्यग्ज्ञान होने पर क्या वह ज्ञानी पुरुष माको मा व पित को पिता नही कहेगा ? वस स्त्रीसे यह नही कहेगा ? कहेगा। वह स्त्रीसे यह नही कहेगा कि तू मुझे नर्कमे डालने वाली है। क्या वह सबसे बुरे वचनोसे बोलेगा ? नही बोलेगा। उनसे पले पुसे हैं, जीवन मिला है, लगाव है तो धीरेसे, आसानीसे वहांसे छुटकारा पाकर यह अपनी निधिको पानेके लिए उत्सुक हो जायगा। फिर इस लौकिक निधिको छोडकर ज्ञानानन्दमय निजनिधिको अपने उप-योगमे प्राप्त करनेको उपयोगरूप यत्न करेगा।

जैसे किसी सेठके गुजरने पर केवल उस घर एक नाबालिग लडका हो तो सरकार उसकी जायदादको कोर्ट आफ वार्ट कर ले और ५०० रुपया महीना सरकार देने लगे तो जब तक उसे ठीक ठीक पता नही होता तब तक वह जानता है कि वह सरकार बडा दयालु है, घर बैठ ५००) महीना देती है। लाखोकी जायदाद सरकारके सुपुर्द हो जाती है। जब बालकको यह बात मालूम होती है तब फिर वह बालिग सरकारको नोटिस दे देता है कि ५०० रुपया महीना नही चाहिए। पहिले तो समझता था कि सरकार मुझ पर दया कर रही है घर बैठे ५००) महीना देती है। पर जब यह ज्ञात हो जाता है कि सरकारने मेरी १० लाखकी जायदाद जप्त कर रखी है और उसमेसे ५००) रुपया महीना देकर मुझे बहका रही है। इतना समझमे आते ही ५००) रु० महीना लेना तिरस्कृत कर देता है।

इसी प्रकार इस जीवको जब तक अपने स्वरूपका सही पता नही होता है कि मैं क्या हू ? तब तक तो छोटे-छोटे पुण्योसे प्राप्त वैभवसे अपनेको भाग्यशाली समझता है। पर जब अपने आपके स्वरूपका सही पता हो जाता है, उसे यह समझमे जब आ जाता है कि मेरा स्वरूप तो स्वय आनन्दमय है, मैं तो स्वय आनन्दमय हू, इतना ज्ञान आते ही उस वाह्यवैभवको वह तिरस्कृत कर देता है और पुण्य सरकारको नोटिस दे देता है कि अपनी पाई पाई सम्भालो, मुझे कुछ नही चाहिए और अपने भीतर अपना उपयोग देकर अपनी आनन्दनिधिको प्रकट कर लेता है। जिसने प्रकट किया उसे परमात्मा कहते है और जो परमात्माका स्वरूप है वही हम आपका स्वभाव है। ऐसा विश्वास रखो कि क्षणिक निधिसे उपेक्षा रखो, इससे पूरा न पडेगा। आपका पूरा तो आपके अन्तर्ज्ञानसे होगा।

जैसे केवलज्ञान आदि रूपमे प्रकट होने वाला कार्य समयसार उपाधि रहित परमात्मादेव है, जो मुक्तिमे निवास करता है ऐसा ही परम ब्रह्म कारण समयसार यह आत्मदेहमे निवास करता है। कारण समयसार तो शक्ति का नाम है और कार्य समयसार शक्तिकी पूर्ण व्यक्तिका नाम है। समयसारका अर्थ है कि समस्त समयोमे द्रव्योमें सारभूत द्रव्य है, आत्मद्रव्य, उसमे भी सारभूत त्रैकालिक जो स्वरूप है उसे कहते हैं समयसार और वह इस ही शक्तिमे दृष्ट हो तो उसका नाम है कारणसमयसार। और जैसा आत्माका स्वभाव है तैसा ही पूर्ण व्यक्त हो जाय तो उसको कहते हैं कार्यसमयसार।

भैया ! इस लोकमे अब तक पचेन्द्रियोके विषयोमे और मनके विषयोमे ही अनुराग किया, विषयोकी ही बात सुनी, विषयोकी ही बात परिचयमे आई और विषयोकी ही बात अनुभवमे आई किन्तु अपने आपके स्वरूपमे अत प्रकाशमान ज्ञायकस्वरूप यह देव अपने ज्ञानमे न आया, यह आत्मा स्वय, स्वयके लिए महान् है यह समझमे न आया और परसे कुछ भिक्षा मांगता हुआ, ऐसा बना हुआ यह भिखारी रहा। परिवारसे आशाकी, उनका ही भिखारी

रहा, देशमे आशाकी, वहा भी भिखारी रहा और यहा तक कि कभी देव शास्त्र गुरुका प्रसग आवे तो वहा भी विषयसाधनाकी आशा रखी। वहा भी भिखारी रहा।

भैया! प्रभुके समक्ष हमें भिखारी नही बनना है किन्तु प्रभुका भक्त बनना है। भक्त और भिखारीमें अन्तर है। प्रभुके स्वरूपकी उपयोगसे सेवा करना भक्ति है। यह कार्यसमयसारका स्मरण कारणसमयसारकी याद दिलानेके लिए हैं। किन्तु ये विषयसाधनोंकी मागके लिए उपासनीय नही है। जैसे यह प्रभु भावकर्म, द्रव्यकर्म नोकर्म से रहित है। इसी प्रकार यह स्वयं सहजस्वरूप भावकर्म द्रव्यकर्म नोकर्मसे रहित है। जैसे जलमें डूबे हुए कमलके पत्रको हम इस दृष्टिसे भी देख सकते हैं कि यह पानीमें डूबा हुआ है, पानीसे छुवा हुआ है, पर उस डूबी हुई हालतमे भी केवल कमलके पत्र पर दृष्टि दें और कमलपत्रके स्वभावको निरखें तो यह ज्ञात होगा कि यह कमलपत्र पानीसे छुवा हुआ नही है। उस ही प्रकार इस आत्मदेवको कर्म नो कर्म, शरीर और बाह्य वातावरणसे बधा और फसा अनुभव किया तो शरीरके बधनमें है, अनेक बधनोमें है तथा इस ही आत्मद्रव्यको यदि हम इसके सहजस्वरूपकी दृष्टिसे देखें अर्थात् यह चैतन्यसत् अपने शुद्धसत्वके कारण इस स्वरूपको लिए हुए है, इस दृष्टिसे देखते हैं तो यह समस्त पर-उपाधियोंसे अछूता है।

यह सब प्रज्ञाकी महिमा है। जैसे हड्डीका फोटो लेने वाला एक्सरा क्या उसके नीचे पडे हुए मनुष्यके न कपडेका फोटो लेता है न चमडीका फोटो लेता है, न खूनका, न मासका इन सबको छोडकर केवल हड्डीका फोटो ले लेता है इस ही प्रकार यह प्रज्ञा सर्वकर्म, रागादिक विकार सबको छोडकर केवलज्ञान स्वभावको ग्रहणकर लिया करता है।

एक चुटकुलामें कहते हैं कि राजा और मत्री सभामें बैठे हुए थे। राजाने मत्रीसे मजाक किया नीचा दिखानेके लिए अथवा इसी प्रकार व्यवहार चला करता था। राजा बोला मत्री जी आज रातको मुझे एक स्वप्न आया कि हम दोनों घूमने जा रहे थे, रास्तेमें दो गड्ढे मिल गये एक गड्ढा था गोबरका और एक था शक्करका सो आप तो गोबरके गड्ढेमें गिर गये और मैं शक्करके गड्ढेमें गिर गया। तो मत्री बोला महाराज ठीक यही स्वप्न मुझे आया है, कि आप तो शक्करके गड्ढेमे हैं और मैं गोबरके गड्ढामे हू। हमारा और आपका चित्त एकसा है ना? पर एक बात इससे ज्यादा मैंने देखी कि आप मुझे चाट रहे थे और मैं आपको चाट रहा था। अब बतलावो कि गोबरके गड्ढेमे गिरा हुआ व्यक्ति स्वाद किसका ले रहा था? शक्करका और शक्करके गड्ढेमें पडा हुआ व्यक्ति स्वाद किसका ले रहा था? गोबरका। इसी प्रकार यह बधन, लगाव, फसाव, गृहस्थीका समागम, कुरता टोपीके बीचमें फसा हुआ ज्ञानीपुरुष समस्त माया रूपोंको पार करके अत बसे हुए ज्ञानस्वभावको लखता है तो बतलावो कि गृहस्थीके कीचडमें अथवा गोबरके गड्ढेमे पडा हुआ वह ज्ञानी स्वाद किसका ले रहा है? ज्ञानस्वभावका, परमात्मस्वरूपका, सहज आनन्दका और सर्व कुछ छोडकर त्यागकर एक बाह्यमें त्यागी बनकर यदि ज्ञानदृष्टिसे विषय और कषाय, प्रतिष्ठा रीति, अथवा किन्हीं प्रकारके विषयोमे चित्त जाता है तो वह किसका स्वाद लेता है? कीचड का, गोबरका।

यदि कला है, प्रताप है तो दृष्टिका है और हम आप सब तिर सकते हैं तो इस ही दृष्टिके बलसे तिर सकते हैं तो तो इस ही प्रज्ञा द्वारा यह देखा जा रहा है कि जैसे परमात्मस्वरूप भावकर्म द्रव्यकर्म नोकर्मसे रहित है इस ही प्रकार यह अपने अस्तित्वमे सदा विराजमान अपने ही सत्त्वके कारण जिस सहज स्वरूपमे रहता है उस ज्ञायक स्वभावको निरख कर देखू तो यह मैं भी परमात्माकी तरह एक शुद्ध चैतन्य हू। इस देहमे रह रहा हू पर भेद न करु, केवल स्वरूप और स्वभावको लखकर एक शुद्ध आनन्दकी दृष्टि करु। यह सब एक ज्ञानदृष्टिकी लीला है, जिस दृष्टिसे स्वरूपपथसे चलकर यह आत्मा प्रगतिकी ओर जा रहा है। उस ही कलाकी

देखिये। अन्यथा जिसने इन्द्रियो द्वारा जैसा जाना है वैसा ही अपनेको देखा तो वहा शका हो जायगी कि यह तो शरीर, कर्म और विकारोसे तो बधा है और वहा जा रहा है कि हमारा स्वरूप सिद्धके समान है।

यह कारणसमयसार जो परम ध्येय है, आचार्य साधु उपाध्याय भी जिस कारणसमयसारका ध्यान करते हैं, जिस कारणसमयसारका ही आश्रय लेकर अरहत और सिद्धरूपमे परमात्मापद प्राप्त करते हैं वह कारणसमय-समयसार महापुरुषोसे भी नमस्कार करने योग्य है। भैया! हमारा और आपका शरण क्या है? जैसे बच्चेको किसी ने डाटा तो दौड़कर झट वह अपनी मांकी गोदमे बैठ जाता है और अपनेको निरुपद्रव अनुभव कर लेता है। उस बच्चेको कोई कष्ट आने पर शरण है माकी गोद, इसी प्रकार हम आप सब कितने क्लेशोमे पडे हैं? धन है तो क्लेश, नही है तो क्लेश, समागम है तो क्लेश, समागम नही है तो क्लेश, बहुतसे बच्चे हैं तो क्लेश, अकेला ही है तो क्लेश इत्यादि क्लेशोका सबको अनुभव हो रहा होगा। सब अपने आपमे दुख पा रहे है। ऐसे दुख सकटोसे घिरे हुए हम किसकी शरण जाए, कि ये सकट तत्क्षण खतम हो जाए? फिर चाहे उस शक्तिसे हम हटें तो सकट आ जावें, पर एक बार तो जिसकी शरणमे पहुचकर सकट दूर हो जाए ऐसा शरण कौन है? किसके पास जावोगे? किस लखपतिके पास जाकर निर्मलताका अनुभव करोगे? किसके पास जाकर अपनेको सकटरहित अनुभव करोगे? परद्रव्योकी पकडसे एक क्षण भी अपनेको सकटरहित नही पा सकते।

एक अपने आपके प्रकाशमात्र सहजस्वरूपमय कारणपरमात्माकी शरण पहुचो। देखो यदि अपने सहज-स्वरूपकी शरण पहुच पाते हो अर्थात् रागद्वेषादिक विकल्परहित (समता परिणाम रूपमे) वृत्तिमे रह पाते हो तो तत्क्षण सर्वसकट दूर हो जाते हैं। हा यदि तुम अपने केन्द्रसे चिग जाओगे तो फिर सकट पाने लगोगे। इसका कारण यह है कि सकट परपदार्थोंसे नही आया करते हैं।

यदि सकट परपदार्थोंसे आते होते तो ये ससारी रोगी वेइलाज हो जाते फिर इसका दुनियामे कोई इलाज नही रहता कि जिस उपायसे सकटोसे मुक्ति हो सब कोइ भी सकट परपदार्थोंसे नही आते। एक भी सकट आप बतायें। परसे सकट आवे ही नही। सकट खुदकी ही विचारधारा बनाकर कल्पना बनाकर कुछका कुछ सोचकर मान लिया करता है, बडी परेशानी अनुभव करता है। किन्तु भैया! दूसरोके सकटोकी कथा सुनकर जैसे तुम्हें बीच-बीचमे हसी आती रहती है कि कैसी मूर्खता भरी बात करता है कि हम सकटोमे है। छोड दे यदि मोहको तो सकट टला ही टला। इस प्रकार अपनी मूढता अपनेको अनुभवमे नही आ पाती।

सकट केवल अपनी कल्पना है। हमारी ऐसी कच्ची गृहस्थी है कि यह तो छोडी ही नही जा सकती है। यह तो सरासर सकट है यह तो पुण्यफलकी उद्दण्डता है। सुकौशल स्वामीके कच्ची गृहस्थी न थी क्या? स्त्रीकी भी उम्र छोटी थी। पुत्रके वियोगमे मा बडी दुखी थी। हम आपसे भी कच्ची गृहस्थी सुकौशल स्वामीकी थी पर उनसे ज्ञान जगा और सकट मिटे। उस समय समझाने वाले हजारो व्यक्ति समझाते थे। कोई समझाता कि तुम घर के लोगोको छोड दोगे तो इन बेचारोकी क्या हालत होगी? हम आप यह नही जानते हैं कि घरमे रहने वाले लोगो का अधिक पुण्य है जिसकी वजहसे हमे इनकी नौकरी करनी पड रही है। वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टि करो, क्लेश न रहेगा।

यह जीव किसी परका कर्ता नही है। यह केवल अपने विकल्प बनाया करता है। विकल्प बनानेके अति-रिक्त इसका कोई काम नही है। तो ऐसी शरण कौन है कि जिसकी शरणमे जाए तो तत्क्षण आराम मिले? वह शरण है अपना शुद्ध ज्ञानस्वरूप किन्तु इसका दर्शन करना इसकी चर्चा करना इसके ज्ञानमे लगना यह बहुत बडा कठिन मालूम हो रहा है। कठिनाई मालूम होती है इस कारण कि इसके समीप नही पहुचे और जो आत्मज्ञ पुरुष हैं उनकी सेवामे नही रहे, अथवा सत्सगमे नही रहे। अथवा ज्ञानके अर्जनका यत्न नही किया। केवल कनक कामिनी

यही इनके सब देव रहे, गुरु रहे। देव गुरुका माना तो लोकव्यवहारसे, रूढिसे। मैं कुछ ठीक कहलाऊ, वड़ा कहलाऊ, न जाने कितने आशयोसे, देवको माना।

आत्महित बुद्धिके कारण सहजसिद्ध आत्माकी ओर व आत्मज्ञोके सत्संगमे नही पहुचा इसलिए यह बात कठिन मालूम हो रही है किन्तु है यह खुदके घरकी बात है। अपने आत्माके स्वरूपकी बात कैसे कठिन हो सकती है ? कठिन है। कठिन है पैसा कमाना उसपर आपका अधिकार नही। आना होना तो आता है वह आपके पूर्वकृत पुण्यका फल है। दुकानमे ही वैठे वैठे सोचते जायें कि इसकी जेबका पैसा हमारी दुकानमे आजाय तो क्या इस परिणामके फलमे पैसा आजायगा। यह कैसे हो सकता है ? जैसे कौवाके सोचनेसे ढोर नही मरा करते इसी प्रकार आपके सम्बन्धमे सोचनेसे परमें परिणति नही हुआ करती। केवल विकल्पाक ही हम कर्ता बनते हैं।

इन विकल्पोसे विराम मिले, इस बातको जीव नही सोचता है और मोहसे उत्पन्न हुए दु खको मिटानेके लिए मोह करनेका ही इलाज करता है। रागका उत्पन्न करना राग बढानेका ही यत्न करना है। यह उद्यम उनका ऐसा है कि जैसे खूनसे भिडे हुए कपडेको धोनेके लिए खूनसे ही धोते हैं। सत्यदृष्टिमे देखो तो जो ज्ञानी ज्ञानके स्वरूपका ज्ञान करता है यह ज्ञान ऐसा ज्ञान है कि जिन ज्ञानमे से ज्ञानकी शुद्धवृत्ति उत्पन्न होती है और ज्ञानके पूर्ण विकासको ज्ञान कर लेता है। जो ज्ञान अपने स्वरूपका छोडकर वाहरी पदार्थोके जाननेमे जुटा रहता है उस ज्ञानको अज्ञान कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नही। इस ज्ञानके द्वारा हम जगत्के पदार्थोकी ऐसी व्यवस्था करते हैं और हम स्वयको नही समझना चाहते हैं, यह अपने आप पर कितना वडा अन्याय है ?

यह मेरा प्रभु मुझमें अनादि कालसे मेरे उद्धारके लिए विराजमान है और इसकी भूलके कारण भूले भटके हम फिर रहे हैं। जब तक हमारे मूढता छाई है तब तक हम लाचार हैं, हम अपना उद्धार करनेमे समर्थ नही है। पर यह अपने आपके प्रभुको देखना ही नही चाहता और इन इन्द्रिय और मनके द्वारसे बाह्य बाह्यमे ही रमता है।

कोई बाबू थे अपने आपकी सुन्दर व्यवस्थामे ही लगे रहे थे। उचित-उचित स्थान पर चीजें रख रहे थे। घडीकी जगह घडी रख दिया, छडीकी जगह छडी रख दिया और लिख दिया। जूते रख दिये और लिख दिया जूते। जहा जो चीज रखना चाहिये वहा वह चीज रख दिया और लिख दिया। यही तो सुन्दर व्यवस्था है। व्यवस्था करते करते नीद आने लगी, पलग पर लेट गया। व्यवस्थाकी धुनमे जिस पलग पर लेट गए वहा पर लिख दिया मैं सो गया, जब सुबह हुआ जगे तो देखा कि जो चीज जहा रखी थी वह वहा है कि नहीं। देखा—घडीकी जगह घडी, बस, ठीक। छडीकी जगह छडी ठीक और जब पलगपर देखा तो उसमे मैं लिखा था। देखा तो मैं है ही नही। पलगको लट्ठसे झाडा, शायद कही नीचे टपक जावे मैं तो मिला ही नही, इस भ्रमसे दु खी होने लगा, झट नौकरको पुकारा, अरे गजब हो गया, मेरा मैं गुम गया। बाबूसाहबकी बात सुनकर नौकर हसने लगा। बाबू जी ने कहा अरे तू तो मजाक समझता है। मेरा मैं गुम गया। नौकर बोला बाबू साहब आप थक गए होंगे, आप ५ मिनट विश्राम कर लीजिए तो आपका मैं अभी मिल जायगा। बाबू साहब थके हुए थे, वे पलग पर लेट गए और नीद आ गयी। जब थोड़ी देर बाद सोकर उठे तो नौकरने कहा अब बाबू साबूजी आपका मैं पलग पर मिल गया। पलगपर अपनको टटोला तो बोले—ओ यस मेरा मैं मिल गया।

इसी प्रकार जो जीव ज्ञान और आनन्दको परमे खोजता है वह मानो अपनेको ही परमे ढूढता है, क्योकि ज्ञानानन्दमें और मैं मे कोई अन्तर नहीं है। जो ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है वही तो मैं हू ? यदि मैं पुस्तकोमे ही ज्ञान और आनन्दको खोजता हू तो खोजता ही रहता हू। अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूपकी ओर तो मुडकर नही देखता। जो धन वैभव परिवारमे ही आनन्द खोजते हैं वे अपना मैं अपनी कल्पनाओंसे खोकर बाहरमें ही ढूढ़ते रहते हैं। अपने आपमे वह सहज ज्ञानानन्दस्वरूप अपनी दृष्टिमें आजाय तो सच समझो कि आपने वह विभूति पायी जिसके आगे तीन लोककी सम्पदा भी झुक जाती है। वैसे तो देखा इस जीवने कई भवोमे अरबोकी सम्पदा पायी और उसे

छोडा पर आज हजार या थोड लाख कि विभूतिको पाकर ऐसा समझते हैं कि यह मैंने अपूर्व निधि पाई, पर क्या पाया ?

अच्छा आप मान लो कि तीन लोककी जितनी सम्पदा है वह मेरी है, क्या हुआ ? क्योकि आपके घरकी जो तिजोरी रखी है उसे भी तो कल्पनासे ही माना कि यह मेरी है सो केवल कल्पना ही तो करना है। तीन लोक की सारी सम्पदाको मान लो कि यह मेरी है। केवल कल्पनासे ही मानकर सुखका अनुभव करते हो ना सो और अधिक मान लो। माननेके अतिरिक्त तो कोई कुछ काम नही कर पाता, इन विकल्पोसे पूरा न पडेगा। जन्म लिया, मरण किया, यही चक्र लगा रहेगा।

भैया ! जन्ममरणके मेटने वाली जो दृष्टि है, प्रज्ञा है उसका आदर करो। मोहमे रहे, रागमे रहे, दुकान मे रहे, परिग्रहमे रहे सवेरे ८ बजे मदिरमे पहुच गए वहा पर भी वही धुन रही तो उससे क्या लाभ है ? जब तक लगनके साथ एक चित्त होकर ५ मिनट भी सवविकल्पोको तोडकर न बैठे तो क्या लाभ मिलेगा ? ५ मिनटके लिए तो ऐसी हिम्मत बनाओ। ऐसी कमर कसकर बैठो कि मनमे रच भी किसी चीजका ध्यान न रहे तो इस प्रकारसे एक अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है और कुछ समयके लिए एक विशेष प्रकारकी शाति मिलती है।

आत्महितैषिताके विना धर्मका नाम पर कोई विधान रच दिया, उत्सव रच दिया तो इससे क्या शाति मिलता है ? उद्देश्यविहीन यह बात कही जा रही है। जगह जगह निमत्रण पत्र बाट दिया, हजारो आदमियोको निमत्रण दे दिया, व्यवस्था करनेमे क्रोध भी आ रहा है। हमारी नाक न कटन पावे यह भावना भी मनमे रखी हुई है। कितनी ही बात मनमे आती हैं तो बतलावो इस प्रसगमे धर्म क्या किया ? इसमे बतलावो आपके हाथ कुछ रहा ? कुछ नही। हा केवल यह बडाई मिल जायगी कि इस विधानमे १० हजारका खर्चा किया। भैया ! इस बात से पूरा नहीं पडता। यह तो हो गया मगर आत्मामे निराकुल ज्ञानस्वभाव परमात्मस्वरूप कारणसमयसार, जिसकी दृष्टिके प्रतापसे अनगिनते भवोके वाध हुए कर्म खिर जाया करते हैं उस आत्मदेवकी दृष्टि नही की तो धर्म कुछ भी नही होगा।

भैया ! अब इस जीवनमे धर्मके लिए अपनी कमर कसो। यदि इस ससारसे छुटकारा पाना है तो आत्मा का जो विषय है, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र इन सबका साधन है सच्चा ज्ञान जानो तो सही कि मैं क्या हू ? क्या करता हू ? क्या स्वरूप है ? कैसा हू इस बुद्धिको मिटानेको सच्ची विधि सम्यग्दर्शन है, सम्यक्चारित्र भी है और सम्यग्ज्ञान भी है। रुढिमे विडम्बना चाहे पायी जाय किन्तु मर्म नही पाया जाता।

एक सेठने पगत की। उसमे सोचा कि लोग पत्तलकी सीक निकालते है दात कुलयानेके लिए। सो मेरी ही पत्तलमें खायेंगे। और उसी पत्तलमें ही छेद करेंगे। अत पत्तलमें ४-४ अगुलकी सीके अलग परोस दी जायें सेठने ४-४ अगुलकी सीकें परोसी। सो अब वह तो मर गया। लडके लोगोने कोई उत्सव मनाया तो सोचा कि हम तो बापका यश बढायेंगे, घटायेंगे नही। बापने तो ४ मिठाई बनवाई थी हम १२ बनवायेंगे और ४ अगुलकी सीक रखी थी हम १२ अगुलकी सीक रखेंगे। सो ऐसा ही किया। सो अब तो रुढि चल गई। अब उसके लडकोने भी अपनी कीर्तिके लिए ऐसा ही किया, उत्सव मनाया और पत्तलोके साथ-साथ एक हाथका मोटा डडा भी परोसा, देखो मर्म जाने बिना क्या अनर्थ हो गया।

लोग यह न कह दें कि कुछ नही किया सो कीर्तिके लिए लोग ऐसा ही दिखाऊ धर्म करते हैं। अरे यह धर्मका काम नही है। धर्मका काम तो नम्र परिणामसे, विनयसे गुप्त ही गुप्त छिपे हुए अपने आपमे कुछ रुकनेके लिए है। धर्म दिखानेकी चीज नही है। धर्म तो कारणसमयसारकी दृष्टि ज्ञप्ति व चर्चा है। कारणसमयसारकी दृष्टि हो तो ये संकट हमारे टल सकते हैं।

जे दिट्ठे सुहति लहु कम्मइ पुव्वकियाइ ।
सो पर जाणहि जोइया देहि वसतु ण काइ ॥२७॥

हे योगी ! जिस कारणपरमात्मा तत्त्वके देख लेनेसे पूर्वकृत कर्म अन्तर्मुहूर्तमे ही चूर्ण-चूर्ण खण्ड खण्ड हो जाते हैं उस परमात्मतत्त्वको, इस देहमे बसने वाले निजतत्त्वको क्यो नही जानता हू ? यह परमात्मतत्त्व एक ज्ञानरूप नेत्रसे देखा जा सकता है । वह ज्ञाननेत्र समाधिमे खुलता है । यह समाधि निर्विकल्प दशामे बनती है । यही निर्विकल्प दशा रागद्वेषरहित होने पर होती है । रागद्वेषरहित अवस्था शुद्धज्ञानस्वभावमात्र अपने आपको देखनेसे प्रकट होती है । भैया ! कल्याणके लिए काम बहुत करना है । और कुछ नही करना है । केवल एक काम करना हैं । एकके साधे सब सधते और एक को छोडनेसे सब छूटते हैं । वह एक काम है अपने आपको ज्ञानानन्दस्वभावमय तकना ।

प्रत्येक मनुष्य अपनेको किसी न किसी रूप तकता रहता है । कोई सोचता है कि मैं धनिक हू, कोई सोचता है मैं पडित हू, कोई सोचता है मैं त्यागी हू, कोई सोचता है मैं नेता हू नाना प्रकारसे अपनेको समझने हैं पर इस सर्वमायारूप दृष्टिको छोडकर इन चर्मचक्षुवोको वन्दकर केवल ज्ञाननेत्रसे देखा जाय तो केवलज्ञानस्वरूप ही प्रतीत होता है । मैं क्या हू, इसका उत्तर यहा यह आता है कि मैं तो ज्ञानानन्दस्वभावी एक चैतन्यतत्व हू । ऐसा अनुभव करने वालेको सर्वसमृद्धिया मिल जाती हैं और जो अपनेको नानारूप अनुभव करता है उसके हाथ कुछ नहीं लगता ।

एक कथानकमे कहते हैं कि दो भाई थे मानो हिन्दु और मुसलमान । एक साथ कही जा रहे थे । रास्तेमे एक नदी पडी, नदी कुछ गहरी थी तो दोनो बोले कि कैसे पार करें ? उन्होन कहा कि अपने इष्टका स्मरण करके कूद जावो वह पार कर देगा । चले कूदकर तो मुसलमान तो शुरुमे अपनी एक ही रटन लगाये चला जा रहा था रे अल्लाह और हिन्दु भाई ब्रह्माको पुकारा, कुछ देर बाद विष्णुको पुकारा, फिर शकरको पुकारा । जिसका नाम पुकारे वह आवे और फिर जहा दूसरेका नाम पुकारने लगे तहा वह आने वाला देव चला जाये । इस तरहसे उसे कुछ सहाय न मिला और वह डूब गया । साराश यह लेना है कि किसी एक पर श्रद्धा पुष्ट तो करो, क्या चाहिए दुनियामे ? धन जोडकर कुछ लाभ पाया क्या ? क्या बूढे नही होगे ? मरण नही होगा क्या ? इन मोही जनोने, जो कि स्वय ससारके चक्रमे फिरने वाले है, स्वार्थमे आकर कभी आपके गुणोके, कीर्तिके शब्द बोल दिये तो उससे क्या पूरा पडेगा ?

इस ससारमे आप क्या चाहते है ? यदि इन कर्मोसे, शरीरके बधनसे सदाको मुक्ति हो जाय तो वह स्थिति पसद है या यह कि परिवार या लोकमे स्वार्थवश कभी दो शब्द सुन लिये यह पसद है ? सदाके लिए सकट से छूटना यदि पसद है तो जो सदाके लिए सकटोमे छूटे हैं ऐसे देवके ध्यानमे रहें और जो सकटोंसे छूटनेका उपाय कर रहे हो उनका सत्सग करो । जितना तुम्हारा भवितव्य सुन्दर होगा वह श्रद्धाके आधार पर होगा । हम और आपके पास कौन सा ऐसा बल है कि जिस बलसे हम आप प्रगतिमे सफल हो सकें ? वह बल है श्रद्धानका बल । हमारा आधार वीतराग सर्वज्ञ है । यथार्थगुण दिखता है वहा सो उन पर मुग्ध होकर उनके अनुरागवश उनके गुणो का अनुराग नही है वरन् उस अपने आपके विकास माफिक अपने गुणोका अनुराग है । सो अपने गुणोके अनुरागके कारण प्रभुकी ओर ही लगन रहती है ।

चाहिए क्या ? शान्ति । शान्ति धर्मके प्रसादसे ही मिलती है । एक श्रद्धा मजबूत हो तो हम अपने धर्म-क्षेत्रका प्रोग्राम ठीक बना सकते हैं अन्यथा कभी कोई आफत आए परिवार पर, किसी पर तो जिसने जहा बहकाया उस देवीमे उस देवतामे जगह-जगह बोलता फिरता है, फिर उस श्रद्धा हीनताके फलमे एक पाप चढा मिथ्यात्वका और अपना वह आत्मबल भी घट गया । आत्महितका अभिलाषी ज्ञानी पुरुष एक व्यवहारमें तो जिनेन्द्र देवकी भक्ति

करता है और परमार्थसे अपने आपमे बसे हुए त्रैकालिक स्वरूपकी आराधना करता है। यहा कहा जा रहा है कि हे योगी! जिस परमात्माका अवलोकन कर लेनेसे अनगिनते भावोके बाधे हुए कर्म अन्तर्मुहूर्तमे टूट जाते है उस परमात्माको क्या तुम नही जानते हो? भैया! कर्म उदयकालका निमित्त पाकर जो अपने आपमे रागादिक विकार होते है, ये भावकर्म साक्षात् परमात्माके प्रतिबधक हैं और निमित्तरूपसे ये द्रव्यकर्म परमात्माके प्रतिबधक हैं। सो योगी तुम उस आत्मतत्त्वको देखो जिसके देखने मात्रसे कर्म कटते है। कर्म कटनेका उपाय क्या है? ८ कर्मोका स्वरूप जान लेनेसे ८ कर्मोकी ओर दृष्टि देकर मैं इन्हे जलाऊ। क्या ऐसा कोई यत्न हो जायगा कि इनको पकड-पकड कर जला दू या सिला दू या नष्ट कर दू? एक ही उपाय है इसका। वह क्या? अपने परमात्मस्वरूपको देखना इस उपायसे जो कुछ होना है, जिस प्रकारसे कर्म निकलेगे उस प्रकारसे वे कर्म टूट जायेंगे। अपनेको करनेका काम एक है। यह परमात्मतत्त्व व देदेहमे बस रहा है।

इस देहमे बसने वाले आत्मामे परमात्मतत्त्व ऐसे बस रहा है जैसे घी दूधमे बस रहा है। वह यो ही सहज देखनेमे नही आता, पर यत्नपूर्वक देखनेसे, विवेकपूर्वक प्रक्रिया करनेसे दूधसे घी आप प्राप्त कर लेंगे तो वह घी किसी अन्य जगहसे नही आया, मठानीमेसे निकल कर नही आया। वह दूधमे गुप्त बस रहा था, पहिचानने वाले जानते थे, दूधको देखकर कह देते हैं ना कि इस दूधमे १॥ छटाक घी है, इस दूधमे आधी छटाक भी घी नही है। यह सब अपने ज्ञानबलसे देख लिया। इसी प्रकार देहमे जीव बस रहा है और जीवमे चैतन्यशक्ति ध्रुव चला आ रहा है। उस चैतन्य शक्तिरूप कारणपरमात्मतत्त्वके अवलोकन करनेमे ये भिन्न-भिन्न उपार्जितकर्म अन्तर्मुहूर्तमे टूट जाते हैं।

हे योगी! सर्वार्थकी सिद्धिके लिए नित्यानन्द स्वभावी स्वआत्माको क्यो नही जानते हो? इस दोहेमे यह तात्पर्य बताया है कि उपादेय है तो वह परमात्मस्वरूप है। जैसे कहा था कि प्रत्येक मनुष्य अपनेको किसी न किसी रूप अनुभव किए रहता है। मैं पडित हू, मैं त्यागी हू, मैं अमुक हू, मैं बाबू हू, मैं मकिस वाला हू, मैं बाल बच्चो वाला हू, किसी न किसी रूपमे अपनेको समझते रहते हैं। पर किस अपनेको समझें तो ये कर्म टूट जायेंगे इसका वर्णन इस दोहामे किया गया है। अपने प्रज्ञाबलसे अन्तर्मर्मको दृष्टि करके जानो कि मैं नित्य एक ज्ञानस्वभावी हू। यह ऊपरी बात या परिस्थितिको देखकर नही देखना है। परिस्थिति है, परिणति है, उस ही परिस्थिति वाला मैं साधु हू, ऐसा मान लिया तो यह धोखा है। पर परिणतिको यह ज्ञान छुवे नही, हैं वे पर उनकी उपेक्षा करो याने मध्यस्थता रखकर अपने आपको जो चैतन्य शक्ति है उसकी श्रद्धा करो और उसको लक्ष्यमे लेकर मानो कि यह मैं परमात्मस्वभाव हू तो जैसा अपनेको अन्तर विश्वासमे माना है वैसा ही अपनी चेष्टा व फल होगा।

बच्चे लोग दोनो हाथ पैरोसे चलते हुए मान लेते हैं कि मैं घोडा हू। वे आपसमे घोडेकी बोली बोलते है और इतना दृढ सकल्पसा कर लेते हैं कि अपनेको घोडा रूप अनुभवने लगते हैं। वे आपसमे घोडोकी तरह हिनहिनाते हैं और फिर हाथापाई भी कर डालते है। और इस हाथापाईमे घसेब जी भी हो जाती है और फिर लड भिडकर अपने घर चले जाते हैं। तो उन्होने जैसा ख्याल किया वैसा ही अपनेमे चेष्टा कर ली। हम मानते हैं कि हम मनुष्य हैं तो मनुष्यपर्यायके रूपमे हमे प्रवृत्ति करनी पडती है। हम मनुष्य हैं बधन हैं तिस पर भी यदि हम अमरमे यह मान सके कि मैं तो एक ज्ञानमात्र चैतन्य वस्तु हू, ईमानदारीसे, सच्चाईसे कहने मात्रसे नही, तो मेरे अतरमे एक ज्ञान परिणति बन जायगी, रागद्वेष विकल्पो के भाव हट जायेंगे।

हम अपनेको किस रूप विश्वासमे लें यह बात धर्मके लिए सबसे प्रथम जानने योग्य है। दो ही तो बाते है। हम किस उत्कृष्ट आत्माको शरण मानें? एक तो यह निर्णय करना है और उस अपने आपको किस प्रकारसे

देखू यह निर्णय करना है। इन दोनो निर्णयोके आधार पर हमारी धार्मिक प्रवृत्ति चलती है। फिर इन दोनों निर्णयों के पश्चात् चूकि बधन और स्थिति तो यही हैं ना, कहा तक उनके उपयोगमें डट सकेंगे ? थोडी देर बाद फिर व्यवहारसे काम पडता है, तब ऐसी स्थितिमें हमारी प्रवृत्ति कैसी हो उसके लिए गृहस्थ धम और साधु धम दो प्रकार से खूब बनाया है ना ?

गृहस्थ धर्ममे ८ मूल गुणोंका पालन सब प्रथम बताया है। वे ८ मूल गुण क्या है ? (१) मधु त्याग (२) मांस त्याग, (३) मदिरा त्याग और, (४) पञ्च उदम्बर फलोंका त्याग, (५) रात्रि भोजन त्याग, जीवदया (२) जल गालन (८) देव दर्शन। इनमेसे प्रथम तीनो जल्दी निभ जायेंगे, मधु, मास और शहद त्याग। रात्रिका भोजन न करना कुछ कठिन सा हो गया आजकलके फैशनमे। कुछ तो त्याग करते हैं। रात्रि भोजन त्याग करो तो कमसे कम इतना पालन करो कि जिससे जघन्यरूपमे भी रात्रि भोजन त्यागमे शामिल कहलाने लगे।

प्रतिमाओंके बिना अविरत श्रावक रहकर भी रात्रिभोजनत्यागियोंमे तुम भी कहला सको, कमसे कम ऐसा त्याग तो हो। लड्डू पेडोका तो रात्रिमे खानेका त्याग होगा हो, थोडा और साहस करो औषधि और जलको छोडकर रात्रिमें कुछ न लो, क्या कोई यह बात कठिन है ? यह कमसे कम रात्रिभोजनके त्यागकी बात है। और देखो इसमे किसीको सकट नही आ सकते हैं। प्यासकी वेदनाके लिए पानी हो गया और कोई रोग हो तो औषधि हो गई और क्या चाहिए ? खानेकी तो चाहे जितनी लिप्सा बढा जाओ, बरातोंमें भी समूहरूपमें कही कही रात्रिको खाने लगे और जो नही खाते उनकी लोग मजाक उडाने लगते हैं। यह बहुत ही गलत प्रथा चलने लगी है। दृष्टि दो, समाज भी मिलकर इस पर प्रतिबध करे।

छठा गुण है जीवदया, सकल्पी हिंसाका त्याग। यह भी निभाया जा सकता है। और ७वा मूल गुण है छानकर पानी पीना। २४ घटेमे जब भी जल पीवें तो छानकर पीवें। जलमे कितने ही जीव पडे रहते हैं। अनछना जल पीनेसे रोग भी हो जाते है, हिंसा तो होती ही है, सो जलको छानकर ही पीना चाहिए। ८वा गुण है देवदर्शन करना। देवदर्शन करना भी नियमसे प्रत्येक श्रावकका कर्त्तव्य है। ये ८ मूल गुण श्रावकके मूल काम हैं। सो अपने सर्व आचारों पूर्वक रहो और ज्ञानाचारका उद्योग करो और शुद्ध परमात्मदेव और अपना शुद्ध आत्मस्वभाव इन दोनो की परखमे, निर्णयमे अपना उपयोग लगाओ। इन्ही बातोंसे अपने दुर्लभ नरजीवनकी सफलता है।

हम लोग अब पढें तो बहुत हैं पर जो करें उन्हें लाभ हैं। एक बाबू साहब मानो दिल्ली जा रहे थे। एक पडोसिन आई बोली हमारे मुन्नेको खिलौने ले आना, दूसरी आकर बोली हमारे मुन्नाको मिट्टीका जहाज ले आना, इसी प्रकारसे १०-२० बहुवोंने कहा। किसीने कुछ कहा किसीने कुछ। बादमे एक बुढिया आई, बोला बाबूसाहब मेरे पास दो पैसे हैं सो लो और मेरे मुन्नाको एक मिट्टीका खिलौना ला देना। तो बाबूसाहब बोले बूढी मां, मुन्ना तेरा ही खेलेगा और १०-२० बहुवें रईसोंके यहासे आयी पर किसीने कुछ दिया नही तो बातें ही बनानेसे काम न चलेगा, जो अपनी शक्ति माफिक धर्म करेगा उसका काम चल सकता है।

जित्थु ण इंदिय सुह दुहइं जित्थु ण मणवावारु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुं अण्णु परि अवदारु ॥२८॥

आत्माका शुद्धस्वरूप क्या है ? वैसे सभी मोटे रूपसे जानते हैं कि जीव वह है, जो चलता है, फिरता है, खाता है, सुखी है, दुखी है। इसी रूपसे दुनिया जानती है। पर आचार्यदेव कहते हैं कि जीव तो वास्तवमे वह है जिसके इन्द्रियजन्य सुख दुख नही है। मनमे किसी प्रकारका विकार नही है। लोग तो जल्दी यो ही समझा करते हैं कि जो सुखी हो रहे हैं, जो दुखी हो रहे हैं वे ही तो जीव हैं। जीव तो शुद्धज्ञानस्वरूप है। जैसे दर्पण है, आइना है, क्या किसीने ऐसा दर्पण देखा है कि जिसमे छाया न हो, जिसमें प्रतिबिम्ब न पडता हो ऐसा आइना क्या किसीने

देखा है ? अरे जब कोई देखेगा तो उसमे प्रतिबिम्ब आ ही जायगा। ऐसा आइना किसीके देखनेमे नही आया कि जिसमे छाया न पडती हो। छाया पडती हुई दिखती है फिर भी बतलावो कि दपणका क्या छाया स्वरूप है ? स्वरूप नही है। छाया तो आ पडी उपाधिके सम्बन्धसे मगर छाया स्वरूप नही है। दपणका स्वरूप तो उसकी स्वच्छता है छाया नही।

इसी प्रकार यह इन्द्रियजन्य सुख दु ख और मनकी कल्पनाए ये जीवमे आ पडी हैं पर यह जीवका स्वरूप नही है। अपना स्वरूप यदि ठीक प्रकारसे पहचाननेमे आ जाय तो समझो कि हमारा बेडा पार है। इस मोहमे कुछ नही रखा, यह मेरा घर है, कुटुम्ब है, परिवार है। यह छोडा भी नही जा सकता, इसमे सार भी कुछ नही है। मगर देखो तो जिन्दगी भर खूब श्रम कर रहे हैं। खूब कमा रहे हैं और कमा कमाकर खुश हो रहे हैं। यह मेरा बच्चा है यह मेरा भाई है यह मेरी स्त्री है, यही मान मान कर खुश हो रहे हैं। इससे पूरा नही पडेगा। क्या अत मे मरण नही होगा ? अरे सबको छोडकर जाना ही होगा। इनमे सार कुछ नही है। दूसरी बात यह है कि जितने भी बाहरी समागम है उन बाहरी समागमोमे आनन्द नही है, चैन नही है, उनमे दशो विकल्प लगे हैं।

भैया ! ये विकल्प छूटें, गृहजाल मायाजाल छूटे तो कल्याण है, नही तो इसमे सार रच भी नही है। पर यह छोडा भी नही जा सकता है। छोडकर जीव कहा जायगा ? रिस्तेदारीमें रहेगा तो कितने दिन रहेगा ? हा यदि ज्ञान है और हिम्मत कर सके तो साधु बन जाए त्यागी बन जाय तो वह तो मार्ग है। और अगर ममता बनाए रहे और जबरदस्ती छोड भी दिया तो उसमे गुजारा नही है। जिसके ममता रही ऐसे साधुसे तो गृहस्थ अच्छा है। तो यह बात चल रही है कि इस गृहस्थजालमें रहकर भी कल्याण कैसे हो सकता है ? यो हो सकता है फसे हैं पर यहा वहाका ऐसा फसना इस जीवका स्वरूप नही है। यह इन्द्रियजन्य सुख होता है दु ख होता है तो होता है आत्मा में, पर यह जीवका स्वरूप नही है। शुद्ध आत्मस्वरूप इन्द्रियजन्य सुख दु ख नही है क्योकि सुख दु ख अनाकुलतारूप वास्तविक सुखसे उल्टा है। मेरा स्वभाव तो निराकुलताका देने वाला है। क्योकि मेरा स्वरूप है केवलज्ञान, निष्फ ज्ञान और ज्ञानकी वृत्तिमे अनाकुलता है ही नही। ज्ञानके साथ जो रागद्वेषकी तरगें उठती है उससे आकुलता होती है तो अनाकुलतारूप परिणामात्मक सुखसे विपरीत आकुलताओको उत्पन्न करने वाले इन्द्रियजन्य सुख और दु ख इस मेरे असली भावमे नही है। और जो सकल्प विकल्पकी तरगे चलती है वे मेरे स्वरूपमे नही है। जैसे कोई खोटा मित्र आपकी ही आर्थिक जड काटनेकी सोच रह रहा हो तो कमसे कम इतना तो जान लो कि मेरा खोटा मित्र है, मुझे धोखा ही देनेके लिए है। यह तो जान लो कि यह दगाबाज है कमसे कम इतना तो जानलो कि मेरा अहित करने वाला है। नही छूट सकते तो न छूटने दो पर जानते तो रहो। कर्मोका बध अपने परिणामोके अनुसार होता है। विभावोके बीचमे पडे हो तो क्या न पडे हो तो क्या, इसका बध तो परिणामोसे होना है। विभाव कितने भी पडे हुए हो और परिणाम निर्मल है तो बध पापोका न होगा। और विभाव कुछ नही है। कर्मबध तो परिणामोसे होता है। इसलिए सकल्प विकल्पकी जो तरगे उठती हैं वे इसके उठती ही रहती है। कोई दुश्मन इस दुनियामे हमारा आपका नही है। हम आपने तो भ्रमसे ही दुश्मन मान लिया। वह दूसरी आत्मा जिससे आपकी किसी प्रवृत्ति का निमित्त पाकर विषयोमे बाधा पहुचती है उसे अपने दुश्मन मान लिया। जिससे कषायोके अनुसार उसकी बात न बनी सो वह दुश्मन मान लेता है आपके कषाय है कि मुझे इतना लाभ हो और उसमे वह बाधा तो नही डालता, मगर उसके भी कषाय है सो वह अपने कषायोका काम करता है और उससे कुछ बाधा अपनी समझता है तो यह जानता है कि यह मेरा दुश्मन है। किसीका कोई दुश्मन नही है। इसी प्रकार मित्र भी किसीका कोई नही है। अपना सद्विचार ही अपना मित्र बनता है और अपना खोटा विचार ही अपना दुश्मन बनता है। इस ससारमे पूण्यो-दय पाकर ऊधम मचानेमे कुछ लाभ न मिलेगा। यह पुण्य बना रहा तो रहेगा और खोटा परिणाम करेगा तो मिट

जायगा। पुण्यका फल तो सब चाहते हैं पर पुण्य कोई नही करना चाहते हैं और पापोंके फलमे सब दूर होना चाहते हैं और पाप कर रहे हैं। यहा जो कुछ सम्पत्ति मिली है यह आपके हाथ पैरोंके कमाने से नही मिली है। आपका उदय अच्छा है तो सब मिलेगा। उदय क्या अच्छा है कि पूर्वजन्ममे अपने सुकृत किए, धर्म कार्य किए, उदारताकी, इसलिए पुण्य बधा। तो तुमको कमाने वाला पुण्यकर्म है और पुण्यकर्मके बनाने वाले आप हैं। सम्पत्तिके कमाने वाले आप नही हैं। पुण्यकर्मके बना सकने वाले आप हैं और सम्पत्तिके कमाने वाला पुण्य है। तो जिसकी यह चाह है कि मेरे बहुत सम्पदा हो तो उसका यह कर्तव्य है कि सम्पदापर दृष्टि न डाले किन्तु अपने धर्मपर पुण्यपर त्याग पर दृष्टि दे तो उसका परिणाम निर्मल होगा। देखो यह गजबका मोह है कि जगतके जितने भी जीव हैं—वे सब समान हैं, सबका स्वरूप बराबर है ना? अब घरमे जो आपके चार जीव आगए बताओ वे भी दुनियाके सभी जीवोंके बराबर है कि नही? बराबर हैं। आपके वे कुछ लगते हैं क्या? कुछ नही लगते। मानलो सो मानलो पर लगते कुछ नही हैं। जैसे जगतके और जीव हैं तैसे ही घरमे बसने वाले चार जीव हैं। कोई फर्क नही है। जितने भिन्न और जीव हैं उतने ही भिन्न तुम्हारे घरके जीव हैं। आपकी आत्माका उनकी आत्माके साथ कोई ऐसा सम्बन्ध नही है जो कि यह कहा जा सके कि ये मेरे कुछ हैं। हैं नहीं। मगर आप धन कमाते हैं, परिश्रम करते हैं, उन घरके चार जीवोमे लगे हैं, उनमे ही अपना जीवन बर्बाद कर देंगे, मगर जो चारके अलावा और जीव हैं उनका क्या कुछ सम्बन्ध है, हिस्सा है? अगर मोह न हो तो यह विवेक हो कि मैं अनेक उपाय करके जो कमाता हू उसका आधा तो कुटुम्ब के लिए है और आधा जगतके और जीवोंके लिए है। इतनी बात यदि पैदा हो तो समझो कि हमारा मोह मिटा यदि यह प्रेक्टिकल प्रयोग है तो समझो कि मोह मिटा, नही तो कौन उसमे बुद्धिमानी है कि श्रम करते हो कमाते हो और उन चारमे लगाते हो तो यह विवेक नही है। मोह है, आसक्ति है और इस मोहका फल ससारमे भ्रमण करना है, तो शुद्ध जीवोंका स्वरूप बना रहे हैं कि जिसमे सकल्प विकल्प भी नही हैं, ऐसा शुद्ध ज्ञान मात्र मैं हू। मेरा स्वरूप तो निर्विकल्प है, निर्विकल्प परमात्मस्वरूपसे यह बिलकुल विपरीत चीज है सकल्प और विकल्प। सो यह सब जीवोंमें विकार है। यह मेरा स्वरूप नही है ऐसा अपना शुद्ध आत्मा मानो। कैसे मानोगे? निर्विकल्प समाधिमे ठहर करके मानो, और तरहसे मानना झूठी बात है। जैसे हरिहरदास सेठकी कथा है। वह सम्यग्दर्शनकी बात बोल रहा है, चार सेठानिया तो कह रही हैं कि सब कथा सच है और छोटी सेठानी कहती है झूठ। राजा सुन लेता है और बुलाकर छोटी रानीसे पूछता है कि क्यो झूठ है? छोटी रानीने गहने फेंककर एक साडी पहिनकर जगलको चल दी और बोली कि सच तो यह है और बाकी तो सब गप्पे हैं। तो शुद्ध आत्माका हित कैसे बने? जब तक अपने विकल्प न हटें, और अपनेमे यह ज्ञानज्योतिकी झलक न आए तब तक नही मान सकते कि ओह मेरे असली आत्माका स्वरूप यह है। मैं घर वाला हू, मैं परिवार वाला हू, ये सब झूठी कल्पनाए हैं। जीव तो केवल ज्ञान-स्वरूप है। तो मोहमे लगे रहो पर मोहमे मिलेगा कुछ नही। और कुछ ज्ञान मार्गमे लगे रहे, कुछ धर्ममे लगे रहे तो यह आपका लौकिक वैभव कुछ घटेगा नही बल्कि बढेगा। धर्ममे प्रीति रहेगी तो लौकिक वैभवमे वृद्धि निश्चित है और मुक्तिका एक मार्ग भी मिल जायगा। तो ऐसा उपाय करो कि धर्ममे चित्त लगे। धर्ममे लगो, स्वाध्याय करो और बाह्य समागम तो विनाशीक है, असार हैं। अपना परिणाम तो ऐसा बने कि कोई यदि विवाद पैसोंके प्रति हो तो पैसोंका परित्याग कर दो। सार तो आत्माका आनन्द है। सो कुछ भी त्याग कर दिया, ज्ञान और आनन्द पा लिया तो इससे धर्ममे प्रीति अधिक बढेगी। मन्दिरमे आए, एक मिनट दर्शन किया तो क्या है, उससे क्या फायदा है? मदिरमे दर्शन करनेसे मनमे ऐसी बात उपजे कि मेरेमे त्याग रहे, उदारता रहे जिससे कि ज्ञानमे लगे, धर्ममे लगें तो वह आपके लिए हितकर है। अगर तुम्हे अपना हित करना है तो घरके बच्चोंसे, घरके लोगोंसे तुम्हे हित नही मिलेगा यदि तुम्हारे अन्दर धर्म है तो तुम्हे सब कुछ मिलेगा। धर्ममे तुम्हे प्रेम होना चाहिए क्योंकि धर्मसे ही

पूरा पडेगा। धन वैभव व घरके प्राणियोसे ही तुम्हारा पूरा न पडेगा। सो एक अपने शुद्ध आत्माको मानो और उस परमात्मस्वभावसे विपरीत जो इन्द्रियोके विषय है उनको बाहरसे ही त्याग दो याने अपना ज्ञान ऐसा बनाओ कि मैं अकेला ही हू, मेरा कोई नही है। मैं शुद्ध ज्ञानस्वरूप हू, ऐसा आपका परिणाम बने तो समझो कि आपने बहुत ऊची बात प्राप्त करली, न ज्ञान प्राप्त किया, न अपने आत्मा पर दया किया, मोह रागद्वेषमे ही रमे रहना चाहा तो इसका फल कठिन है। इसे कहते हैं वीतराग निर्विकल्प समाधि। कोई पूछे कि निर्विकल्प समाधि कह दिया इतनेमे काम न निकलेगा क्या ? कोई विकल्प नही है और समता परिणाम है सो उत्तर दिया है। यहा पर यह बताया है कि वीतराग बन गया तो निर्विकल्प समाधि हो गई। रागद्वेष होते हुए समता परिणाम नही हो सकते। दो भैया थे। उन दोनोके एक एक लडका था। सो मान लो बडे छोटे। सो बडा भाई बाजार अमरूद खरीदने गया। ले आया। तो सामनेसे वे दोनो लडके आ रहे थे खुदका और भैय्याका। दाहिने हाथमे बडा अमरूद था और बायें हाथ मे छोटा। वे दोनो भैया ऐसे आये कि बायें हाथकी तरफ खुदका लडका और दायें हाथकी तरफ भैयाका लडका। वे दोनो एक साथ अमरूद मागने लगे सो उनको दायें हाथका बडा अमरूद अपने लडकोको व बायें हाथका छोटा अमरूद अपने भैयाके लडकेको दे दिया। यह हालत भैयाने देख ली। भैया बोला हमे न्यारा करदो। दोनो भैयाका परस्परमे बहुत प्रेम था पर उस तुच्छ कार्यमे उसका ध्यान बदल जाता है। छोटे भाईने कहा भैया न्यारा न होओ तुम सब धन ले लो, हमे कुछ न चाहिए। उस बडे भाईने भी कहा कि हमे कुछ न चाहिए, हमे तो न्यारा होना है। धनकी वृत्ति नही थी फिर भी रागका कैसा कटुक फल मिला। कुछ हिम्मत करके देख लो कोई धेलाकी चीज अपने लडकेको दे दिया और दूसरे लडकेको न दिया तो इससे कुछ लाभ नही हो जाता है। अपने लडकेको कम दिया, दूसरेके लडकेको ज्यादा दिया तो कोई बडी बात नही है, पर जो भीतरमे बात बसी है वही होगी। कहा तक ख्याल करे ? बनावटी बात कहा तक बनावें। जो है सो होता है। जब तक वीतरागता नही आती तब तक निर्विकल्प समाधि नही बनती। किसीसे रागद्वेष नही, अपने ज्ञानस्वरूपको देख रहा है और ऐसा ही ज्ञानस्वरूप परमात्माका स्वरूप है सो अरहतसिद्धमे दृष्टि दी तो यही ज्ञानपुञ्ज नजर आया और अपने आत्माके भीतर ज्ञानदृष्टि दी तो जानन स्वरूप नजर आया। उसको ही अपना स्वरूप मान लिया और जितने अपने विभाव है उन विभावोका त्याग करो। जो जीव विभावी है वे अगर कहते हैं कि हमारी निर्विकार समाधि होगी तो वह गलत बात है। इसलिए निर्विकार समाधिसे पहिले वीतराग शब्द जोड दिया है। और दूसरी बात यह है कि बहुतसे साधु लोग २४ घन्टेमे समाधि लेते हैं, अपनको गड्ढेमे बन्द करवा दिया और २४ घन्टेमे खुदवा लिया, उनमे निर्विकल्पता है। लेकिन लोगोमे जो चित्त चल रहा है तो वह निर्विकल्प समाधि नही है। वीतराग निर्लेप, निर्दोष परमात्माका स्वरूप है और ऐसा ही शुद्ध प्रभुके समान हमारा स्वरूप है। कहा विकल्प फसावे ? लडके जो है तो उनके भी भाग्य लगा है। किन्तु निरन्तर उनकी चिन्ता कर रहे हैं। उनका भाग्य होता तो आप रात दिन उनके पीछे परेशान क्या रहते ? उनका अच्छा भाग्य है इस लिए रात दिन परिश्रम करते हो, धममे रहो, उमर बहुत हो गयी, अब थोडी उमर रह गयी तो अब तो धर्ममे प्रीति लगाओ। चिता, विकल्प, मायाजालको छोड कर निर्विकल्पसमाधिमे रहकर अपने नित्यआनन्दस्वरूप एक स्वय ज्ञानमय अपने उस शुद्ध आत्माको देखो। यह है तुम्हारा शुद्ध आत्माका स्वरूप बाकी इन्द्रियजन्य सुख दुख निर्विकल्प विकल्प ये सब बेकार जानो ये मेरे स्वरूप नही हैं। ऐसा तुम अपने आपका अनुभव करके मानो, यदि ऐसा अनुभव हो गया तो बहुत सी चिंताए दूर होगी। सो भैया उपाय करके ज्ञानवृद्धि करो और धममे लगो, मोह कम करो।

देहादेहहि जो वसइ भेयाभेपणयेण ।
सो अप्पा मुणि जीव तुहु कि अण्णे वहुएण ॥२९॥

कहते हैं यह निज शुद्ध आत्मा या कारणपरमात्मा जिसकी नजर करने मात्रसे सारे संकट दूर होते हैं वह कहाँ रहता है ? इस बातको इस दोहामें कहा गया है। भेदनयसे तो यह परमात्मदेव इस शरीरमें बसता है और अभेदनयसे यह परमात्मा अपने स्वरूपमें रहता है। जैसे पूछा जाय कि बतलावो यह घडी कहाँ है ? तो भेदनयसे तो यह घडी मुट्ठीके अन्दर है और अभेदनयसे घडीमें घडी है, अपने आपमें है, हाथमें घडी नहीं है और भेदनयसे हाथमें घडी है, जैसे मानो तुमसे पूछा जाय कि तुम कहाँ रहते हो ? तो क्या उत्तर दोगे ? हम मुरेनामें रहते हैं। यह भेदनयका उत्तर है, हम घरमें रहते हैं यह भेदनयका उत्तर है और हम पतलून कोटमें रहते हैं यह भी भेदनयका उत्तर है और शरीरमें रहते हैं यह भी भेदनयका उत्तर है, पर हम अपने ज्ञानानन्दस्वरूपमें रहते हैं यह अभेदनयका उत्तर है। यह परमात्मा देहमें बसता है और देहमें नहीं बसता है। भेदनयका नाम है व्यवहारनय और अभेदनयका नाम है निश्चयनय। व्यवहारनय दो तरहके हैं (१) असद्भूतव्यवहार और (२) सद्व्यवहार। जिस आत्माके ज्ञान दर्शन गुण है यह सद्भूत व्यवहार है और आत्माके शरीर है यह असद्भूत व्यवहार है, है तो नहीं भिन्न चीजें ? और आत्माके शरीर है यह है अनुपचरित असद्भूतव्यवहार क्योंकि आत्मा शरीरमें है ना ? अभी आपसे कहें कि शरीर तो यहीं बैठा रहने दो और आपकी आत्मा कुछ यहाँ खिसक आए तो क्या आ जायगा ? और आपका मकान है यह उपचारित असद्व्यवहार है। बिल्कुल झूठा सम्बंध भी कुछ नहीं तो यह आत्मा देहमें बसता है यह है अनुपचरित असद्भूतव्यवहार, और शुद्ध निश्चयनयसे अपने देहसे भिन्न जो स्वात्मा है निज आत्मद्रव्य है उसमें बसता है जो है जीव ! तुम अपने स्वरूपमें बसने वाले अपने ज्ञानप्रकाशको देखो वही परमात्मा है। परमात्माका स्वरूप एक समवशरणको मनमें सोचकर उनकी गंधकुटीमें विराजमान एक मुद्राको देखकर कहते हैं कि हमने परमात्माको देख लिया। और कोई उस गंधकुटीमें विराजमान उस मुद्राके भीतर केवलज्ञान केवलदर्शन, अनन्तसुख अनन्तशक्तिसम्पन्न के आत्मद्रव्यको देखकर कहते हैं कि हमने परमात्माको देखा तो कोई ऐसे अनन्त विकासका मूल आधारभूत चैतन्यशक्ति को ही मात्र उपयोगमें लेकर अन्य विकल्पोंसे हटकर उस भवमें स्थिर होकर जो निर्विकल्प चित् प्रकाश अनुभवमें आता है उसको देखकर कहते हैं कि हमने परमात्माको देख लिया। ये तीन भूमिकायें परमात्मामें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट रूपसे देखनेकी है। किसी भी चीजको जानो जब तक अपने ज्ञानमें न उतर जाय तब तक उसका जानना नहीं होता। ऐसे परमात्माको हम निर्विकल्प समाधिमें स्थित होकर भावोंका जैसा वह परमात्मदेव अपने स्वरूपमें है इसी प्रकार यह कारणपरमात्मदेव मेरे स्वरूपमें विराजमान है ? जो अपनेको छोटा अनुभव करे उससे छोटी ही बात प्रकट होगी और जो अपनेको महान् अनुभवता है उससे बडी बात ही प्रकट होगी। छोटे कुल वाले चूंकि अपनेमें छोटेपनका अनुभव करते हैं और अपनी छोटी अवस्थाको अनुभवते हुए भी अपनेको महान् माने तो उससे बडी बात प्रकट नहीं होती। जैसा मेरा महान् स्वरूप है उस रूप यदि मैं अपनेको अनुभऊं तो उससे उत्तम बात प्रकट होगी। जैसे जो अपनेको ऐसा मानता है कि मैं स्त्री हूं और उनसे कहीं व्याख्यान देनेको कहे तो उसमें तो शब्द आयेंगे मैं गई, खाई, सुनी। ये स्त्रीलिङ्गके शब्द आयेंगे। शब्द बोलनेमें उसे ऐसा विश्वास है कि मैं स्त्री हूं। पुरुषको पकडकर नाटकमें जब स्त्रीका पाट करवाया जाता है तो पहिले उसे बोलना सिखा देवेंगे तब बोल पायगा और उसमें भी मौके पर गया, चला आदि शब्द बोल देगा। जो अपनेको कुटुम्बका पालनहार हूं ऐसा भ्रम किए हुए है वह कुटुम्बके पालने का श्रम करेगा। थक कर भी करेगा, अपने जीवनको आफतमें डालकर भी करेगा क्योंकि हम विश्वास ऐसा बनाए है कि वह अपनी स्वतन्त्रताका अनुभव नहीं कर सकता। जो अपनेको ऐसा अनुभवता है कि मैं मनुष्य हूं तब वह मनुष्यके योग्य व्यवहार करेगा और जो इस मनुष्यदेहको भी पा करके ज्ञानबलसे अन्तरमें चैतन्यस्वभावमात्र मैं हूं, ऐसा तकेगा उसके शुद्धज्ञानवृत्तिकी बात जगने लगेगी। सम्यक्त्वमें यही होता है कि वह अन्तरमें अपनी प्रतीतिमें यह विश्वास बनाए हुए रहता है कि मैं एकस्वरूप एकाकी चैतन्यस्वभावमय चेतनसत् हूं, यह विश्वास मेरे अन्दरसे बनता नहीं है। इस कारण अनेक काम करके भी जितना रागांश है उतना तो उसका बंध है पर जितने सम्यक्त्वके

शाति न मिलेगी । घरमे जरा भाई भाईमे, देवर जेठानीमे छोटी छोटी बातोमे विवाद हो जाता है, इतना धैर्य नही है कि जो कुछ मिला है वह पुण्यके प्रतापसे मिला है । सब कुछ पुण्यका प्रसाद है यह मेरो कुछ भावनाका प्रसाद नही है । पूर्वकृत भावनाका प्रसाद है । पूर्व समयमे पुण्यका कार्य किया था उसका प्रसाद है । अगर जाता है तो जाने दो इतना धैर्य नही हो पाता तो यह क्या है ? यह मूर्छाका परिणाम है । इतनी कठिन मूर्छा कि मेरा मात्र मैं ही हू ऐसा समझे बिना ममता नही हट सकती और जब तक ममता न हटेगी लाखो यत्न करो वे सब फसानेके ही यत्न होगे, निकलनेके यत्न न होगे । निकलनेका यत्न तो मेरा ज्ञानका मार्ग है, सो शुद्ध आत्मासे भिन्न रागादिक बातोसे क्या लाभ है ? देहमे बसने वाले इस आत्मतत्त्वको निरखो । किसी मित्रसे आपकी मित्रता है और वह आपके पास बैठा हुआ है, बातचीत आपसमे चल रही है कोई समयमे मित्रके कोटपर कोई चीटी दीख जाती है तो उस चीटीको निकाल देते है । क्या आप कोटके प्रेमसे चीटी हटाते हैं ? आप तो मित्रके प्रेमसे चीटी हटाते हैं । तो इस देहमें बसने वाला जो आत्मतत्व है उसकी प्रीतिके कारण इस देहको भोजन देते हैं । यह ज्ञानी पुरुष प्राय देहकी प्रीतिके कारण देहको भोजन नही देता है । ज्ञानी पुरुष तो इस पुरुषदेहमे बसने वाले निज आत्मतत्त्वकी प्रीतिके कारण भोजन देते हैं । यह नरजीवन टिका रहे तो मैं अपने आत्मतत्त्वकी ओर उपासना कर लू । अज्ञानी तो इस देहको ही सब कुछ समझकर भोजन देता है । ज्ञानी और अज्ञानीकी वृत्तिमे यही अन्तर है । ज्ञानी आत्मा कल्याणके लिए जीता है पर अज्ञानी आत्मा खानेके लिए जीता है । तो खूब खावो । यह भी खानेको मिले खूब विकल्प बनाकर मौज मानकर अपना जीवन व्यतीत करते है । एक कुत्ता और शेर दोनो जानवरोको तो जानते होंगे ? कुत्ता कितना उपकारी जानवर है, वह रोटीके दो टुकडोंमे कितनी रात दिन सेवा करता है, बडे विनयसे रहेगा, चोरोसे रक्षा करेगा । और सिंहको देखो वह कितना उपकारी जीव है कि जिसके देखनेसे मनुष्य जान छोडता है, कहो वह शेर खा भी डाले । तो दोनों जानवरोमे अच्छा कौन जानवर है कुत्ता । क्योकि कुत्ता बडा उपकारी है, विनयशील है । शेर तो दूसरोकी जान भी खतम कर देता है । पर किसी मनुष्यकी अगर तारीफ करो । अगर कहो कि फलाने सेठ तो कुत्तेके समान है । वैसे कुत्ता बडा उपकारो जानवर होता है, इसमे प्रशसा ही सेठकी हुई, पर सेठ खुश होगे क्या ? नही । सेठ जी गाली देने लगेंगे । और अगर सेठ जी का यह कह दो कि सेठ जी तो शेरके समान है तो यद्यपि यह गाली हुई क्योकि शेर बडा उपकारी होता है, दूसरोकी जान भी लेता है पर सेठ जी उसे सुनकर खुश होगे । और कुत्तेके समान कहनेमे कोई नही सुनना चाहता । वैसे कुत्ता बडा उपकारी है, रोटीके दो टुकडो पर बडा उपकार करता है पर उसकी उपमा कोई नही सुनना चाहते हैं । यह फर्क क्यो आ गया ? यह फर्क है विवेक और अविवेकका । कुत्तेमे अनेक गुण है पर एक अविवेक है । उसे लाठीसे मारा जाय तो वह लाठीको चबाने लगता है । वह समझता है कि लाठी ही मेरा दुश्मन है, वह यह नही समझता है कि मुझे मारने वाला मनुष्य है । और शेरको लाठीसे मारो, तलवारसे मारो तो वह तलवार और लाठीसे न बोलकर मनुष्य पर ही प्रहार करता है । क्योकि उसके विवेक है, वह जानता है कि मेरा मारने वाला मनुष्य है । इसी प्रकारसे अविवेककी पुरुष यह सोचता है कि मेरे ऊपर सकट डालने वाले ये दूसरे हैं पर विवेकी पुरुष यह जानता है कि मेरे ऊपर सकट मेरे ही भावोसे होते हैं । वे कर्म भी मेरे ही द्वारा उपार्जित है । इसलिए मेरे दु खका कारण मैं ही बना करता हू । दूसरे जीव मेरे दु ख के कारण नही हैं । कोई यह निश्चय कर ले कि मेरे अपराधमे ही मुझे दु ख होने है तो उसे इस जीवनमे बहुत शाति है । और अगर यह निश्चय है कि मुझे दु ख दूसरोके द्वारा होते हैं तो अशांति है तो इसमे यह तात्पर्य बताया है कि देहमें बसता हुआ भी यह आत्मा निश्चयसे देहरूप नही होता है । ऐसा ही अपने अस्तित्वसे रचा गया यह निज शुद्ध आत्मतत्त्व उपादेय है ।

जीवाजीवमएक्कु करि लक्खण भेए भेउ ।
जो परु सो भणमि मुणि आपा अप्पु अभेउ ॥३०॥

जीव और अजीवको एक न कर डालो, इसी बातको इस दोहेमे कह रहे है। जीव इस शरीरको लक्ष्यमे लेकर यही मानता है कि मैं यह शरीर ही जीव हू तो इसका अर्थ है कि जीव और अजीवको एक न कर डालो। सो जीव और अजीवमे एक मत बनाओ। अपना ज्ञान जगाये रहो, लक्षणके भेदसे उनमे भेद है क्योंकि जीवका लक्षण तो रूप रस गध स्पर्श रहित शुद्ध चैतन्य है और अजीवका स्वरूप जिसमे चेतन नही हैं सो अजीव है। कुन्दकुन्द स्वामी ने भी बताया है कि जिसमे रूप नही, रस नही, गध नही, स्पर्श नही किन्तु चेतना गुण है शब्द भी नही है और किसी चिन्हके द्वारा पहिचाना नही जाता, कोई एक निर्दिष्ट आकार नही। कोई जीवका निजी आकार है क्या? अगर जीवका निजी कोई आकार होता तो कल्पना करो कि साप चीटी आदि जीवोंर कैसे पहुच जाय? जीवका निजी आकार कुछ नही है। वह तो जिस शरीरमे जाता है उस ही शरीर रूप हो जाता है। जैसा लम्बा चौडा शरीरका आकार हो वैसा ही लम्बा चौडा आकार उस जीवके आकारमें हो जाता है। बडे शरीर वाला जीव मरकर छोटे शरीर वाले जीवमे जाय तो आत्माके प्रदेश सकुचित होकर उस शरीर प्रमाण हो जायेगे। दो ही बातें कुन्द स्वामीने कही कि उसमे पुद्गलका कोई गुण नही, पर्याय नही और किसी चिन्हके द्वारा ज्ञानमे नही आता और निजी आकार भी जिसका कुछ नही है ऐसा तो जीवका लक्षण है और जीवके इस स्वरूपसे विपरीत जीवका लक्षण है। वे अजीव दो किस्मके हैं।

जीव सम्बन्धी मत और एक जीव सम्बन्ध रहित। जैसेके शरीर है, राग है, विकार है ये सब जीव सम्बन्धी अजीव है। जिसमे शुद्धचैतन्य नही है वह अजीव कहलाता है। देहका शुद्धचैतन्यस्वरूप है? नही है। देह का स्वभाव तो रस रूप गध रहित है। तो वह पुद्गल नही हो सकता और रागादिक भाव यद्यपि जीवके परिणमन है फिर भी वे पुद्गलोंका निमित्त पाय बिना नही होते। इसलिए स्वभावसे तो उत्पन्न होता नही सो जीवको तो कहाये ही नही और उपाधिके सम्बन्धसे तो अजीव कहलाता है। देहका शुद्ध चैतन्यस्वरूप है? नही है। देहका स्वभाव तो रस रूप गध रहित है तो वह पुद्गल नही हो सकता और रागादिक भाव यद्यपि जीवके परिणमन है फिर भी वे पुद्गलोंका निमित्त पाये बिना नही होते। इसलिए स्वभावसे तो उत्पन्न होता नही सो जीवसे तो कहाये ही नही और उपाधिके सम्बन्धसे तो अजीव कहलाया। शुद्ध चैतन्यस्वरूप जिसमे न पाया जाय उसे अजीव कहते है। शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अर्थ है कि जिसमे रागद्वेष नही मोह नही, कल्पनाए नही, केवल अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव है। इतना ही मात्र जीवका लक्षण है और उसमे ही अपनी शरण माना है कि वह शुद्ध चैतन्यस्वरूप मेरे निगाहमे हो। यही धर्मका पालन है तो जीव सम्बन्धी अजीव क्या? शरीर और रागादिक भाव और अजीव सम्बन्ध अजीव क्या है? पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन ५ प्रकारके जीवद्रव्योमे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य तो एक ही एक हैं और कालद्रव्य अनगिनते है। लोकाकाशके एक-एक द्रव्यपर ठहरे हैं और पुद्गल-द्रव्य अनन्त हैं। एक छोटा तिनका या कङ्कड होवे तो सब अजीव हैं ही, पर मेरे लिए तो दुनियामे जितने जीव हैं वे भी सब अजीव हैं। वे जीव मैं नही हू। मुझमे जो रागादिक विकार उत्पन्न होते हैं वे विकार भी जीव नही है। मैं तो शुद्ध चेतनमात्र एक अचेतन सत् हू। ऐसा अपने आपके आत्मामे विश्वास हो तो बहुत निकटमे ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। तो जीवके लक्षणसे अजीवका लक्षण न्यारा है। और अजीवसे न्यारा अपने जीवको पहिचान लिया तो समझो कि हमने सब कुछ पा लिया। मोहसे जिनमे कल्पनाए कर ली कि यह मेरा है, स्त्री है उनकी चाकरी भी अच्छी करली लेकिन लाभ कुछ नही मिलेगा। ज्योंके त्यों दीन गरीब भिखारी बने रहे, मर गए, नया जन्म पा लिया, सारी बातें मोह ही मोहकी करते रहे। जन्ममरणका यही चक्र चलता रहा इसलिए इस चेतनाको पहिचान कर मोहमे शिथिलता करना चाहिए। सो मोह शिथिल तभी हो सकता है जब यह समझमे आ जाय कि मै तो मात्र शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू, औरोसे मेरा वास्ता नही है और जो पदार्थ मेरे साथ है वे साथ रहे किन्तु उनसे मेरा कुछ हित

नही है हमारा हित तो अपने आपके शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी दष्टिमे है वे मैं नहीं हू। जिसमे माना कि यह मैं हू तो उनमे वेदना होगी मुक्ति नही हो सकती है। जैसे घरमे दो चार जीवोको मान लिया कि ये मैं हू तो उनके मोहमे आकर यह जीव केवल अपना श्रम ही श्रम करेगा। अपनेको शातिमय नही रख सकता। शातिका मार्ग है सर्वप्रथम मोहका छूटना। मोह छूटे ता शाति मिले।

अब कोई कहे कि मोह तो साधुके ही छूटता है गृहस्थके नही छूटता है तो यह बात बिल्कुल गलत है। मोह तो गृहस्थके भी छूटता है किन्तु मोह छोडनेमे ज्ञानप्रकाश की ही जरुरत है। चारित्र और व्रत तप आदि ये न हो तो भी मोह छूट सकता है। मोह माने क्या है? परवस्तुमे एक कल्पना कर लेना कि यह मैं हू अथवा यह मेरा है। बस यह बात छूट गई तो मोह छूट गया। मोह छुटाना तो सरल है। चाहे राग क्रमसे छूटें किन्तु मोह शीघ्र छूट सकता है। और यह एक ही मात्र उपायकी चीज है कि मोह तो नियमसे छोड दो। यह बात आप सब गृहस्थों से कही जा रही है। इसमे यह शका न करो कि गहस्थीमे मोह छूटा नहीं करता। मोह छोड दो तो धीरे धीरे राग भी शिथिल हो जायगा। और जब जो हो सो हो पर मोह रच भी न रहे। गृहस्थावस्थामे भी रहते हुए यह तो विश्वास बनाए रहो कि जितने परिवारके जीवोका समागम हुआ है उनका सत् उनसे ही है और वे खुद अपने आपम परिणमते रहते है। उनके साथ उनका भाग्य है। उनका सुख दुख वे अकेले ही भोगते हैं किस गतिमे आये हैं यह उनकी चीज है, जिस गतिमे जायेंगे। आपका किसी भी परजीवमे अधिकार नही है कि मैं इनका इस प्रकारका परिणाम बनाए हू। स्त्रीका कषाय और प्रकारका, पुत्रका कषाय और प्रकारका उनका ही कषाय नहीं मिल सकता। अपने ही परिणामोके अनुकूल दूसरोको नही परिणमा सकते फिर और जीवोको तो परिणमाओगे ही क्या? तो तब मेरा कही कुछ नही है ऐसा ही विश्वास बना लो कि मैं सबपदार्थोसे न्यारा केवल चेतन स्वभाव मात्र हू। ये मुझमे जो रागादिक भाव होते हैं ये भी तो सदा नही रहते। होते है मिट जाते हैं और होते हैं अपनेको बर्बाद करनके लिए होते है पर उपाधिका निमित्त पाकर होते हैं। इसलिए भैया इतनी हिम्मत अन्तरमे बनाओ कि अन्तर यह अनुभव करने लगे कि मेरा तो मात्र मैं ही हू। मुझसे सभी भिन्न हैं। जो कुछ है वह मेरा नही है। यही सम्बधकी बात। सो जब तक राग है तब तक सम्बध है। मोह छूटना सच्चे ज्ञानपर निर्भर है। स्वरूप न्यारा है मेरा स्वरूप न्यारा है और जितने भी परद्रव्य हैं उनका स्वरूप न्यारा है। इतनी बात समझलो तो इसीका नाम मोहका त्याग है। अगर यही बात नही बन सकती तो फिर कल्याणकी और क्या बात हो सकती है? ये तो रागादिक तत्व आत्मामे होते हैं फिर भी आत्माके स्वरूपसे भिन्न हैं। इस प्रकरणसे क्या जानना है कि शुद्ध लक्षणमे सत् जो शुद्ध आत्मस्वरूप है, वह ही उपादेय है। यह भेद विज्ञानमे बताया जा रहा है कि मैं वास्तवमे क्या हू? यह जाने बिना धर्म नही हो सकेगा। किसे धर्म करना है? कहा धर्म हुआ करता है? इसका ही पता नही है तो धर्म क्या है? इसलिए मोक्षकी चाह करने वाले धर्ममें प्रगति चाहने वाले पुरुष सबसे पहिले यह निर्णय करे कि मैं क्या हू? अच्छा मैं क्या हू? इसके जाननेका एक उपाय बतलायें। अच्छा पहिले तुम यही बतलावो कि तुम सदा रहना चाहते हो या चाहते हो कि मैं किसी दिन बिल्कुल मिट जाऊ, नष्ट हो जाऊ? बतलावो क्या चाहते हो? अगर धनी हो तो यह जानते हो कि मैं सदा धनी रहा हू। अगर तुम्हारा सत् है, अस्तित्व है तो यह चाहते हो ना कि मेरा अस्तित्व सदा रहा है। जीवकी अत से यह चाह होती है कि मैं सदा रहा हू, मिट न जाऊ। तो समझो कि जीव वही है जो सदा रहता हो मिटता नही है, बस एक पहिचान हाथमे ले लो। मैं वह हू जिस रूपमे सदा रहा हू, मैं मिटता नही हू, बस इतना सा एक सूत्र बना लो अपनी हिन्दीमे। मैं वह हू जो ध्रुव हू। जो सदा रहा हू। मैं मिटने वाला नही हू। बस इस आधार पर अब सब चीजोंकी परीक्षा करलो। क्या यह धन वैभव मैं हू? मैंने अभी क्या लक्षण बताया? जो मेरे साथ सदा रहता हो और मिटने वाला न हो। यह धन वैभव तो मिटने वाला है। नियमसे मिटेगा। आपकी जिन्दगीमे मिट जाय या आपकी जिन्दगी पूरी पूरी करके मरण हो जाय तब मिट जाय पर धन वैभवका प्रसग

नियमसे मिटने वाला है। वह बुद्धिमान् पुरुष है जो जानता है कि यह जायदाद छूट जायगा, तो वह अपने जीवन मे ही छोडनेका अभ्यास करता है।

वह मैं हू जो सदा काल रहता हू, ध्रुव हू, तो जो शुद्ध लक्षण करके संयुक्त है केवल चैतन्यमात्र है वह तो मैं आत्मा हू और वह ही उपादेय है। मेरे अलावा और चीजे रहते हुए भी अन्तरगमे यह समझो कि ये सब हेय हैं। छूट जायेंगे और छोडने के योग्य हैं भेद विज्ञान असलमे किया जाता है स्वभावसे और अभावसे। यह बात जल्दी समझमे आ जायगी कि मकान मेरा नही है क्योंकि मकान दूसरी जगह खडा है, मैं इस जगह बैठा हू। यह बात भी जल्दी समझमे आ जायगी कि यह शरीर मे नही हू। दूसरो को देखते है ना कि मर जाते है, शरीर तो जलाने जाते हैं, तो मैं शरीर नही हू, यह भेद विज्ञान भी सुगमतासे हो जाता है। और मैं रागादिक विकार नही हू यह भेद विज्ञान बडी कठिनाईसे होता है। यह जीव वास्तव मे किसी परपदार्थमे राग नही करता चाहे मिथ्या दृष्टी क्यो न हो किन्तु परपदार्थोके सम्बन्धमे जो उसने कल्पनाए बनाई, राग बनाया, कुछ क्रिया नही किन्तु परपदार्थोका ख्याल करके राग भर बनाया है उस रागमे यह जीव मस्त है, परपदार्थोमे यह जीव नही लगा है, यह निश्चयसे बात जानो। कोई भी जीव किसी पदार्थमे नहीं लगा है किन्तु परपदार्थोके बारेमे जो विकल्प बनाया है, उन विकल्पोमे राग किए हुए है। सो परपदार्थोका छोडना क्या है? जो अपने आपमे विकल्प बनाया है उन रागोको छोडना है। यह राग कैसे छूटे? मोह मिटने पर छूटेगा। मोह कैसे मिटेगा? सबका यथार्थ ज्ञान होने पर मोह मिटेगा। सबका यथार्थ ज्ञान कैसे होगा? उन सबके स्वरूपको समझनेमे उपयोग लगाओ तो मिटेगा। सबका स्वरूप कैसा है? सो देख लो, स्वतन्त्र है कि नहीं। तुम्हारे जीवन तो तुम्हारे बच्चेका भी परिणाम नही, ऊधम न करो। अगर ऐसा चित्तमे ख्याल सूझता रहता तो वह ऊधम करनेसे रुकता नही है।

आपका अधिकार तो जिसको आप अपना प्रेमी समझते हो उस पर भी नही है। वे अत्यन्त भिन्न है। रच भी सम्बन्ध नही है। उनका परिणमन भी आपके हाथ नही है, आपका अन्य पदार्थोमे सम्बन्ध ही क्या होगा? सो किसी क्षण शुद्ध हृदय करके असार और असरण पदार्थोका विकल्प त्याग करके अपने आपके शुद्ध ज्ञानके होनेका दर्शन करो तो यही शान्तिका उपाय है ऐसी श्रद्धाके रखते हुए गृहस्थोचित कार्य करो, धन कमालो मगर कमानेका टाइम रखो कि १० बजेसे ४ बजे तक। जितना समय आप उचित समझते हो व्यापारमे उतना समय रखो, पर २४ घंटे तो न फसे रहो। यदि २४ घंटे विकल्पोमे ही उपयोग लगाया तो फिर मरण तो होगा ही। मरणके बाद फिर क्या हाथ आयगा? जैसा बनना होगा वैसा बनना पडेगा। और धर्ममे समय लगावो तो कुछ हाथ भी लगेगा। धर्म मे चाहे दो तीन घंटेका ही समय लगावो मगर वह समय सुव्यवस्थित रूपसे लगाना चाहिए। धर्मके समयमे धनका परिवारका, किसीका भी विकल्प न रखो। धर्म करना है मुझे अपने उत्थानका कार्य करना है, मुझे केवल निजी-ज्ञान रसका पान करना है विषय विकल्प चाह आदिक जो विकार है तो उन विकारोको अपनेमे नही आने देना है, सो यह हिम्मत तभी बन पायगी जब यह ज्ञान हो जायगा कि मैं मात्र शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू, इसमे कोई दूसरी चीज नही। इसी तरह पालन पोषणका काम हो तो समय निश्चित रखो, प्रयोजन यह है कि धर्मका समय निश्चत रखो और उसमे कुछ विकल्प जाल न ला करके एक क्षणसे धर्म कार्य करो। उस धर्मके कार्यमे कई बाते लगा लो तो आपका मन लगेगा। थोडा देवदर्शनमे और देवभक्तिमे जरा मन लगावो। अब वह ही समय पूजनका है वह ही समय दर्शनका है पूजन करने वाले जोर जोरसे पढते है तो इसका अर्थ है कि दर्शन करने वालो पर दया नही रख रहे है। आप सोचें कि जिसमे इतना प्रेम नही है कि दर्शन करने वाले भी आ रहे है इनका भी उपयोग शुद्ध रहे और प्रभुके दर्शनका लाभ उठायें, इतनी दया जब अपने धर्मात्मा जनोपर नही है तो हमे बतलावो कि चिल्लानेसे भगवान्‌के पास शब्द नही पहुच जायेंगे। पूजा तो अपने भावोकी चीज है। इसी तरह जब दर्शन करने वाले भी जब धीरे-धीरे दर्शन

पाठ पढ़ते हैं तो वे अपना पूरा नियम बनाए । सो प्रभुके गुणोंका स्मरण करके उनके स्वरूपसे अपने स्वरूपकी तुलना करो पर विकल्प छोड़कर केवलज्ञान प्रकाश स्वरूपको जानो सो दर्शन है । गुरुवोंकी उपासना करो, गुरुवोंका सत्संग करो । उनसे कोई शिक्षा लो, यह गुरु उपासना है । ज्ञान कोई प्रकारका अपने धर्मका पालन करो, स्वाध्याय करो, एकचित्त होकर किसी एक ग्रन्थका विधिपूर्वक क्रमसे स्वाध्याय करो । समझमें आवे तो अपनी डायरीमें नोट कर लो।

कोई विवेक ज्ञान बल मिले तब ममता को और संयम करो । जो सुगमतासे घर पर खानेको मिलता या उसपर सन्तोष रहे और अपने आपमें इच्छा न बनाओ कि मैं भी कोई भोग भोगू यही संयम है । और कोई इच्छा होती हो तो तुरत उसके खिलाफ बन जावो । खीर खानेकी इच्छा हुई तो खीरका त्याग है । इसी प्रकार अपने मनका नियंत्रण करनेकी कोशिश करो और गृहस्थके सबसे बड़े तप तो यही है कि जो पुण्योदयसे मिला उसमें ही दान पुण्य कर लो, अपने खाने पीनेका विभाग रखो, कर्ज लेकर न खावो स्वादके लोभमें आकर खर्च मत बढावो । सात्विक रहन सहनमें रहो । ज्यादा पैसा है तो परोपकार करो । जो जो तुम्हें मिला है उसपर यह विश्वास रखो कि ये सब मिट जाने वाली चीजें हैं ये ही तो बड़े तप हैं । एक कर्तव्य है दानका । अपने कुटुम्ब पर जितना खर्च होता है उससे कम उतना दान तो दुनियाके और सब जीवोंमें करो । सारा श्रम केवल माने हुए घरके चार जीवों पर होता है तो यह मोह नहीं है तो और क्या है ? और जीवोंको भी तो देखो, सबका स्वरूप एक है तो इसी प्रकार अपनी शक्ति माफिक धर्मकाम करते हुए अपने इस जीवनको धर्मयुक्त बनाओ ।

हम आप जितने भी जीव हैं उन सबकी एक ही अभिलाषा है कि समस्त दुःखोंसे छूट जावें । तो हम दुःखों से छूटना चाहते हैं तो दुःखोंको ही तो जानें कि दुःख क्या है ? कोई पुरुष दुःखको ही सुख मान ले तो फिर उनसे छूटनेकी इच्छा क्यों करेगा ? इसलिए दुःख क्या है इसकी पहिचान भली प्रकारसे समझ लेना चाहिए । दुःख क्या है, जिसमें क्षोभ हो वह दुःख । अब क्षोभ उपसर्गके समय भी होता है । कोई कभी विषयोंमें बाधा डाले उसमें भी होता है । सो ये सब बातें दुःख हैं तो दुनिया जानती है कि अगर किसी प्रकारके विषयोंके भोगनेका संकट किया है तो वहा भी क्षोभ होता है और किसी विषयको भोग रहे हो तो वहा भी क्षोभ होता है । बढिया भोजन जिमें बर्फी पेडा कह लो । अब भी पेडा बढ़िया भोजन तो है नहीं । कही सुना है कि कोई खद्दी खोवा नही बना सकता है, यह सरकार प्रतिबंध लगावेगी । जीवोंकी आदत है कि स्वादके लिए स्वादिष्ट चीजोंको भी खराब कर दे ।

यदि साग है तो उसमें नमक मिर्च डालकर खाते हैं, दाल जो होती है उसका छिलका बड़ा स्वास्थ्यप्रद होता है पर स्वादके लिए उसे कूटकर छिलका निकालकर खाते हैं । अच्छा ये जो स्वादके लिए पेडा बर्फी लाते हैं वे भी आनन्दमें नही खाते हैं, उनके खानेमें भी क्षोभ होता है । कोई मनुष्य इन्हे शांतिसे नहीं खा सकता है । शांति हो तो वहा प्रवृत्तिका काम ही क्या है । क्षोभ होता है विषयोंकी भक्तिमें भी क्षोभ होता है और विषय न मिलें और इच्छा बनी हो तो वहा भी क्षोभ होता है । जहा जहा क्षोभ है वहा वहा दुःख है । हमें दुःखोंसे छूटना है तो हमारा भाव यह होना चाहिए कि मुझे इन परसे छूटना है । चाह विषयोंकी हो, इज्जतकी हो, प्रतिष्ठाकी हो, चार लोगो मे हम भले जचे, हमारी इज्जत हो इन सबसे छूटना है । इस प्रकारकी भावना हो । गृहस्थावस्थामे भी रहकर सच्ची बात तो जानना चाहिए जितनी पूरी बातें साधु जानते हैं । हम बराबर शुद्धचारित्र गृहस्थावस्थामे नहीं पाल सकते हैं मगर इतनी बात जाननेमे आ जाये कि मैं एक शुद्ध ज्ञायक हू । जानना तो ज्ञान गुणका काम है । ज्ञान हममें भी है, साधुमे भी है । ज्ञानमे हम पूरा सही जानकर और जितने ख्याल है उन सब ख्यालोंको गलत मानकर हमें दुःखोंसे छूटना है । तो दुःख क्या है ? किसी भी पदार्थका ख्याल हो रहा हो तो वह दुःखोंमें शामिल है । हम क्यो ५० पदार्थोंमें से ४० को छोडकर १० का ख्याल करते हैं ? ख्याल करते हो तो ५० का करो । नही करना है तो एकका भी न करो । जगत्के अनन्तजीवोंमे से तुम घरके १०–५ जीवोंका ही ख्याल क्यो करो ? ख्याल करते हो तो सबका

करो और नही करते हो तो एकका भी न करो। जो यह ख्याल होता है यह साबित करता है कि खनके अन्दर राग है, इच्छा है, मोह है तो जब तक परवस्तुवोका हमे ख्याल है, किन्ही बाह्य पदार्थोकी हमे इच्छा है तब तक हम दुःखी हैं। हमे दुःखोसे छूटना है इसका अर्थ यह है कि हमे शरीरादिक बाह्य पदार्थोकी अभिलाषासे छूटना है। जो बाह्य पदार्थोका अभिलाषा करता है उस जीवको कहते हैं वहिरात्मा और जो जीव अतरगमे वाह्य पदार्थोकी रुचि नही करता है किन्तु अपने ज्ञानस्वभावकी रुचि करता है उसको कहते है अतरात्मा और जो अपने ज्ञानस्वभावकी आराधना करके उपासना करके परम हो जाता है, पूर्ण विकाश वाला हो जाता है, समस्त विश्वका ज्ञाता हो जाता है उसे कहते है परमात्मा। जीव तीन प्रकारके होते हैं। एक हो गया वहिरात्मा, एक हो गया अतरात्मा और एक हो गया परमात्मा। बहिरात्मा वह है जिसकी रुचि बाहरमे भी होती है। कोई धर्मपर सकट नही है कदाचित् धर्मपर सकट आये तो घरकी भी आप परवाह न करके धर्मकी रक्षामे बैठ जाते हैं। अभी देख लो किसी साधुको आहार करानेकी इच्छा हुई तो खाना शुद्ध बनाते हैं और आहारको शुद्ध बनानेका भाव होता है उस समय यदि बच्चा भी रोता है तो यही कहते हैं अभी ठहर जावो आधा घटा, एक घटा। यह धर्मकी रुचिका द्योतक तो है पर कदाचित् एकदम धर्म पर पूर्ण सकट आ जाये और आपकी धन हानिकी भी बात आ जाय तो तन, मन, धन, सर्व कुछ धर्मके पीछे लगा देनेको तैयार हो जाते हो। इतना धर्मके नामपर अतरगमे साहस हो जाता है। और अपने अतरगमे ज्ञानस्वभावकी रुचि किए हुए हैं।

इस कारण वह विषयोमे लग रहा है तो भी अतरमे अरुचि है। उस अतरणके विषयोमे अरुचिके प्रसादसे यह जीव घरमे बसता हुआ भी अनेक कर्मोको क्षय कर रहा है। उस गृहस्थकी बात कह रहे हैं जिसके ज्ञान जग गया है। वह ज्ञानी गृहस्थ घरमे रहता हुआ भी कर्मोका क्षय अपनी योग्यता माफिक बराबर कर रहा है। जैसे कोई मुनीम दुकानका सर्व भार सभाल कर भी अतरणमे उसे धनके प्रति यह विश्वास है कि यह मेरा नही है। वह जानता है कि यह सब धन सेठका है। यह धन मेरा नही है। इस प्रकार ज्ञानी गृहस्थ घरमे रहता हुआ भी यह जानता है कि यह धन वैभव सब कुछ मेरा नही है। मेरा तो मात्र ज्ञानानन्द स्वभावी मैं चेतन सत् हू। ऐसी जिसकी दृष्टि होती है उसको अन्तरात्मा कहते हैं। जो भी समागम मिले हैं वे साथ तो जायेंगे नही। इतना तो सबका निर्णय है कि जिसे लाखोकी सम्पदा मिली है उसमेसे एक नया पैसा भी उसके साथ नही जायगा। जिसको जितना धन मिला है उसका एक नया पैसा भी साथ नही जायगा। गया हो किसीके साथ तो बतलाओ। आप लोगोमे से किन्हीके बाबा गुजर गए, पिता गुजर गये, चाचा गुजर गये पर किसीको क्या देखा है कि वे साथमे एक नया पैसा भी ले गये हैं? कोई कहे कि मैं इसे श्रमसे कमाता हू, इस पर तो मेरा पूरा अधिकार है, यह साथ क्यो नही जायगा? तो भाई किसीके साथ नही जायगा। जो चीज तुम्हारे साथ नही जायगी उन विषयोको अभीसे समझ लो कि ये मेरे नही है, ये वियुक्त होगे। ये मेरे साथ नही चलेंगे। ऐसे विश्वास समागमोके सम्बन्धमे हो तो कितने ही कर्मोका क्षय कर लिया। बात वही चल रही है। केवल भावोका फेर है। मिथ्यादृष्टि भी घरमे रह रहे हों, सम्यग्दृष्टि भी घरमे रह रहे हो, खाना पीना भी साथ चल रहा हो पर अतरमे इन दोनोमे अर्थात् मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टिमे महान् अन्तर हो गया है। वह मुनीम दूसरे लोगोका हिसाब बनाता हुआ कहता है कि तुम पर मेरा इतना है। तुम्हारा हमारे पास इतना आया, इतना हमने जमा कर लिया, इतना हमारा तुम पर निकलता है, वचन बोल रहा है पर भीतरकी श्रद्धा और है। भीतरमे यह श्रद्धा है कि मेरा तो इसमे कुछ नही है। यह सब सेठका है। पर वचनोसे बोल रहा है कि मेरा तुम पर इतना निकलता है। वचनोसे ऐसा कहते हुए भी मुनीमकी श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नही है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष भी जिसने यह निर्णय किया है कि एक अणुमात्र भी मेरा नही है। मेरा निज स्वरूप ही मेरा है, वह घरमे रहता हुआ यह मेरी स्त्री है, यह मेरा

घर है, यह मेरा वैभव है, यह मेरी दुकान है। इतनी बातें क्या कहनी नहीं पडती ? कहे बिना गुजारा नहीं चलता है पर कहते हुए भी यह श्रद्धा उस सम्यग्दृष्टिके बनी है कि मेरा कुछ नहीं है। जैसे आप मुसाफिरोंमे दिल्ली गये। किसी धर्मशालामे एक कमरा मिल गया, आपके प्रेमियोंको भी अलग अलग कमरे मिल गये। क्या आप उस समय यह नहीं कहते हैं कि यह मेरा कमरा है और यह कमरा आपका है अथवा यह मेरा कमरा है आप दूसरा कमरा ढूढ लें पर श्रद्धामे क्या बसा है कि मेरा तो कमरा है नहीं कल चले जायेंगे। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि घरमे रहता हुआ भी चूंकि जान रहा है कि मेरी आत्माका तो मात्रमे ही आत्मा हू, जो मेरे साथ सदामे है और सदा तक रहेगा।

इस मेरे स्वरूपके अतिरिक्त परमाणुमात्र भी मेरा नही है। जिसके ऐसा ज्ञान है ऐसा अतरात्मा गृहस्थका क्या यह नही कहता है कि यह मेरा घर है दूसरेने घर खरीद लिया है, तो क्या वह रजिष्ट्री कराने नही जाता है ? वह यह भी कहता है कि बढिया मजबूत बनाना जिसमे कोई कमी न रह जाय। होस हवासमे मैंने बेचा है, इसको अच्छी अच्छी रजिस्ट्री लिख दो। यह सब कुछ करते है फिर भी उसकी श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नही है। और कभी-कभी अपनी वृत्तियोमे उसे हसी भी आ जाती है कि मैं प्रभुके समान अनन्त ऐश्वर्यका स्वामी होकर भी छोटे-छोटे वैभवोमे कैसा लिप्त हो रहा हू। ज्ञानी अतरात्मा अपने श्रद्धानके कारण घरमे भी वह जलमे कमलकी भाति अलिप्त रहता है।

एक दृष्टात दिया है वेश्याके प्रेमका। वेश्या जिस किसी मुसाफिरको, पुरुषको, वचनोसे प्रेम दिखाती है पर वेश्याके अतरगमे क्या मुसाफिरके प्रति प्रेम है ? रच भी प्रेम नही है। केवल पैसा ठगने के लिए वचन बोलना पड रहा है। पर अतरगमे प्रेम नही है। इसी तरह केवल पद्धतिको ही देखते हैं। यह ज्ञानी गृहस्थ भी सबसे प्रेम के वचन बोलता है किन्तु क्या भीतरमे किसीके प्रति अनुराग है ? नही। वह जानता है कि मेरा आत्माका तो मात्र मैं ही हू। ऐसा ज्ञानी गृहस्थ जिसकी वृत्ति ऐसी है कि पुण्यके उदयके अनुसार आना है आयगा। उसमे ही मैं व्यवस्था बनाऊगा। मैं उससे अधिककी चाह न करुगा। मेरे पास जो धन है वह मेरी जरुरतसे ज्यादा है—ज्ञानी यह सोचता है। पर अज्ञानी यह सोचता है कि अभी मेरे पास धन इतना ही है अभी और धन आवे तब मेरा गुजारा चलेगा। किन्तु ज्ञानी सोचता है कि इतना धन भी मेरी आवश्यकतासे बहुत अधिक है। अच्छा हमे यह तो बता दो कि कितना धन हो तो गुजारा चलेगा ? कमेटी बनाकर प्रेसीडेन्ट चुनकर वोट लेकर यह निर्णय करलो कि गुजारा कितनेमे होता है। गुजारा एक गृहस्थका बढिया कितनेमें होता है, इसका निर्णय करलो। क्या निर्णय आप दे सकते हैं ? क्या ५० हजारकी जायदादमें गुजारा हो सकता है ? हमने बहुत कम सोचकर लगाया है। तो एक जो हजार-पति नही है, सैकडापति ही है और घरमें १०-५ प्राणी भी हैं तो उनका गुजारा कैसे चलता है ? उनका भी गुजारा हो रहा है ना ? ज्ञानी सोचता है कि जो मिला है वह भी जरुरतसे ज्यादा मिला है, क्योकि ऐसा न सोचे तो कोई आकर दे देगा क्या ? जैसे लोग लक्ष्मीकी मूर्ति बनाते हैं और दोनो हाथोसे रुपया टपकाते हैं ऐसा कोई नही है कि ऐसा करनेसे वह मूर्ति रुपया दे दे और न कोई ऐसा लक्ष्मी नामका देव है। इस लक्ष्मीकी पूजा कर लेनेसे उसकी उपासना कर लेनेसे क्या द्रव्य आ जायगा ? इस सनकमे रहने वाले लोगोको देखा होगा कि गरीबसे गरीब रहे। यह तो अपने निर्मल परिणामोका फल है। पूर्वमे निर्मल परिणाम किया, पुण्यका बध हुआ उदय हुआ और सर्व समागम हुए। जो मिला है वह मेरे लिए बहुत ज्यादा हो गया है—ऐसा स्वभाव होगा तो सुख होगा, सतोष होगा। इन बातोसे तरसते हैं कि मेरी इज्जत मेरी पोजीशन माफिक हो जाना चाहिए। अरे इतनी भी पोजीशनका माप भी अपनी कल्पनासे बढा लिया है। और पोजीशन मेरे अनुकूल बढ जाय यह अपने अधिकारकी बात नही है। हा ज्ञान बल बढाकर पोजीशनका विकल्प मिटालो यह आपके अधिकारकी बात है। पर दु खोसे छूटना चाहते हो तो दु खोसे छुटाने वाला जो ज्ञान है उस ज्ञानको हम अपने अन्तरमें लायें तो दु ख छूट सकते हैं। सकटमोचन ज्ञानका तो आदर

नही करते और सबटोका आश्रयभूत बाह्यपदार्थोंका आदर करें तो दु ख छूटेगे या बढेगे। इसलिए अपनेको सुखी करना चाहते है तो अपनेको एकाकी मानकर अपने ज्ञानस्वभावकी रुचि करे और जो गृहस्थ है उन्हे अपने आप अवसरविधि मिलती है उस विधिमे गुजारा चलता है। ऐसा गृहस्थीमे रहकर भी सतोष कर सकें ऐसा अतरगज्ञान होता है। यह अतरात्मा गृहस्थी जब वैराग्यमे बढता है तब अपने समागमोका त्याग करता है। गहस्थ समागमका त्याग करना बहुत ऊ चा सगुन है क्योकि ज्ञानदृष्टि साथ हो तो वह अनेक सकटोसे छूटकर ज्ञानरसका पान व अलौकिक आनन्दको लेना चाहते है। आनन्द तो अपने ज्ञानमे है। बाह्यपदार्थोंमे आनन्द नही है। जब बाह्यपदार्थोंका समागम भी है तो उस समय भी आनन्द बाह्यपदार्थोंसे नही आ रहा है किन्तु अपने ज्ञानसे कल्पनाओसे आ रहा है। नही तो कोई घर लखपति करोडपति है तो उस घरके लोग क्यो दु खी हैं, लाखो करोडोका धन होकर भी वे दु खी है, किल्स रहे है, क्रोधमे भरे है। दिल नही थम सकता है। और बाजे लोग जो गरीब है और सुमतिसे रहते है तो उस सुमतिके कारण वे गरीब होकर भी सुखी है। दु ख और सुखका सम्बन्ध ज्ञानकी पद्धतिसे है। एक वृद्ध ब्राह्मण था, उसकी बुढिया स्त्री थी। एक छोटा बच्चा था और बच्चेकी स्त्री थी, चार लोग जा रहे थे। रास्तेमें एक जगल मिला तो लौटते हुए मुसाफिर उनसे बोले कि अभी जगल बहुत दूर है और वह जगल मुलखना है उसमे एक राक्षस रहता है। वह पहिले प्रश्न करता है और जो प्रश्नका उत्तर नही दे पाता है उसे खा डालता है। प्रश्न करना केवल खानेका एक बहाना मात्र है। तो चारो लौटे नही, जगलमे घुस गए। अब तो जगलमें ही डेंरा डाल दिया, रात्रिमे जागनेकी चारोने ओसरी बाध ली। पहिले पहर बुड्ढा दूसरेमें बुढिया तीसरेमे लडका और चौथे पहरमें बहू, इस तरहसे पेहरा देनेका निणय किया पहिले बुड्ढा पहरा देने लगा। राक्षस आता है और बुड्ढेसे प्रश्न करता है, एकोगोत्रे। सीधा अथ नही लगाना, वह कविता बनाता है गोत्रमे पुरुष वही एक है जो समस्त कुटुम्बका पोषण करे। उत्तर मिलते ही खाना तो दूर रहा और इनाम देकर चला गया। दूसरे समयमे बुढिया पहरा देने लगी, राक्षस आया और प्रश्न करता है सर्वस्य द्वे' तो उसकी कविता वह बुढिया बनाती है 'सर्वस्य द्वे सुमतिकुमति सम्पदापत्तिहेतु।' सब जीवोकी ये दो बाते सम्पत्ति और विपत्तिके कारण है। कौनसी दो बाते ? सुमति और कुमति। जहा सुमति तह सम्पति नाना, जहा कुमति तह विपत्ति निधाना। भैया यह परिग्रह कोई चीज नही है, मनुष्योको तुच्छ समझकर उसे ठुकराना नही चाहिए। सुमतिपूवक रहना चाहिए। एक सादगी पुरुष जो होता है वह किसी परिग्रहकी कोई वाछा नही रखता है। वह जानता है कि जो परिग्रहकी वस्तुए हैं उनमें सरकार दुगुना टैक्स लगायेगी। खैर न्यारा रहकर भी प्रीति हो, एकमे रहकर भी प्रीति हो जिसमे धर्म है, समता है, सुमति है वहा पर कोई आपदा नही है। अब वह राक्षस लडकेकी जब बारी आती है तो उससे प्रश्न करता है। 'वृद्धो यूना' लडकेने उत्तर दिया—सह परिचयात् त्यज्यते कामिनिभि।

स्त्री हो युवती और पति हो बूढा तो उस युवतीका कदाचित् किसी अन्य पुरुषसे अन्तरगसे प्रेम हो जाय तो वह वृद्ध पुरुषको योही छोड देती है। उसे भी राक्षसने इनाम दिया। अब चौथी बार बहूने पहरा दिया, राक्षस आया उससे यह प्रश्न किया 'स्त्री पुवच्च' ? बहूने उत्तर दिया—प्रभवति यदा तद्धि गेह विनष्टम्। जिस घरमे स्त्री पुरुषकी तरह स्वच्छन्द अर्थात् चताचाली हो जाती है वह घर नष्ट हो जाता है, उसे भी राक्षस इनाम देकर चला गया। तो देखो ज्ञानमें इतना बल है कि सकटोके बीच भी रहकर सुखी है, और कोई मनुष्यके दु खोके साधन हैं भी कल्पना करके दु खी बनते रहते हैं। ज्ञानमे ही सामर्थ्य है कि सुखी हो लें अथवा दु खी हो ले। तो हमे सच्चे ज्ञानका भजन करना है। और इन बाह्य चिंताओसे यह जगत रुलना फिरता है। अरे बाह्यपदार्थोंकी उपेक्षा करदो, उनको पुण्य पर छोड दो। जो होना होगा सो होगा। जो ज्ञानी पुरुष है, जो ज्ञानी गृहस्थ है वह भी छोड देता है। बहुतसे तो अभी मिलेंगे। डबरामे राजाराम है परवार जातिके नियम है कि दुकानमे ५०० रुपयाका जब बिक जाय तब दुकान बद करके और अन्य काम करना, पूजन करना, स्वाध्याय करना आदि, दुकान पर बहुतसे ग्राहक ख

रहते हैं और वे विलम्ब करके बैठे रहते हैं। ५०० का सामान तीन चार घटेमे बिक जाय बस बद कर दिया। इतनी उनको ख्याति है कि थोडी ही देरमे ५०० का बिक जाता है। बस वे दुकान बद करके पूजा स्वाध्याय आदि करने चले जाते हैं। तो पुण्य पर छोडा कि नही छोडा ? तो इन बाह्य बातोको पुण्यपर छोडो, अपने हितकी बातको अपने ज्ञान पर छोडो। पदार्थोंसे न्यारा और अपने गुणोसे तन्मयको सिद्ध कहते हैं। याने मोहमे जीव अपनेको और अजीवमें मिला हुआ कर देता है। वह मिला हुआ कल्पनामे न रहे तो सिद्धआत्माका ज्ञान होता है अर्थात् मैं खालिस आत्मा इसके साथ कुछ भी सयोग लगा हो उसको न देखकर केवल अपने आपके सत्यके कारण जो मैं हू मुझमे है, केवल उसको निहारना सो सिद्ध आत्मा कहलाता है। वह सिद्ध आत्मा कैसा है ? उसका वणन इस दोहेमें किया जा रहा है—

अमणु अणिदिय णाणमउ मुत्ति विरहिउ चिमित्तु।
अप्पा इ दिय विसउ णवि ललवणु एहु विसन्तु ॥३१॥

कहते हैं कि यह आत्मा मनरहित है, मन जुदा चीज है और यह मैं आत्मा जुदा पदार्थ हू। मन दो प्रकार के होते हैं। एक द्रव्यमन और दूसरा भावमन। द्रव्यमन तो पौद्गलिक है। जैसे ये पचेन्द्रियां बनी हैं तो ये इन्द्रियां पौद्गलिक हैं, पौद्गलिक परमाणुवोसे रची हुई हैं। इसी प्रकार मनको कहते हैं अत करण अर्थात् अतरगकी इन्द्रिया। पचेन्द्रियको कहते हैं बाह्यकरण और मनको कहते हैं अत करण। दू सरी मनमे सात इन्द्रिया हैं जो आत्मामे दिख नही सकती हैं किन्तु अन्तरकी इन्द्रिया हैं, उनका निमित्त है द्रव्यमन और जैसे इन बाहरी इन्द्रियोके निमित्तसे हम ज्ञान किया करते हैं, आखोके निमित्तसे इस रूपका ज्ञान करते हैं, कणके निमित्तमे हम शब्दोका ज्ञान करते हैं, घ्राण के निमितसे हम गधका ज्ञान करते हैं, रसनाके निमित्तसे हम रसका और समूचे शरीर स्पर्शनके निमित्तसे स्पशनका ज्ञान करते हैं। तो इन इन्द्रियोके निमित्तसे जो ज्ञान होता है वे भावेन्द्रिया कहलाती हैं। इसी प्रकार इस द्रव्यमनके निमित्तसे जो कल्पना बनती है चिनन चलता है, विचारधारायें हुआ करती है वे सब कहलाते हैं भाव मन। यह मैं आत्मा इन द्रव्येन्द्रियोसे परे हू, भावेन्द्रियोसे परे हू, द्रव्यमनसे परे हू और भावमनसे भी परे हू। मनका काम है विकल्पजालोको बनाना, किन्तु मेरा स्वरूप है परमज्ञानस्वभावका। मेरे स्वरूपमे विकल्प जाल नही है और पौद्गलिक यह मन भी मेरा नही है। मैं मनरहित मात्र चैतन्यस्वरूप हू। मनका काम है विकल्पजाल बुनना। विषयोके साधनो मे उपयोग लगाना। विषयोके साधनोकी सचयबुद्धि करना—ये सब मनके काम है पर मैं स्वत सिद्ध हू, स्वतत्र हू। मेरा कार्य है ज्ञाता दृष्टा रहना। मैं मनरहित हू और इन्द्रिय समूहसे भी रहित हू, अत्यन्त अतीन्द्रिय हू। यह आत्मा अतीन्द्रिय है। उससे उल्टा ये इन्द्रिय लग गयी हैं। क्लेश कभी होते हैं तो उल्टे सगसे होते हैं, इस चेतनका सम्बन्ध किसी दूसरे पदार्थोंसे तो होता नही है इसका सम्बन्ध चेतनसे रहता है और अचेतन तो इसके उल्टा चीज है। उस अचेतनके सगसे उपाधिसे जो विचार बनता है वह भी अचेतन विचार बनता है। मैं आत्मा इन्द्रियोसे परे हू। बतलावो पिता पुत्रकी आत्मासे प्रेम करता है या पुत्रके शरीरसे प्रेम करता है ? यदि पिता पुत्रकी आत्मामे प्रेम करता हो तो जिस प्रकारसे आत्माको भला सकते हो उसी प्रकारका यत्न यहा पिता करता। पुत्रकी आत्माका भला कैसे हो सकता है ? उसे बचपनसे धर्म ज्ञानमे लगावे, अध्यात्मज्ञानमे लगावे और उसको साधु जनोका सत्सग अथवा धार्मिक योजनाओमे लगाना इससे पुत्रकी आत्माका भला है। पर मा व पिताकी इच्छा इसके विपरीत रहती है कि यह कमाने लायक बने, इसकी शादी करदें और इसकी सतानोको परम्परा चले। पुत्रकी आत्मासे तो प्यार यहा किसीको नही है। तो क्या पुत्रके शरीरसे प्रेम है ? शरीरमे प्रेम होता तो पुत्रका आत्मा खोटे परिणाम वाला बन जाय, खोटे आचार वाला बन जाय तब वह शरीर नही रुचता अथवा मृत्यु होनेके बाद इस शरीरको जला देनेके यत्नमे क्यो रहते ? शरीरसे भी प्रेम नही। तब फिर किससे प्रेम है ? न आत्मासे प्रेम है, न शरीरसे प्रेम है फिर

प्रेम रहा अपने कषायोसे। दूसरोसे प्रेम नही है किसीका। प्रत्येक व्यक्तिका अपने कषायोसे प्रेम हुआ करता है। छोटे बच्चेको हाथमे लेकर ऊचे उठाते है खिलानेके लिए ना ? ऊचे उठाया फिर नीचे लिया। बच्चा ऊचा उठता है, गिरता है तो डरके मारे मुह बा देता है और खिलाने वाले समझते है कि इसे आनन्द आ रहा है, हसी आ रही है। उसके दु खोको तो नही गिना किन्तु अपने कषायोको गिना। कोई किसीसे प्रेम तीन कालमे कर ही नही सकता। जो प्रेम करते है वे अपने विचारोमे, कषायोसे, अपनी वासनामे प्रेम करते हैं। इस जीवसे प्रीति हो रही है तो अपने इन्द्रियज्ञानसे प्रीति हो रही है, पर न मैं ये इन्द्रिय हू, न इन्द्रिय ज्ञान हू। मैं तो इन्द्रियोसे परे केवल ज्ञानमय पदार्थ हू। मेरा स्वरूप क्या है ? केवलज्ञान प्रकाश। मुझमे पत्थर लोटे नही पडे हुए है। रूप रस आदि नही भरा हुआ है। मैं आकाशकी तरह अमूत एकचेतन पदार्थ हू। आकाश तो असीम है प्रदेशोमे किन्तु यह आत्मा प्रदेशोसे सीमा सहित है। जितना बडा आपका देह है उतनेमे आपका आत्मा विस्तृत है। पर हम ही आत्माको स्वभावदृष्टि मे देखें तो स्वभावमे न सीमा है न असीमा है। वह तो एक चैतन्यस्वरूप है। स्वभावकी लम्बाई चौडाई नही होती। पदार्थोंमे लम्बाई चौडाई होती है, जब हम अपने आत्माको पदाथ और द्रव्यके रूपमे देखते है तो इसका विस्तार है, सीमा है पर आत्माके स्वभावको देखते है तो उसके सीमा नही है। मनुष्यसे पूछे कि यह कितना बडा होता है तो बता देगा कि ५-७ फुटका लम्बा। और पूछे कि इस जीवको जो क्रोध आ रहा है वह कितना बडा है ? तो क्रोधके बारेमे नही कह सकते कि यह ५ फुटका क्रोध है, ७ फुटका क्रोध है। अभी तो विचारकी बात कह रहे हैं पर जो ज्ञानस्वभाव है उसको लख करके क्या कोई कह सकता है कि यह कितना बडा है ? स्वभावमे लम्बाई चौडाई नही होती है। पदार्थोंकी लम्बाई चौडाई है पर आत्मामे लम्बाई चौडाई है क्या ? यह तो इतना लम्बा चौडा है, इसमे किस प्रकारकी आदत पड गई है ? इसमे वैराग्यकी, रागकी जो आदत पड गई है उस आदतमे लम्बाई चौडाई होती है क्या ? आत्माका स्वरूप होता है विस्तार नहीं होता है। तो इस आत्माके स्वरूप पर दृष्टि देकर और फिर जो स्वरूप ज्ञात हो उसको व्यक्तिका रूप देना वही ब्रह्मवेदात कहलाता है। जैसे स्यादवादमे यह कहते हैं कि द्रव्यदृष्टि से आत्माकी सीमा क्षत्रसे सीमा है पर भावदृष्टिसे आत्मामे सीमा नही है। जैसे पहिले लोकमे व्यक्तिगत स्वरूप न्यारा न्यारा है पर इसमे जा जैनत्व है अथवा जो जाति है उसकी सीमा क्या है ? मेरी आत्माका जो स्वरूप है उसे स्वरूपदृष्टिसे लख सकते है पर और उपायोसे आत्माको नही लखा जा सकता है। यह आत्मा ज्ञानसे रचा हुआ है। जैसे अपने आपको बच्चो वाला समझोगे तो बच्चोकी फिकर करना ही पडेगा। अपनेको इन्सान समझोगे तो समाज और देशमे इन्सानियतके काम करना ही पडेगा। और कोई अपने अत मर्मको पहिचान कर ज्ञानस्वरूप देखेगा तो वह केवल जाननेका ही काम करेगा, उसके अन्य प्रवृत्ति न होगी। जब केवल जाननेका ही काम होता है तब ज्ञानका अनुभव होता है और ज्ञानके अनुभवका ही नाम आत्माका अनुभव है। इस प्रकार अपने आपको केवलज्ञानस्वरूप ही सोचकर अनुभव करो। परिवारके ख्यालमे, मोहमे, पालनपोषणमे ही सारा समय लगाये रहे तो उससे क्या लाभ ? अपने सही स्वरूपके विचारने मे भी समय देना चाहिए या नही ? तो अपने आपके स्वरूपके अनुभवमे कितने मिनट देना चाहते हो ? ५ मिनट सही। तो ५ मिनटमे ऐसी तैयारी रखो कि केवल हमे केवल आत्मा ही जाननेमे आये तो हमें जाननेका काम मजूर है, और कोई पदार्थ मेरे जानने मे न आये। ५ मिनटको घरका धनका, इज्जतका, किसीका भी ख्याल न रखो, सबका ख्याल छोड दो, कही ५ मिनटमे वे सब नष्ट हो जायेंगे, सब मिल जायेंगे पर ५ मिनटका टाइम जरुर अपने आत्मानुभवमे दो। किसी बाह्य पदार्थका चिंतन उस समय न हो। अपने इस जीवनमे ही देख लो, कभी किसी भयकर रोगसे ग्रस्थ थे, मुश्किलसे बच गये। कभी कोई हिन्दु मुसलमानके दगेमे फस गया होगा, कोई किसी समय बडे तेज बुखारसे पीडित हो गया होगा, किसी समय घरके लोगोने भी जीनेकी आशाको छोड दिया होगा। उस समय यदि हम गुजर गये होते तो हमारे लिए आज यहा कुछ न होता। आज दैवयोगसे यह मनुष्यभव मिला है, क्या हम पशु पक्षी कीडे मकोडोके भवमे न थे ? यदि हम मनुष्य न होते, किसी पशु पक्षीके

जन्ममे होते तो मेरे लिए ये समागम कुछ न थे, जिनकी चितामे आज हम परेशान होते हैं वे मेरे लिए कुछ न थे। और मरणके बाद ये सब मेरे लिए कुछ नही हैं। और जो कुछ है अपना ज्ञान बल बढाकर देखो। लाभ तो सदुपयोग करनेसे होगा। सदुपयोगसे ही आत्मलाभकी बात हो सकती है। इन समागमोमे पडे रहनेसे तो वियोग होगा ही।

एक देश था, उसमे राजा बननेकी पद्धति प्रतिवर्षकी थी। मन्त्रिमडल किसीको राजा बना देता था और एक वर्ष बाद चू कि यह देशमे रहेगा तो इसकी बेइज्जतीसे देशकी बेइज्जती होगी। राजाको एक वर्ष गुजरनेके बाद यहा लोग पेंन्सन दे देते है चार पाच हजार रुपया, या हजार रुपया जिससे ठाठमे रहे। वहां पेंन्सन देनेकी बात न थी किन्तु एक वर्षके बाद राजाको भयकर जगलमे छोड देनेका नियम था। ऐसा इसलिए होता कि कोई देखे नही तो राष्ट्रपतिकी बेइज्जती न होगी। एक बार एक समझदार राजा बना उसने सोचा कि मैं एक वर्षके लिए राजा हू सो जो चाहू वह कर सकता हू। सो जिस जगलमें छोड देना था उसमे बहुतसा प्लाट तैयार किया, बैंल हो गये, खेत हो गये। वर्ष गुजरा और राजा जगलमे छोड दिया गया जो अब वहा जाकर राजा आरामसे रहने लगा। इसी तरह यह कुछ वर्षका नर जन्म मिला है, इसके बाद क्या गति होगी कि ८४ लाख योनियोमे भटकना पडेगा। जो विवेकी मनुष्य है वह क्या करेगा ? जब तक मनुष्य है, मन श्रेष्ठ है तब तक जो चाहे सो कर सकते है। और करना क्या है ? केवल शुद्ध भाव बनाना है। परवस्तुवोमे तो यह आत्मा परिणमन कर नही सकता। हाथसे यह चश्माघर उठाया तो यह आत्माने नही उठाया, जीवने नही उठाया। बहुतसे लोगोकी समझमें तो यह है कि वाह मैंने ही तो उठाया। मैं तो एक जीव हू जिसका स्वरूप ज्ञान है, आकाशकी तरह अमूर्त है। अमूर्त आत्मा किसी पुद्गलको छू नही सकता है। तो यह मैं जीव इस चश्माघरको पकड सकता हू क्या ? जरा जीवके स्वरूप पर दृष्टि दो। जीव तो ज्ञान और आनन्द स्वरूप है पर जीवके रहे बिना यह चश्माघर उठाया धरा नही जा सकता है। फिर बात क्या है ? यह जीव मलीन है, इसमे उपाधि लगी है, इसमे विकार उत्पन्न होता है। इस हालतमे भी जीवने इच्छा उत्पन्न की कि उठाकर रखदें। उठाकर रख नही सकता। किन्तु जीवने तो अन्दरमे एक इच्छा उत्पन्नकी। अब आगे देखो कैसे काम बढता है ? उस जीवकी इच्छाके निमित्तसे जीवके प्रदेशोमे कम्पन हुआ और जीवके इस कम्पनके निमित्तसे शरीरमे रहने वाला जो ध्रुव है उस ध्रुवमे कम्पन हुआ। जिस तरहकी इच्छाकी उस तरहका कम्पन हुआ। और उसके ही अनुकूल वायु कम्पन हुआ। उस वायुके सचालनके निमित्तसे ये हाथ पैर चलने लगे। सो इसने इच्छाकी कि मैं चश्माके घरको उठाऊ तो वैसा ही इसमे कम्पन हुआ, वैसे ही शरीरकी हवा चली और वैसे ही ये अगुलिया सिमटी अब उन सिमटी हुई अगुलियोके बीचमे यह चश्माघर है। जब निमित्तनैमित्तिक प्रसगसे अगुली चली तो उसके बीचमे फसा हुआ यह चश्माघर भी चल पडा, हाथ मैंने नही चलाया। यह तो कितने ही निमित्तोके सम्बन्धमे चल उठा है। एक रेलगाडी जिसमें १२ डिब्बे लगे हैं, इजन चलता है तो लोग यह कहते हैं कि इजन १२ डिब्बो को खीच रहा है। इजन तो केवल पासके डिब्बेको खीच रहा है। उस डिब्बेका सम्बन्ध है सो अगले डिब्बेका निमित्त पाकर अन्य डिब्बे भी साथमे खिच रहे हैं, पहिले डिब्बेका सम्बन्ध है दूसरेसे। इस प्रकारसे एक दूसरे डिब्बेका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। इस प्रकारकी परम्परा बढती चली जायगी। हो रहा है सब काम। इजनमे भी देखो एक एक पुर्जा अपना अपना काम कर रहा है। एक पुर्जा काम करता है। उसका निमित्त पाकर दूसरा पुर्जा काम करता है। एक पुर्जेका निमित्त पाकर डडा चला, फिर उससे फसी हुई पात चली, फिर उससे फसा हुआ पहिया चला। तो प्रत्येक पुर्जा केवल अपना काम कर रहा है। किसी एक पुर्जेका निमित्त पाकर दूसरा पुर्जा क्रियाशील हो जाता है।

लोग कहते हैं कि यह गाडी ड्राइवर चला रहा है। अरे रेलगाडीको ड्राइवर नही चला रहा है। वह तो हैंडिल तकको नहीं पकडे हुए है। वह तो केवल इच्छा कर रहा है, उसकी इच्छासे योग हो रहा है, उस योगसे देह

वायु चली, फिर उसके अगका निमित्त पाकर मटेरियल चला, फिर उसके निमित्तसे और कुछ चला। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थका भिन्न भिन्न काम हो रहा है। ऐसे होते हुए कामको देखकर अज्ञानी कह उठते है कि हमने अमुकको यो परिणमाया है पर ज्ञानी जिसका प्रत्येक पदार्थका स्वरूप नजरमे है वह कहता है कि कोई पदार्थ किसी पदार्थका कुछ नही करता है। वस्तुस्वरूपकी स्वतन्त्रताकी यह दृष्टि ससारके सकटोसे उबारनेमे समर्थ है। अपने लोग रोज चर्चा कर लेते हैं सुनते हैं सम्भव है कि इसको प्रभावमे न लाये पर कोई समझदार अन्य जन इस चर्चाको सुनकर एक नई दृष्टि प्राप्त करते व आनन्द पाया करते हैं। हमारा यह कहना और सुनना तोतेके आदतकी भाँति न रहे और उसको अपने विचारमे कुछ क्षण उतारें, कुछ क्षण सबको भूल जाये तो आपको सुख होगा। पापके उदयमे कौन दूसरा मदद कर देगा? कोई कठिन रोग हो जाय तो घरके सब लोग क्या ददको बाट लेंगे? अपनी दया करके कुछ क्षण तो सवसकल्प विकल्पको छोडकर केवल ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको निहारो। ऐसा काम इस जीवनमे करो कि यह नरजीवन व्यर्थ न जाय। जो जानन है सो मै हू इतना ही सोचकर रह जाये और उस जाननस्वरूपके चिंतन मे लग जायें तो उस जाननस्वरूपके अनुभवमे विलक्षण आनन्दका अनुभव होगा। जैसे अपनेको विचारते हो ना कि मै बच्चो वाला हू, मैं मुनीमका काम करने वाला हू तो कुछ तो अपनेको माननेकी आदत है ना? अपनेको केवल जाननमात्र मानने लगो। जिस क्षण ऐसा जाननमात्र मैं हू इतना ही दृष्टिमे रहेगा उस क्षण ज्ञानका अनुभव है, आनन्दका अनुभव है आत्माका अनुभव है। इस आत्माको ज्ञानमात्र स्वरूपकी दृष्टिसे सोचो तो यह आत्मा ग्रहणमे आ सकता है, अन्य उपायोसे यह आत्मा ग्रहणमे नही आ सकता है। एक सत्यका आग्रह करना है अन्यको नही जानना है। इस आग्रहसे इस ज्ञानका अनुभव अवश्य होगा पर इतना करनेकी भावना ही न हो तो भाव कैसे बनेगा? एक गृहस्थ पुरुष था तो एक दिन शास्त्रसभामे बाहरसे आया। पडितजी बोले आज शास्त्रमे देरसे आये हो तो कहा पडितजी हमारा एक छोटा मुन्ना है १२ वषका सो आज अड पकड गया कि हम भी शास्त्र सुनने चलेंगे तो न आने दिया। फिर क्या किया? हमने समझा बुझाकर पसा देकर उसको सिनेमा भेज दिया, तब मै आया। अरे बच्चेको आने देते, उससे भला होता। बोले हम तो शास्त्रोके पक्के श्रोता है, कही ऐसा न हो कि बच्चे शास्त्र सुने और घरसे चल दें। सम्भव है कि शास्त्र सुननेसे वे बच्चे घर छोड दे। तो हम आप निरतर अपने रगमे रगे रहते हैं, उन घरके बच्चो पर दया नही किया करते है। आप धन वैभवमे बडे होना चाहते है तो उससे लाभ क्या है? कुछ भी तो लाभ नही है। लाभ तो इसमे है कि सब कुछ छोड दे। सब कुछ त्याग करदें, केवल अपने जानन-स्वरूपके चिंतनमे रह जायें, इस ही उपायसे आत्माका दर्शन होगा।

उस शुद्ध आत्माका यहा वणन हो रहा है जिस शुद्ध आत्माकी दृष्टिमे सम्यक्त्व होता है। जिस शुद्ध आत्माकी दृष्टिकी स्थिरतामे चारित्र परिपूर्ण होता है और सहजानन्द प्रकट होता है उस शुद्ध आत्माकी बात यहा कही जा रही है। यह शुद्ध आत्मा कही अन्यत्र न दिखे किन्तु अपने आपको ही इस रूपमे विचारे कि यह मै सबसे निराला केवल चैतन्यस्वभाव मात्र हू। इस प्रकार अपनेको निरखे तो उस निरखसे खुद समझमें आये कि यह कितनाशुद्ध आत्मा है, यह ज्ञानमे रचा हुआ है अर्थात् केवल ज्ञानका जो पिंड है वह आत्मा है। यह स्पर्श, रस, गध, वर्ण वाली मूर्तिसे रहित है, यह अमूर्त है। अमूर्त जितने भी पदार्थ होते हैं उनमें स्पर्श, रूप, रस, गध नही हुआ करता है इस मूर्तिसे रहित होनेके कारण यह आत्ममूर्ति विपरीत है और केवल शुद्ध चेतनामें तन्मय है। जो शुद्ध चेतनामें तन्मय है, जो शुद्ध चेतना अन्य किसी द्रव्यमें नही पायी जाती, केवल आत्मपदार्थमें ही होती है, ऐसी शुद्ध चेतनासे निस्पन्न होनेके कारण यह आत्मा चिन्मात्र है। यह अपने आत्माका वणन है। यह मै आत्मा मनसे परे हू और इन्द्रियोसे भी परे हू। केवल ज्ञानस्वरूप कर रचा हुआ हू, मैं आत्मा अमूर्त हू, चैतन्यमात्र हू, यह इन्द्रियोके विषयमें नही आता। वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानसे ही ग्रहणमे आता है। किसी भी इन्द्रिय या मनकी गतिमें हम

आत्माको जान सकें ऐसा नहीं होता। इन्द्रियोंके द्वारा तो यह आत्मा किसी भी प्रकार जाननेमें नहीं आता। हा मनके द्वारा इस आत्माकी चर्चा हो सकती है। मगर यथार्थ शुद्ध जैसा आत्मस्वरूप है वैसा ग्रहण केवल वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानसे ही होता है, यह निश्चय है। इस गाथासे हमें यह शिक्षा मिलती है कि यद्यपि यह मैं विकारमें हू, बिगाडमें हू, शुद्ध हू, उपाधि सहित हू, कर्म सहित हू, नाना प्रकारके वैभव भी उमडते हैं किन्तु इस मुझ आत्माका जो सहजस्वभाव है वह भी मुझमें अनादिसे अनन्त काल तक एकस्वरूप रहने वाला नित्य है। हम न तो उपाधिपर दृष्टि दें, न शरीर पर दृष्टि दें। हैं ये सब चीजें, रहें किन्तु इनकी दृष्टिसे मेरी आत्माका हित नहीं हैं। इस कारण न शरीर पर दृष्टि दें, न कर्मोंपर दृष्टि दें और कर्मोंके कारण होने वाले रागादिक विकारों पर भी दृष्टि न दें, किन्तु अपने आपमें नित्यप्रकाशमान् जो एक चैतन्यशक्ति है, जिस शक्तिके आधार पर शुद्ध अशुद्ध सभी काम चल रहे हैं उस शक्ति पर दृष्टि देकर, मैं इस चैतन्य शक्तिमात्र हू ऐसी रुचि करो, यही शुद्ध आत्मतत्त्व उपादेय है। अब यह बतलाते हैं कि जो संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त होकर शुद्ध आत्माका ध्यान करता है उसकी संसार बेल नष्ट हो जाती है।

भवतणु भोयविरत्तु मणु जो अप्पा झाएइ।
तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टेइ ॥३२॥

जो आत्मा संसार शरीर और भोगसे विरक्त चित्त रहता है वह संसारकी बेलको तोड देता है। संसार क्या है? अपने आपमें उत्पन्न होने वाली जो इच्छा है, विकार वह सब संसार है। संसारमें बाहर नहीं हैं किन्तु अपने आपमें जो गड़बड़ी उत्पन्न होती है, स्वभावसे विपरीत स्वभाव रहता है उस भावको संसार कहते हैं। अपने आपके विकार परिणामोंसे विरक्त होनेको संसारसे विरक्त कहा जाता है। सबसे बडी परेशानी जीवको यह है कि जो इसमें विकार होते हैं उनको अपनाता तो है ही, पर साथ ही विकारोंको अपनानेमें अपनी बुद्धिमानी मानता है। ज्ञानीपुरुष तो अपने सभी विचारोंसे ज्ञान किया करता है। जो भी विचार उत्पन्न होते हैं वे सब अज्ञानकी कोटिमें है। ज्ञानी तो वह है जिसकी केवल जाननवृत्ति रहती है। उसके साथ रागद्वेषादिक भावोंकी तरंग नहीं उठती है किन्तु अज्ञानी जो कुछ सोचता है उसे ही विवेक मानता है। अपनी गलतीको गल्ती मान सकनेकी क्षमता अज्ञानी जीवमें नहीं हुआ करती है, ज्ञानी पुरुष तो विनाशीक पदार्थोंमें कार्य करके भी सामयिक, स्वाध्याय, चर्चा, वंदना, पूजन सब कुछ करते हुए भी यह समझता है कि यह मेरे ज्ञानका शुद्ध ज्ञान नहीं है, इन सबसे भी छुटकारा हो और केवल जाननस्वरूपके जाननेमें ही रहे ऐसी निर्विकल्प स्थिति होनी चाहिए। ज्ञानीको ये सारी बातें जिन्हें लोग विवेक कहते हैं अज्ञान जचता है और अज्ञानीको वे गलत बातें भी गलत नहीं जचती हैं। उन सब बातोंको अज्ञानी विवेक बनाता है। और परवस्तुओंके सम्बन्धमें बहुत सोच विचार करता है, बहुत विचार कर चुकनेके बाद वह यह संतोष करता है कि मैं बहुत विचार कर चुकनेके बाद यह काम कर रहा हू। यह अवश्य बुद्धिमानीका काम है किन्तु एक समता परिणाम वाले केवल जाननके कामको तो ज्ञान कहते हैं और बाकी जितने भी ख्याल हमारे रागद्वेषकी कडिका में बसे हुए हैं वह सब अज्ञान कहा जाता है। अपने विकल्पोंसे विरक्त होनेसे संसारसे विरक्त होना कहा जाता है। मैं जो सोचता हू यह न सोचना पडे। मैं जो विचारता हू और समझता हू कि मैं ठीक कर रहा हू वह सब संसारका काम है, अज्ञानका काम है, मेरे स्वभाव की वृत्ति नहीं है। इस प्रकार यह ज्ञानी संत संसारमें मूर्छित हुए चित्तको लौटाता है, अपके आपने जाननमात्र स्वरूपके ज्ञानमें उत्पन्न हुआ जो वीतराग परमानन्द स्वरूप है, इसके स्वादसे लिप्त होता है, यह ज्ञानी इस शरीरको भी नहीं चाहता है जिस शरीरमें यह बस रहा है, यह एक बंधन है, शरीर मिलता रहे यही तो संसारमें रुलना कहा जाता है। शरीरमें रहते हुए भी शरीरसे न्यारा हू। केवल निजज्ञान स्वभाव मात्र हू। ऐसे श्रद्धानके कारण वह अपने विचारोंसे भी विरक्त रहता है, शरीरसे विरक्त रहता है। शरीर

जड है, मैं चेतन हू, शरीर मुझसे भिन्न है, मैं अपने आपमे अभेद इस शरीरके कारण मेरा हित नही है बल्कि अहित हो रहा है। शरीरमे बस रहा है सो शरीरका पालन भी कर रहा हू। शरीरका पोषण भी करता है, शरीरकी सफाई भी कर लेता है, फिर इन सबमे अनुराग ज्ञानी जीवको नही है, जैसे पडोसीके घरमे आग लगी हो तो वह दूसरा पडोसी पुरुष सब प्रयत्न करके पडोसीके घरकी आग बुझाता है। इस वास्ते अतरमे यह आशय पडा हुआ है कि इसके घरकी आग बढकर मेरे घरमे लगी तो मेरा घर नष्ट हो जायगा। इसी प्रकार शरीर एक पडोसी है, शरीरमे आग लग गयी, क्षुधाके वेदनाके रोगमे आपत्तिया आ गयी, तो यह आत्मा पडोसी शरीरकी वेदनासे मिटा ह किस लिए कि कही शरीरकी वेदना बढ करके मेरे आत्मामे अज्ञानभावका कारण न बन जाय। कही मैं इस शरी की पडी हुई वेदनामे विह्वल होकर अपने ज्ञानको न खो दू इस कारण जब पडोसमे आग लगी है तो इसको बुझा लू इस कारण अहार करता है पर फिर भी शरीरसे विरक्त है। और यह ज्ञानी सत भोगोसे भी विरक्त है। भोग पचेन्द्रियका विषय कहलाते हैं कर्णेन्द्रियका विषय है राग रागनीयुक्त गायनका सुनना। सुहावने शब्दोका सुनना कर्णेन्द्रियका विषय है, खूब सुनो राग रागनीकी तान पर। इन सब कर्णेन्द्रियके विषयके भोगोसे इस मुझ आत्माको लाभ क्या मिलेगा? यह दुलभ नरजीवन ही गवाया जा रहा है।

एक कविने एक सभाका चित्र खीचा। लोग बैठे हैं, सभा भरी है, उसमे गान वाली वेश्या है। तबला बजाने वाले भी अच्छा तबला बजा रहे है, मजीरा बजाने वाले भी अच्छा बजा रहे। वेश्या भी हाथ पसार पसार करके गाना गा रही है। ऐसी स्थितिका एक पद्य बनाया है। मिदङ्ग कहता है धिक है, धिक है। धिक बोलता है ना मंजीरा कहता है किनको किनको तो वेश्या हाथ पसार कर कहती इनको, इनको, इनको। यह एक कविका खीचा हुआ चित्र है। तो क्या है कर्णेन्द्रियके विषयभोगमे केवल समय गवाया जा रहा है। नेत्रइन्द्रियका विषय है सुन्दर रूप देखना, खेल तमासे देखना। जो सुहा जाय ऐसे पदार्थोको देखना। कितने ही दफे हवाई जहाज देखा हो और उसमे कितनी ही बार बैठा हो और ऊपरसे उडता हुआ जाय तो निगाह कर ही आती है। यह नेत्रइन्द्रियका विषय है। सामनेसे कोई निकल रहा हो, कुछ प्रयोजन नही है, फिर भी उत्सुकता होती है। क्या है? कौन है। नेत्रइन्द्रियके विषयके साधनेमे आत्माको मिलता क्या है? बल्कि उपयोग बढानेमे प्रबल इन्द्रिय है तो यह नेत्र इन्द्रिय है। पहिले नेत्रेन्द्रियसे देखा जाता है। विकारकी शुरुवात देखनेसे होती है। पहिले देखा फिर गुना, विचारा मनमे एक शल्य बनाली और आगे बढे तो इन्द्रियोमे विकार प्रारम्भ कराने वाला नेत्रेन्द्रिय है और झगडेको बढाने वाला यह मुख है। झगडा मुखमे ही बढता है। अदृष्ट बोल दिया लो कलह होने लगी। तो ये दो इन्द्रिया बडी आफतजन्य रहती हैं और इनका काम इसका स्वाद लेना है। खानेके लिए यह कैसा विकल्प मचाता है। यह तो है रसना इन्द्रिय और नेत्रेन्द्रिय बडी कठिन इन्द्रिय है। लेकिन घबडानेकी बात नही है कर्मोने तो दोनो इन्द्रियोके ढक्कन लगा दिया। मुखका ढक्कन दोनो ओठ हैं और आखोका ढक्कन है पलक और इन्द्रियोमे ढक्कन न मिलेगा। कानमे क्या है किसी समय तेज आवाज आ रही है चाहे कि कानोंको ढक लें और आवाज न मिले सो नही हो सकता है। नाकके ढक्कन कहा है? इस शरीरके ढक्कन कहा है। दो इन्द्रियोके ढक्कन लगा है। हम लोगो पर दया करके इन नाम कर्मोने ढक्कन बना दिया। मुख हम ढक लें ओठ चिपका लें। फिर क्या रस लेगे और क्या बात बोलेंगे? सब झगडा मिट गया। तो नेत्रेन्द्रियके विषयमे इस जीवको क्या लाभ मिलता है? ये सब व्यग्रके विषय है। सिनेमा देख लिया, कौतूहल देख लिया। किसीकी लडाई हो रही है तो उसको भी देखनेकी इच्छा हो जाती है? कैसे लडाई करते है? उनमे लडाई कम होने लगे तो क्यो कम होने लगी? जब लडाई तेज होती है तो बोलते है हा ठीक है। क्यो क्या देखनेको मन चाहता है? इससे इस जीवको लाभ क्या मिलता है? घ्राणेन्द्रियके विषयसे क्या फायदा मिलता है? सूघ लिया इत्र तो क्या परिणाम निकलता है? इत्रोके सूघनेके फलमे कितने ही नासिकाके रोग हो जाते है। और

क्या है ? सूघ लिया तो क्या है ? दुगन्ध आती है तो आये । बचाव करता है । नाकको जबरदस्ती बद करता है । जोर-जोरसे दौडता है, यह गधका वातावरण यह सब क्या है ? घ्राणेन्द्रियका विषय । इसमे समता नहीं हैं । सुगध आती हो तो हष न मानो । यह सुगध एक पुद्गल चीज है । दुगन्ध होना कोई अशुचि पदार्थ दिखता हो तो भी विशाद न मानो । यह जगह ऐसी है, इस पदार्थका स्वरूप ऐसा है केवल जान जाय, यह धैय नही हो पाता क्योकि भोगोमे रुचि हैं । उसी प्रकार रसना इन्द्रियकी बात है । स्वाद लेकर खाना खा लिया । स्वादिष्ट चीजको छिपकर खाना, चोरीसे खाना उसका निरतर ध्यान रखना । और जैसा रखना चाहता है वैसा साधन न मिले तो खेद हो जाता है । यह सब क्या है ? यह रसना इन्द्रियका विषय है किन्तु घाटी नीचे माटी । एक खुली घाटी है, उसक नीचे जो उतरें तो क्या स्वाद आता है ? माटी हो गई । रसका सुख क्षणिक है । एक सकेन्डका भी तो रसनाका सुख नहीं है । इस पर विजय प्राप्त कर पाते हैं तो बडा आडम्बर और सचय करना पडता है ।

बडेका बडप्पन इसीमे है कि सबसाधन मिल हैं फिर भी सात्विक रहन सहन और सात्विक भोजन करो । स्वादिष्ट भोजन क्या लड्डू पेडा, बर्फी रबडी आदि है ? इनके खानेसे तो स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नही पडता है, रोग बढता है, वायु बढती है । यह मनुष्य स्वादका प्यासा है । कितनी तरहके भोजन बनाता है और खाता है, समय गवाता है । स्पर्शनका सुख । उसके सम्बधमे भी ये ही सब बातें जान लो । इन इन्द्रियोके सुखको जितना बढाकर मनुष्य भोगता है उतना बढाकर पशु भी नही भोगते है । यद्यपि पशुवोंके भी ५ इन्द्रिया हैं । मगर मनुष्यके भोगने की पद्धति विशेष है । पशुवोंको जैसी घास मिल गयी खा लिया पर यह तो जो चीजें खानेकी हैं ही नहीं ऐसी चीजो को भी खूब मसाले डालकर, हीग तेल डालकर मीठा डालकर खाता है । उसमे खुद स्वाद नही है इसलिए मसाले मीठा आदि डालकर खाने लगे । मांस कोई खानेकी चीज है क्या ? देखनेसे ग्लानि लगे, कच्चा खा न सके, स्वाद भी उसमे कोई नही ? यदि स्वाद होता तो तेल मसालोंकी उसमे अधिकता क्यों करते ? तो रसनाका विषय इतना बढ गया है और इन्द्रियोको देख लो घ्राणको देखलो । किसी गाय बैल, भैंस, घोडा आदिको देखा है ना, वे क्या कोई सुगधकी चीज बनाते है ? ये कलाये मनुष्य ही करता है ? कितनी ही तरहके सेन्ट बनाये, कितनी ही तरहके सुगधित इत्रादि बनाए ये घ्राणेन्द्रियके विषय है । सुन्दर चित्र बनाना, रूप बनाना और उसको निहारना यह कला पशुवोमे है क्या ? पक्षियोमे है क्या ? इसमे भी मनुष्य बढ़ा चढ़ा है । ऐसी हा शब्द राग रागनियोंकी बात है । इन सब भोगोमे यह मनुष्य बहुत बढा है किन्तु इस मनुष्यमे ही ऐसी शक्ति है कि उन भोगोसे बिल्कुल विरक्त हो सकते हैं । यो ससार शरीर और भोगोसे विरक्त हुए जो पुरुष शुद्ध आत्माका ध्यान करता है अर्थात् केवल, खालिस, प्योर, मात्र ओनली, निज सत्वका ही ध्यान करता है उस पुरुषके ससारकी बेल चूण-चूण हो जाती है । ससार उसका नष्ट हो जाता है । हम किसको देखें, किसे जानें ? किसकी शरण गहे ? किसके निकट बसें कि हम पूण सुखी हो जाए ? मेरे सर्वसकट टल जायें ऐसा है कुछ ? वह है अपने आपमे अपनी सत्ताके कारण जो आकृतिम शुद्ध स्वरूप है, वह ही परमात्म तत्त्व है कि जिसके देखनेसे, जिसका आश्रय लेनेसे ये कम स्वयमेव सब टर जाते हैं । देखो अपने उद्धार का उपाय और अपने आपका परमशरण खुदमे ही विराजमान यह ज्ञानमय प्रभु है जिसके देखनेसे सारे सकट टल जाते हैं, सारे सकटोसे मुक्ति हो जाती है और जिससे न देखते बना उसे सारे ससारमे रुलना ही बना रहेगा । अपने आपमे बसा हुआ यह सहजचैतन्यस्वरूप परमात्मदव यह व्रत लिए हुए है कि रे उपयोग तेरा भला करनेके लिए अनादिकालसे लगा हुआ हू तू मेरी ओर तनिक तो देखले फिर तेरा उद्धार करनेके लिए मेरा बस चल सकेगा । यदि तू रच भी मेरी ओर नही देखता तो तेरे उद्धारके लिए मेरा बस नहीं है । ऐसा इस शुद्धआत्माका जो ध्यान करता है उसकी ससाररूपी बेल सब टूट जाती है । सत् सत् चूण हो जाता, तब जिस निज परमात्माके ध्यानसे यह ससार की बेल नही होती है वह निज परमात्मा ही उपादेय है । इस परमात्मतत्त्वकी भावना करना चाहिए । यही सर्व

उपदेशोका सार है। जैसे कलेवा साथ हो तो मुसाफिरी करनेमे जब भूख लगी पल्ला खोला और खा लिया, कोई देर नही। इस प्रकार इस निज परमात्मतत्त्वका परिचय पास हो तो जब आपको सकट आयें, कोई विपदा सताए झट इन्द्रियोको बद करके भीतरके ज्ञानपटलको खोलकर दर्शन करले तो झट सकट टल जायेंगे। हमारा शरण आत्मा है उसको देख जरुर लेना चाहिए। इस ही निजपरमात्माका वर्णन परमात्मप्रकाश ग्रथमे है। अब इस देह देवालयमे जो परमात्मा बसता है वह ही शुद्ध निश्चयनयमे परमात्मा है इस बातका निरुपण करते हैं।

देहादेवलि जो वसइ देउ अणाइ अणतु।
केवलणाण फुरत तणु सो परमप्पु णिभतु ॥३३॥

देहरूपी देवालयमे जो अनादि अनन्त देव बस रहा हैं वह ही तो केवल ज्ञानादि अनन्त देवताओका स्वामी परमात्मा है, ऐसा तुम भ्रमरहित होकर जानो। अपने आत्माकी शक्तिपर विश्वास हो और अपने आत्माके सहज-स्वरूपका परिचय होना यह बडे उत्तम होनहारसे मिलता है। यह व्यवहारसे देहरूपी देवालयमे बस रहा है फिर भी निश्चयसे देखो तो यह देहमे भिन्न है। देह तो मूर्तिक है देह तो अपवित्र है किन्तु यह आत्मा न मूर्तिक है और न अपवित्र है। यद्यपि देह आराधनेके योग्य नही है तो भी स्वय परमात्मा आराध्य देव है, पूज्य हैं। इस देहकी और अपने आत्माकी विशेषता बतला रहे हैं कि देह तो बचने योग्य नही हैं किन्तु यह आत्मा बचने योग्य है। यह जीव उपयोगको जब अपने स्वरूपमे ले जाता है और अपने स्वरूपका चितन करता है तब वह आत्मा शातिका म ग पाता है और अपने आपके घरको छोडकर बाहरी पदार्थोमे रुचि करता है तब यह जीव ससारमे गोते खाता है। यद्यपि देह तो अतकर सहित है।

इस शरीरकी उत्पत्ति है, इस शरीरका विनाश है। कि तु आत्माका न आदि है और न अत है। कारण आत्मा तो जो एक है वही एक है किन्तु यह शरीर अनेक परमाणुवोके पिडका बना हुआ है। देह और आत्मामे प्रकट बहुत अन्तर है। शुद्ध द्रव्यदृष्टिसे देखो तो आत्मामे न आदि है और न अत है। यद्यपि यह देह जड है तो भी यह आत्मा केवलज्ञान शरीरी है। ज्ञान शरीर है। ज्ञान ही जिसका शरीर है, ज्ञान ही जिसका स्वरूप है। ऐसा यह अमूर्त आत्मा देहमें है। पचेन्द्रियको सयम करके इनका व्यापार बद करके ज्ञानोपयोगसे अपने आपको सोचो कि यह आत्मा जो देहमे भिन्न है वह है किस रूप ? तो ध्यान देकर निरखो तो निरखनेमे आयगा कि केवलज्ञान शरीर है इसका। ज्ञान ही स्वरूप है इसका। इसमे रूप, रस, गध, स्पर्श नही है। यह आत्मा पत्थर रोडोंकी तरह कोई पिंड रूप नही है किन्तु यह मात्र केवलज्ञान शरीरी है। ऐसा लक्षण करके सहित यह परमात्मा होता है। यह नि सदेह जानो जो देहमे बसता हुआ भी असूची नही है, रुपवान् नही है, आदि अत कर सहित नही है। देहके किसी पदार्थ को नही छूता है वह ही शुद्ध आत्मा है। हम किस पदार्थको जाना करें कि हमारा कल्याण हो ? इस लोकमे यह धन वैभव परिवार, दुकान ये सब दृश्यमान मायामय चीजें हैं। इनकी चितामे इनके चितनमे इस आत्माको लाभ कुछ नही है, प्रत्युत हानि है। कौनसा तत्त्व ऐसा है कि जिसके जाननेसे हम आप शात हो सकते हैं ? बहुत अनुभव किया होगा घर वार, मित्रजन इनके नेहमे दृष्टिमे आत्माने शाति नहीं पायी है। लाभकी बात नहीं पायी है। केवल अपनी कल्पनासे मौज मान लिया, मैं इतने परिवार वाला हू बच्चो वाला हू, स्त्री वाला हू, धन वाला हू, यह केवल कल्पनासे मौज मानी जा रहा है। श्रावकाचारमे एक स्मृत नवनीतकी कथा है। एक पुरुष गरीब भिखारी श्रावकोके यहा छाछ पीने गया। छाछ पीकर जो मूछपर हाथ फेरा तो देखा कि घी सा गाटा लग गया है। उसने सोचा कि ऐसी छाछ बीसो जगह यदि हम घर घर पीवें और मूछपर हाथ फेरें तो घी जुडता रहे। कुछ वर्षोमे बहुत घी जुड जायगा। सो जगह-जगह वही श्रावकोके यहा मट्ठा पीवे और और मूछो पर हाथ फेरे और डबलियामे जोडता जाय। दो तीन वर्षमे डेढ सेर घी तैयार हो गया। वह भिखारी अपने फूसकी झोपडीमे जाडेके दिनोमे आग ताप

रहा था, ऊपर हबली लटकती थी। वह कल्पना करता है कलके दिन यह १॥ गर घी बेचूं गा। आठ, दस रुपयेका हो जायगा। फिर इससे खोन्चाकी सामग्री खरीदूं गा। जब बीस, पचास रुपया हो जायेंगे तब बकरी ले लूं गा, फिर गाय भैंस ले लूंगा, बैल ले लूंगा, फिर खेती करुंगा, फिर जमीन खरीदूंगा, फिर मैं पूंजीपति कहलाऊंगा, शादी कर लूंगा, बच्चे होंगे, बच्चे आकर कहेंगे कि दद्दा रोटी खाने चलो तो कहूंगे कि अभी नही चलते हैं, दूसरी बार फिर बच्चा आयेगा कहेगा कि दद्दा चलो, मा ने रोटी खानको बुलाया है तो कहेंगे कि अभी नही जायेंगे। तीसरी बार सोचा कि बच्चा कह रहा है चलो दद्दा रोटी खाने, अम्मान बुलाया है तो लात फटकार बोला कि अबे कह दिया कि अभी नही जायेंगे। ऊपर जो हबलिया रखी थी उसमे लात लग जानसे वह आगमे गिर गयी घी जल गया झोपडी जल गई। अब बाहर निकल कर वह कहता है कि अरे दौडो मेरा मकान जल गया, मेरी स्त्री जल गई, मेरे पुत्र जल गये, मेरे गाय बैल भैंस जल गये, मेरी सारी सम्पत्ति जल गयी। बाहरके लोग सोचते हैं कि कल तक तो इसके पास कुछ न था, भीख मागता था आज यह कहता है कि मेरा मकान जल गया, मेरी सम्पत्ति जल गयी, मेरी स्त्री पुत्र जल गये। सब लोग उसे समझाते हैं। एक सेठ जी समझाने लगे, अरे तेरे पास कुछ था तो नही, क्यो बक रहा है? उसने अपना किस्सा सुनाया। सेठने कहा कि तूने केवल कल्पना ही तो किया था, आया गया तो कुछ नही। सो एक पडितजी खडे थे वह बोला सेठ जी ऐसे ही तो कल्पनाए आप भी कर रहे है। तुम्हारी आत्माम कुछ आता जाता तो नही। कल्पना कर लिया कि लाखोका वैभव है। तुम्हारा आत्मा तो अकेला है कि नही है? उस आत्मामे एक नया पैसा भी तो नही आता है। इस आत्माका कोई मित्र नही है, कोई साथी नही है। मोह एक प्रबल सकट है। यह मोह न होता तो यह आत्मा शुद्ध आनन्दका भोक्ता होता। सर्वविश्वका ज्ञाता बनता, परमात्मा हो जाता। इस जीवके धैर्य नही है। जहा समागम है वहा नियमसे वियोग जरुर हो गए। अज्ञानमे क्या तत्व रखा है? मोहमे क्या बात लूट लोगे? यह मोह ही प्रबल सकट है। यह मोह ही एक विकार ऐसा है जो इस जीवको अपवित्र बनाए हुए है। ससारमे रुलाने वाले इस मोहको हटाओ और अपने आपके अन्तरमे अपने शुद्धस्वरूपको देखो। यह सहजपरमात्मा आपमे अनादि अनन्त विराजमान है। इस मेरे आत्माको कोई कमी नही है। इसमे ज्ञानकी कमी है, न आनन्दकी कमी है। इसका तो स्वरूप ही ज्ञान और आनन्द है। आत्मा और क्या है? जिसे लोग कहते हैं कि यह तो एक हवा है, रहे रहे न रहे न रहे। यह हवा भी नही है। यह हवासे भी सूक्ष्म है। यह हैं ज्ञान और आनन्द भाव है, जिस ज्ञान और आनन्दके लिए यह ज्ञानानन्दी तरस रहा है, बाहरमे खोज रहा है, दर दर भटक रहा है वह ज्ञानानदी यह स्वय है। पर स्वयका विश्वास नही है इसलिए बाहर भटकता है। अपने आपमें अपने आपको नही देखना चाहता है। जैसे किसीसे कोई कह दे कि तेरा कान कौवा ले गया है, वह जो उड रहा है। वह कौवा की ओर दौडता है। वह लडका रोने लगता है और बेतहास दौडता है। रोता है, चिल्लाता है, मेरा कान कौवा लिए जा रहा है। कोई कहे अरे कहा दौड रहा है? तो कहेगा अरे बात करनेकी फुरसत नही है। मेरा कान कौवा लिए जा रहा है उसे छुडाना है। अरे सुन तो जरा, अपना कान टटोल तेरे पास है कि नही। अरे क्या टटोले, हमसे बडे आदमीने कहा है कि तेरा कान कौवा लिए जा रहा है। अरे कहा ले गया? तेरे हाथ है, तू कान टटोल ले, कान भी तेरे निकट ही है। तू देख तो सही। जब हाथसे टटोलता है तो देखता है अरे कान मिल गया है। कौवा नही ले गया है। इसी प्रकारसे ये जीव ज्ञान और आनन्दके लिए विषयोमे पडे हुए हैं, बाह्यपदार्थोमे दौड लगा रहे हैं, ऋषि सत समझाते हैं, अरे कहा दौड लगाते हो? कहा बाहरमे अपना ज्ञान और आनन्द ढूढते हो?

विषयोमे, परिवारमें, मित्र जनोमे कही ज्ञान और आनन्द नही है। नही नही हमारे पिता दादा बता गए, समझा गए हैं, कैसे नही है भोगोमे परिवारमे आनन्द? फिर बारबार ऋषि सत समझाते, अरे देख लो ना, बाहरमे कही भी तो आनन्द नही है। एक पाव सेकेन्ड तो इन सबको भुलाकर अपने आपको देखो तो सही कि तेरे ज्ञान और आनन्द है कि नही? तेरा ज्ञान और आनन्द तेरे पास है, तेरे ज्ञान और आनन्द तुझमे ही, तो बतला रहे

हैं। अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूपको टटोननेमे सेकेण्डका हजारवा हिस्सा भी तो नही लगता। देखो तो सही। कुछ समझमे आ जाय और एक साथ सबको भूल जावो तो कुछ क्षणके लिए ओरोको छोडकर अपने आपके ज्ञानानन्द-स्वरूपको निहारो तो वह ज्ञान और आनन्द मिल जायगा। और वह अब सोचता है कि किस ज्ञानानन्दकी तलाशमे अब तक भटकता चला आया हू। वह मिलता है अपने ही पास। जैसे कोई सर्राफ अपने दाहिने हाथकी मुट्ठीमे कोई सोनेकी मुदरी रख ले और लोगोमे व तोमे लग जाय तो कुछ देरमे उसे ध्यान होता है कि सब चीजे सम्हालकर रख ली है पर एक मुदरी नही मिलती है। वह सब जगह ढूढता फिरता है। यद्यपि मनुष्यका दाहिना हाथ ज्यादह चला करता है, मगर ऐसी बुद्धि मारी गयी कि मुदरीकी ममतामे दरी उठाता है तो बाये हाथसे, इसके नीचे तो मुदरी नही है, सदूक खोलता है तो बायें हाथसे, कही सदूकमे तो नही रख दिया? तडफता था, विह्वल होता था ख्याल आ गया, यह मुट्ठी क्यो बधी है? खोलकर देखे तो। जब खोलकर देखा तो वह मुदरी मिल गयी। कहा कहा खुदको भूलकर खोजा, यही तो अपना शरण है, अपने आपमे है। और खोजता कहा है? दुनिया भरके विषयसाधनोमे। धन पाया है लाखोकी सम्पदा पाई है, उसीको ही अपना सब कुछ मान लिया और अपने आपको न कुछ मान लिया। अकिंचन् मान लो अपनेको हो भी अकिंचन्। आपकी आत्मामे तो भीतका चूना तक भी नही लगा है और न एक नया पैसा भी चिपका है। केवलज्ञान और आनन्दस्वरूप हू, और रूप मैं नही हू अपने ही स्वरूप हू। यदि ऐसी ही अपनी दृष्टि जगे तो यह आपका सच्चा बडप्पन है। और वैभवकी ओर दृष्टि जाय, तृष्णा मे चित्त बसे, असार प्रकट जड वैभवकी रुचि करे तो यह बडेका बडप्पन नही है। यह तो एक सिनेमा है, लोग चलते हैं फिरते हैं, परस्पर बोलते हैं, चिल्लाते हैं, हसते हैं। यह गया वह गया, कहा गया? इन समागमोमे विश्वास न रखकर अपने आपको अकिंचन् मानो। मेरे पास कुछ भी नही है, मेरे पास कही कुछ भी नही है। मैं तो एक अकेला ही हू। रही सुख दुखकी बात। सुख धनमे नही होता है। धन बढ जानेसे विकल्प बढ जाता है। और कोई कल्पना बना ली जाती है कि कभी तो बडा टोटा पड जाय तो टोटेको सम्हालना कठिन हो जाता है, कभी कल्पनाके अनुसार लाभ न मिले तो विह्वलता हो जाती है। आप चाहे सैकडो मन चादी खरीदकर रख ले और यह कही सुन लिया कि इस खरीदके ऊपर १० रुपया सैकडा चादीका भाव तेज हो गया है तो इसमे हजारो लाखोका मुनाफा सोच लिया। खुश हो रहे है। और दो तीन दिनके बादमे सुननेमे आ जाय कि दाम १५ रुपया सैकडा घट गये हैं तो फिर दुखोका क्या ठिकाना? वह सोच रहा है कि २५ रुपया सैकडाका टोटा पड गया है, चीज तो रखी है, खैर व्यापारकी चीजको तो जाने दो। जो गहने घरमे बनवा रखे हैं, जिनका कभी बेचनेका विचार न होगा, रखे हैं किन्तु भाव तेज सुनकर तो कुछ ऐसा गौरव मानते है कि अब क्या है? अब तो लखपति हो गये। अभी तक ५० हजार थे अब लाख हो गए। और अगर साढे बासठका हुकुम आ जाय तो गणित लग जायगी कि अब तो २५ हजार ही रह गये है। गहना बेचना है नही, किन्तु शान शौकनके लिए रखे हैं। उसमे भी नफा टोटेका हिसाब लगाकर हर्ष विषाद, माना करते हैं। धन पाकर कोई शात हुआ हो तो बतलावो? धन पाकर कोई शात नही हुआ है। इसका दृष्टान्त हम बता सकते हैं, पर धन पाकर कोई शात हो गया हो तो इसका एक भी दृष्टान्त नही। क्यों न रहेगा कि आखिर धन पाया है तो उसमे आगेकी इच्छा होती है व जो धन पाया है उसकी ही रक्षा करनेका यत्न होता है और यह सब अपने अधिकारकी बात है नही। होना होता है तो होता है और नही होना होता है तो नही होता है। तो धन पाकर शातिका मार्ग नही मिलता है। इस परिस्थितिमे भी अपनको ऐसा ध्यानमें लावो कि मैं अकिंचन् हू। मेरा कही कुछ नही है, मै तो केवल ज्ञानस्वरूप हू, अमूर्त हू। इस ध्यानसे शातिका मार्ग मिलेगा। और इतना उच्च धर्म ध्यान करने वाला पुरुष पुण्यका हीन नही हुआ करता है। यह वैभव पुण्यका फल है। यह जोडेसे नही जुडता, यह हटानेसे नही हटता। उदय है तो पासमें है, उदय नही है तो नही है। एक लौकिक कथानक

है कि ब्रह्मा जी एक लड़केकी तकदीर बना रहे थे। तकदीरमें लिख रहे थे इसकी तकदीरमें ५ रुपया और एक काला घोड़ा रहेगा और लड़केको करोड़पतिके घरमें पैदा किया। एक साधु निकला बोला महाराज क्या कर रहे हो ? कहा तकदीर बना रहे हैं ? कितनी बना रहे हो ? ५ रुपया और एक घोड़ा। पैदा किसके यहां करोगे ? करोड़पतिके यहा मानलो बिड़लाके यहा अथवा टाटाके यहा। कहा अरे अन्याय न करो करोड़पतिके यहा पैदा कर रहे हो और केवल ५ रुपया व एक काला घोड़ा। अरे ज्ञानी ही तकदीर बनाना हो तो किसी गरीबके घर पैदा करना था। बोले तुम्हे क्या मतलब ? हमें जो करना होगा करेगे। साधु बोला जो लिखत हो लिखा पर हम तुम्हारे लिखेको मेट देंगे। अब दोनोकी ठन गई ब्रह्माकी और साधुकी। ब्रह्माने तकदीर लिखकर करोड़पतिके यहा पैदा कर दिया। उस करोड़पतिका सारा वैभव नष्ट हो गया, बिक गया, छितर बितर हो गया, और एक झोपड़ीमें रहने लगे। केवल ५ रुपया और एक काला घोड़ा उसके पास रह गया। जब १२-१४ वर्षका हुआ तब साधुको याद आया। उसकी तलाशमे निकला। गरीबका कौन पता बतलाये। पता पता, लगाते लगाते पता लग गया। वहा पहुच गया, उस लड़केने साधुका सत्कार किया। साधु बोला, बेटा! जो हम कहेंगे सो तुम करोगे ? बोला हा महाराज हम करेंगे। साधु बोले तुम्हारे पास क्या है ? बोला ये ५ रुपये और एक काला घोड़ा। अच्छा इस घोड़ेको बेच दो। १०० रुपयेमें बिक गया। अब १०५ रुपये हो गये। इतनेमें आटा, शक्कर, घी मगाओ, मगा लिया, बढ़िया बन गई। गांव भरको जिमा दो, जिमा दिया। दिन गुजर गया। रात्रिमे ब्रह्मा फिर चिंता करते हैं कि ५ रुपये और एक काले घोड़ेका वचन दिया है वह तो देना ही होगा। दूसरे दिन ५ रुपये और काला घोड़ा भेज दिया। दूसरे दिन फिर साधुने कहा बेटा तुम्हारे पास क्या है ? बोला ५ रुपये और एक काला घोड़ा। अच्छा तो घोड़ेको बेच दो। १०० रुपयेमे बिक गया। १०५ रुपये हो गये। वही काम किया। सामान खरीदा और गाव भरको खिलाया। इस तरहसे कई दिन गुजर गये। अब ब्रह्मा सोचते हैं कि बड़ी आफत आयी। ५ रुपये तो जहासे चाहें दे देंगे पर काला घोड़ा रोज-रोज कहासे भेजेंगे ? अब ब्रह्मा साधुसे हाथ जोड़कर कहने लगे, महाराज अब कष्ट न दो। जो कहोगे करूगा। हमने इसकी तकदीरमे वही करोड़पतिका वैभव फिर लिखा। तो प्रयोजन यह है कि जिस क्षण पदार्थोंकी चितामे रात दिन रहते हैं और इस अपने चैतन्यप्रभुकी सुधि खो बैठते हैं ऐसी जिन्दगी बिताकर लाभ क्या मिलेगा सो बतलावो ? इस जिन्दगीमे कोई सार नही है। धन वैभवको तो पुण्यके भरोसे पर छोड़ दो। उदय ठीक है तो आपका थोड़ेसे ही काम बन जायगा और यदि उदय ठीक नही है तो आप कितने ही बहाने करें, कितनी ही चिंताए करें, कितना ही आत्मकल्याणका प्रयत्न करें, काम न बनेगा। इसीसे ही पुण्यवानोंकी शोभा है। जड़ वैभव की तृष्णा बनी रहती है तो इससे पुण्यवानोकी शोभा नही है। देखा होगा आपने बड़े बड़े पुण्यवानोंको। उनका काम उनके ही पुण्यसे चल रहा है। और ये पुण्यवत सेठ किसी सत्सगमे बैठे हैं और किसीकी सेवा कर रहे हैं, अपने ही धर्म कार्योंमें दत्तचित्त है। सब लोग देख रहे हैं। ऐसी स्थितिमें पुण्यवानोकी कितनी शोभा बढ़ती है। शोभा तो धर्मसे है, तृष्णाओंसे शोभा नहीं है। इस कारण बाह्य पदार्थोंमे तृष्णाको त्यागकर उदयके अनुकूल जो कुछ मिला है उसको भी अपनी जरूरतसे कई गुना मानकर उस ओरसे निर्विकल्प हो और आत्महितके लिए अपने आत्मस्वरूपका श्रद्धान करो, ज्ञान करो और अपने आपके आत्माका ही रमण करो। यह विधि अपने उद्धारकी हैं बाकी तो इन भोगोकी तृष्णामे लाभकी आशा तो दूर है किन्तु हानि ही हानि पावोगे। इस जीवनमे क्लेश, मरने पर क्लेश और जिस जीवनको पावोगे उसमे भी क्लेश, सो यह होता है इसकी ज्ञान दृष्टि रहे और अपने आत्महितकी कोशिश करो। यह होगा ज्ञानार्जनसे। सो ज्ञानी पुरुषकी सेवा सत्सगमे रहते हुए अपने ही शुद्ध ज्ञानका भजन करलो तो साथी और शरण यही सत्य ज्ञान होगा। अन्यकी शरण सोचना धोखा है। उससे कोई लाभ न होगा। किसकी शरण देखो ? अपने आपमे बसे हुए अनादि अनन्त शुद्ध चैतन्य घन जो निज प्रभु है उसकी शरण गहो, वहा ही तुम्हे आत्महित मिलेगा, शाति मिलेगी। इस मोह पर दृढ प्रहार करो कि यह टूट जाय और अपने आत्माके ज्ञानप्रकाशका अनुभव हो जाय।

बहिरात्मा उसे कहते हैं जो बाहरी पदार्थोंको अपना आत्मा समझे। बहिरात्मा कहो या मिथ्यादृष्टि कहो सारा ससार बहिरात्मासे भरा हुआ है। मनुष्यकी सख्या बहुत बडी है और सबकी छोटी है। मनुष्यगतिमे ज्यादा है नरकगतिके जीव, और नरकगतिसे ज्यादा हैं जीव देवगतिमे और देवगतिसे भी ज्यादा जीव हैं तिर्यञ्चोमे भी ५ हैं ना। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय और पचेन्द्रिय जितने पचेन्द्रिय तिर्यञ्च हैं उससे ज्यादा चार इन्द्रियमे हैं उसमे ज्यादा तीन इन्द्रियमे, उससे ज्यादा दो इन्द्रियमे और उसमे ज्यादा एकेन्द्रियमे और ऐकेन्द्रियमे भी ५ भेद है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। इनमे सबसे ज्यादा अग्नि, उससे ज्यादा पृथ्वी, फिर जल फिर वायु और सबसे अधिक है वनस्पति। वनस्पति जीव भी दो तरहके होते हैं। एक प्रत्येक और एक साधारण। प्रत्येकसे अनन्तगुणा साधारणमे जीव होते है। चाहे साधारण कहो, चाहे निगोद कहो दोनोका एक अर्थ होता है। तो कितने है निगोदिया जीव ? जैसे आलू, मूली, रताल कद आदि होत हैं तो एक सूईके अग्रभाग पर जितना कद आया उतने टुकडेमे अनन्ते निगोदिया जीव होते हैं। फिर समूचा देख लो। ये तो है निगोदिया जीव जो वनस्पतिके सहारे रहते हैं और सूक्ष्म निगोदिया जीव उससे भी अधिक है। वे कहा रहते हैं ? सब जगह। लोकमे जितना आकाश है सर्वत्र भरे हुए हैं। वे सब जीव बहिरात्मा है, अन्तरात्माकी क्या गिनती। अतरात्मा किसे कहते है ? जो अन्तरमे अपने आपके स्वरूपमे आत्माका अनुभव करे कि यह मैं हू। केवल ज्ञानदर्शन मात्र चैतन्यस्वभावी यह मैं हू। ऐसा अन्तरमे जिसने आत्माको माना है उन्हे कहते हैं अतरात्मा। और परमात्मा किसे कहे ? जो अतरात्मा साधना के बलमे चार घातिया कर्मोंका नाश कर चुकते हैं, केवलज्ञानदर्शन अनन्त आनन्द, अनन्तशक्तिका जिनके पूर्ण विकास हो जाता है ऐसे सर्वज्ञदेवको परमात्मा कहते हैं। सो बहिरात्मा, अतरात्मा और परमात्मा इन तीनोका जानना सुगम है पर आत्माका जानना कठिन है। आत्माका वह सामान्यस्वरूप जो बहिरात्मामे भी है, अतरात्मामे भी है और परमात्मामे भी है तीनोमे जो आत्माका सहजचैतन्यस्वरूप है उस स्वरूपका नाम है आत्मा। इसीको कहते है कारण-परमात्मा। इस ही का नाम है समयसार। इस जीवमे बहिरात्माका तो खूब परिचय किया और कुछ चर्चासे अतरात्माको भी जाना और परमात्माको भी जाना, पर परमात्मास्वरूप जो तीनो अवस्थावोमे रहता है उस परमात्म-स्वरूपको न जाना। जब तक आत्मस्वरूप जाननेमे न आयगा तब तक सम्यग्दर्शन नही होता। एक दृष्टान्त लो, जिस दृष्टान्तसे यह सुगमतया समझमे आयगा कि सर्वआत्मावोमे सामान्यस्वरूपका नाम आता है कारणपरमात्मा है। जैसे मनुष्यत्व कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय है, कोई वैश्य है और कोई शूद्र है। मान लो ४ प्रकारकी जातियोमे बटे हुए मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनसे बढकर चले तो प्रत्येक मनुष्य एक एक व्यक्ति है। उन सब व्यक्तियोमे जो मनुष्यत्व पाया जाता है वह सब एक स्वरूप है। जैसे कभी बुलावो कि ब्राह्मण आए तो ब्राह्मण ही आ गया। क्षत्रियको बुलावो तो क्षत्रिय आ गया। परन्तु मनुष्य आय तो कोई आ सकता है। उसमे विशेषता नही की जा सकती है कि तुम आये तुम क्यो न आये ? जैसे हजारो मनुष्य हैं, पर उन हजारो मनुष्योमे पाया जाने वाला जो मनुष्यत्व है, वह एक स्वरूप है। और भी दृष्टात लो। बालक जवान और बूढा, तीन दशाए होती है। तो आपने बालक बहुत देखे होगे ? क्यो ना ? जवान भी देखे होगे और बूढे भी देखे होगे, पर मनुष्य न देखा होगा। आप कहेगे देखा तो है। नाम लेकर बता दोगे। यह फलाने भाई हैं ये फलाने हैं। यह जवान है यह बूढा है। पर मनुष्य देखा हो तो बतलावो। तुमने तो बालकको बताया, जवानको बताया और बूढेको बताया पर मनुष्य तो नही बताया। बालक, जवान और बूढे देखनेमे आये पर मनुष्य नही देखनेमे आये। मनुष्य जान जाते हैं ज्ञानबलसे। यह मनुष्य सामान्य जो बालक बना, वही जवान बना और वही बूढा बना। तो सब अवस्थावोका जो आधारभूत हैं, जिसकी ये तीन परिणतिया होती है ऐसा जो कुछ ज्ञानमे जचा इसका नाम मनुष्य है। इसी तरह बहिरात्मा अतरात्मा और परमात्मा तीनोका खूब स्वरूप समझो तो आत्मा परिचयमे आये। परमात्मा कौन है तो जो आत्मस्वरूप, जो चैतन्य-

स्वभाव बहिरात्माका जो नाटक करता था, कभी अतर त्मा बना और कभी परमात्मा बना। जिस स्वरूपके आधार मे अनेक परिणतिया होती हैं वह मनुष्य ही आत्मा कहलाता है। उसको ही परमात्मा कहते हैं। उसको ही कारण परमात्मा कहते हैं। कारणपरमात्माको लक्ष्यमें लेनेके लिए आचार्य महाराज ग्रन्थोमे उपदेश दते है। ये मायामय समागम सब कुछ मिल गए, परिवार मिल गया, धन मिल गया, मोहीजन मिल गए, सब कुछ मिल गया मगर शरण सहाई कोई न हो सका इस आत्माका। स्वरूप इजाजत ही नही देता कि एक आत्माका कोई दूसरा आत्मा शरण बन जाय ऐसा कोई स्वरूप इजाजत ही नही देता। ऐसा हो ही नही सकता है। सबका जुदा जुदा परिणमन है और अपने-अपने परिणमनसे परिणमते रहते हैं कोई दूसरा साथी नही है। मान लो कभी कोई गुजर गया तो घरके लोग रोते हैं ना ? और बाहरी रिश्तेदार फेरा करन आते हैं। तो रिश्तेदार भी स्टेशनसे उतर कर रोते हुए आते हैं। महिलाए तो विशेषकर। चाहे रेलमें बैठे हुए ताश खेलते हुए गप्पे करते हुए आये हो मगर घर रोते हुए आयेंगे। जब उनका रोना सुना तो घरके लोग और तेज रोने लगे। तो बतलाओ रिश्तेदार क्या उसके दुखके साथी हो गये। अगर कोई रिश्तेदार अतरगसे दुखी होवे तो भी दुख नहीं बटा लगे किन्तु रिश्तेदारोने भी एक दुख मोल ले लिया। उसका दुख तो ज्योंका त्यो है उसके दुखको कोई बाट नही सकता। पर रिश्तेदारोने अगर दुख किया तो और दुख मोल ले लिया। जैसे किसी इष्ट पुत्रकी कठिन बीमारीको देखकर मा भी बीमार हो जाय तो मा को पुत्र की बीमारीने नही बीमार बनाया किन्तु मा ने स्वय मोह करके बीमारी मोल ले लिया। दूसरोका दुख कोई बाट ना नही है। गुरुजी सुनाते थे कि खुरईमे श्रीमत सेठ रहते थे, वे बडे तेज पुरुष थ। दो शादिया शायद हो गई थी तीसरी फिर हुई। बहुवोन, नौकरानियोने सेठानीको समझा दिया कि सेठानीजी सेठजी बडे तेज मिजाज है सो बडा ध्यान रखना। उनका आर्डर तुरत निभाना। एक बार सेठजी का सिरदद हुआ। सेठने खबर दी कि सेठानीको भेजो दवा दारु करे। सेठानी दवा दन गई। दुखी होनेका रोग बनाकर सेठानी गई, विह्वल होने लगी और अपने पलग पर पड गई और बडा कष्ट बताने लगी। सेठानी तो सेठकी नई बहु थी, अपने सिर ददको भूलकर खुद सेठानीके पास पहुचे। सेठने पूछा क्या तबियत खराब है ? क्या दद करता है ? सेठानीने कहा कि जबसे मैंने आपके सिरमे ददका समाचार सुना तबसे मैं विह्वल हो रही थी। इस समय मरी तबियत खराब है बात न करो। यह एक लटका सेठानीने सेठको दिखाया। तबसे सेठने फिर कभी मिजाज नहीं दिखाया। तो कोई किसीके सुख दुखको नही बाट लेता है। घरके दस आदमी सुखसे रहते हैं तो कोई किसीके सुखको नही बाट लेता है। सब जीव अकेले है, किसी जीवका कोई साथी नही है, अकेले ही सब काम भोगते हैं, अकेले ही सब कषाय करते हैं। कम बध होता है तो अकेले ही होता है। कोई किसीका साथी नही है। साथी होना तो दूर रहा, बिगाड न हो उनके निमित्तसे तो यह ही गनीमत है, पर ऐसा होना नहीं है। बतलावो ससारमे अनन्ते जीव हैं उनमेसे इन चार घरके आदमियोंका कौनसा ऐसा स्वरूप है जिससे आप यह निरख सकें कि ये मेरे कुछ लगते है। कोई डिस्टेक्शन भी नही है, न कोई विशेषता है, सब जीव एक प्रकारके हैं, फिर इन घरके चार जीवोमे जो मोह किया राग बना इसका फल कौन भोगेगा ? सो सत्य तो वे ऋषि सत ही बतला रहे हैं कि तुम अपने सहजस्वरूपको निरखो। बहिरात्माकी अवस्थामे भी वही ह अतरात्माकी अवस्थामे भी वही है और परमात्माकी अवस्थामे भी वही है। तो उस अपने आत्मस्वरूपको पहिचानो। ऐसा ही परमात्मा, शुद्धात्मा, निज आत्मा या परम ब्रह्म देहमे बसता हुआ भी देहको छूता नही है। और देहमे यह आत्मा छुवा जाता नही है, इसका वणन ३४वी गाथामे कहा है।

देह वसतुवि णवि छिवइ णियम देहु वि जो जि।
देह छिप्पइ जो वि णवि मुणि परमप्पउ सो जि ॥३४॥

जो देहमे बसता हुआ भी देहको छूता नही है और देहके द्वारा छुवा जाता नहीं है उसको तुम परमात्मा

जानो। जैसे गेहूके ढेरमे या मध्यमे कोई लोहेका पिंड है, उस लोहेके पिंडके बीच आकाश रह रहा है पर आकाश को लोहा नही छू रहा है और न लोहेको आकाश ही छू रहा है। यही हम आप आकाशमे बैठे है, पर आकाशको हम आप छू नहीं रहे है। आकाशमे हाथ रखे है पर आकाशसे हम आप छुवे हुए नही है। इस तरहप बढकर बात देखो। यह ज्ञानानन्द भावमात्र आत्मा इस देहमे बस रहा है और निमित्तनैमित्तिक बधन भी लगा है। आकाशमे और हाथमे बधन तो नही है। यहामे हाथको उठाकर यहा कर लिया तो आकाश भी साथमे भागता, फिर ऐसा तो नही है। मगर देहमे और आत्मामे एक बधन भी है कि आपका देह वहांसे उठकर यहा आ जाय तो आत्मा भी आ जायगा। ऐसा बधन भी है पर देह आत्माको छुवे हुए नही है और आत्मा देहसे छुवा हुआ नही है। जो आत्मा ज्ञानभावमात्र है उसको तुम परमात्मा जानो। यह देह कैसे बना है ? जो पहिले उपार्जित कर्म थे। उन कर्मोंके द्वारा यह देह बना हुआ है। यह सब आटोमेटिक काम हो रहा है। यह समझमें आ जाय तो वस्तुकी व्यवस्था बता सकते हैं। पर कोई किसी परद्रव्यको करदे, ऐसी धारणा बनाए तो वस्तुकी व्यवस्था नही बताई जा सकती है।

यह देह पहिले उपार्जित किए हुए क्षद्र कर्मोंके निमित्तसे बना हुआ है। वे कर्म कैसे उपार्जित किये थे, क्रोध, मान, माया लोभ जो अपने स्वरूपके विभावपरिणाम है इन विभावपरिणामोके कारण वे कर्म उपार्जित हुए थे। कहा तो मुझ शुद्ध आत्माका एकमात्र चैतन्यस्वरूप और कहा उस स्वरूपके विपरीत क्रोध, मान, माया, लोभकी अवस्था, कितना महान् अन्तर है ? कोई उच्च कुलमे पैदा हुआ मनुष्य कुछ नीच सावद्य काम करनेमे उतारु होता है तो लोग समझाते हैं कि जरा अपने पुरुषोंकी तो बात देखो। कहा तो तुम्हारा ऐसा उच्चकुल और कहा तुम्हारी मास भक्षण रूप प्रवृत्ति ? आश्चर्य बताते है। इसी प्रकार यह भी महान् आश्चय है। कहा तो यह शुद्ध आनन्दस्वरूप ज्ञान और आनन्दरस कर परिपूर्ण और कहा ये क्रोध, मान माया, लोभ, कषाय, ये बिल्कुल विपरीत है, ऐसे विपरीत विभावोसे कर्मबध हुआ था। जैसा कर्मबध होना था उसके अनुसार अब यह नवीन शरीर रचा गया है। इस देहमे यह आत्मा बस रहा है। निश्चयसे तो आत्मा अपने स्वरूपमे बस रहा है। देहमे नही बस रहा है। जैसे एक दृष्टान्त लो। एक घडेमे आपने दही भर दिया। तुम सोचो कि यह दही किसमे रह रहा है ? क्या उत्तर दोगे ? निश्चयसे तो दही दहीमे रह रहा है। घडेमे दही नही है। चाहे घडेको फोडकर खपरियोमे देख लो। घडेमे दही नही रह रहा है, दहीमे दही है। इसी प्रकार आत्माकी बात है। आत्मा कहा रह रहा है ? आत्मा, आत्मामे रह रहा है, आत्मा शरीरमे नही रहा है। पर जैसे दही मिट्टीके घडेमे व्यवहारसे रह रहा है इसी प्रकार आत्मा देहमे व्यवहारसे रह रहा है और वह असद्भूत व्यवहार है। लेकिन सम्बन्ध है इसलिए अनुपचारित असद्भूत व्यवहार है। जैसे कहते हैं कि यह मेरा शरीर है। यह बात झूठ है कि सत्य है ? किस नयकी बात है अनुपचारित असद्भूत व्यवहारकी बात है और कहे कि यह घर मेरा है तो यह कितना झूठ है ? और मेरी जितनी बात है यह झूठ है, उससे कम झूठ है कि ज्यादा ? यह मिट्टीका मकान मेरा है, यह बात कहना झूठ है कि नही ? इसे उपचारित असद्भूत बोलते हैं। यह आत्मा देहमे बस रहा है सो यह बात झूठ नही है। सम्बन्ध है लेकिन फिर भी भिन्न भिन्न वस्तुवें हैं। इस कारण यह असद्भूत व्यवहारसे रहा है, पर निश्चयसे देखो तो यह देहको छूता नही है और यह देहके द्वारा छुवा नही जाता है। तब सर्वविकल्प हटाकर इस देहका भान न रहकर केवल ज्ञानस्वरूप अपना आपका उपयोग रहता है तब यह कितना हल्का हो जाता है ? मानो यह जमीन पर भी नही बैठा है। अत्यन्त हल्का भार-रहित अनुभवमे आता है। ऐसे अपने इस शुद्ध आत्माके ज्ञान बिना लाखोंकी भी सम्पदा जुड जाय तो बेकाम है, बेकार है। शाति देनेमे समर्थ नही है। रईसोका दुःख रईस जाने और आजके जमानेमे तो कहना ही क्या है ? नीद नही आती है। सर्वसाधन हो गए, ठडे कमरे हैं, ठडे नही है तो मशीनसे ठडे कर लिये। मकानमे पहरेदार भी खडे है। मत्री लोग जी हजूरी कर रहे है पर वह धनिक पुरुष अन्तरमे बेचैन हो रहा है। उसके दिलको पकडकर आप-

रेशान कौन कर सकता है ? वह धनि बड़ा दुःखी है। शांति तो जब अपने अखण्ड चैतन्यस्वरूपका उपयोग हो तब हो सकती है। जैसे मनुष्य मनुष्य सब एक तरहसे पैदा होते हैं। एक तरहसे मरते हैं। मनुष्य मनुष्यका सुख दुःख भी सब एक तरहसे चलता है। जातिभेद हो जाय जैसे कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई हिन्दू है। पर जाति भेद होनेमे यह नही हुआ कि कोई और ढगसे पैदा हो, कोई और ढगसे मरता हो। सुख दुःख भी सब एक ही ढग से होते हैं। सबकी एक विधि है। सुख दुःखमें मृत्युविधानमें फर्क नही है। विशेषकी बात अलग है। इष्ट चीज न मिलनेसे दुःख है। यही बात मुसलमानोमे वही बात हिन्दुवोमें है। मृत्यु विधान सबका एक है। सब एकस्वरूपमें उत्पन्न हुए हैं। यो उत्पन्न होनेमे क्या हुआ ? कोई जल्दी उत्पन्न हुआ, कोई देरमें, इस भेदकी बात नही कह रहे हैं। मृत्युविधि एक है। इसी प्रकार जो जीव सकटोसे छूटेंगे, सत्य सुख होगा उनका एक ही प्रकार है कि वे अपने आत्मा के शुद्धस्वरूपको जान ले और इस शुद्धस्वरूपमे रम जायें। कोई भी आत्मा हो जो भी सकटोसे मुक्त होगा वह इस ही उपायसे मुक्त होगा और कोई दूसरा उपाय नही है। ऐसे तुम अपने परमात्माको जानो। अर्थात् वीतराग निर्विकल्प समाधिमे स्थित होकर अनुभव करो। इस दोहे मे यह बात कह रहे हैं कि ममत्व परिणममे स्थित जीवोसे जो शुद्ध आत्मा हेय है यान छोड़ा हुआ है ममतासे ग्रस्त जीव अर्थात् पहिले गुणस्थान वाले जीव मिथ्यादृष्टि शुद्धआत्मा का छोड़े हुए है पर जिस दहमे ममत्वका परिणम नही रहा, भेदविज्ञान हो गया ऐसे ज्ञानी जीवोका यह शुद्ध आत्मा, महाद्वीप है। तुमको सब प्रयत्न करके आखिर एक चीज क्या जानना है ? अपने आत्माका सहज जाननस्वरूप जानना है। इस अपने आत्माके स्वरूपका ज्ञान न हो तो आप धर्मके नामपर कितने ही व्रत करलें, क्रिया कर ले, विधान कर लें, भक्ति कर लें, वे सब फल न देंगे। उल्टा ही काम कहलायगा। अपना ज्ञान अगर सही है तो थोड़े व्रत हो, थोड़ा तप हो थोड़ी साधना हो, सब सही है।

ये जो डेगची होती हैं, जिनमे साग छोकते हैं, पतला कहते हैं। भगोना भी बोलते हैं। भगोना इसलिए बोलते हैं कि भगोना। उसका टालो तो मुश्किलसे सरकता है सो भगोना। जो भागे नही सो भगोना हम पतली की बात कह रहे हैं भगोना की नही। पतेली जिसमे साग आदि छोका जाय पतेली मे नीचे तली नहा होती है गोल होती है। अगर सबके नीचे पतेली औंधी रख दो तो ऊपर कैसे रखवा ? औंधा ही रखना पडेगा ४-६ १० कितन भी रखो औंधी ही रखना पडेगा और पहिले सीधी रख दो तो सब सीधी ही रखना पडेगा इसी प्रकारस आत्माका ज्ञान जब सही है तो जितने भी व्रत तप आत्मामें धरोगे वे सब सीधे आयेंगे। तो पहिले ज्ञान ही मिथ्याचता है तो जितने ही जप तप करोगे तो वे सब मिथ्या हो जायेंगे। इसलिए आत्मज्ञान सही होना धर्मके लिए सवप्रथम आवश्यक है। जगतके जीवोने अब तक बहुत बहुत परिणितियोका ज्ञान और किया वह भी द्रव्यमवस्वके रूपसे ज्ञान किया किन्तु अपने आपमे नित्य प्रकाशमान शुद्ध आत्माका ज्ञान न किया और इसी कारण यह जीव ससारमे रुलता रहा है। ससारसे छूटनका उपाय कितना सुगम है कितना स्वाधीन है कि अपनी ओर जरा दृष्टिकी कि लो सवसकट समाप्त हो जाते हैं। इस शुद्धआत्माको कोई भी देखले, शुद्धात्मत्वका ज्ञान अनुपम आनन्द उत्पन्न करता हुआ होता है। जो समता परिणममे रहने वाले योगी हैं उन योगियोमे शुद्धआत्माके दर्शन से उत्पन्न होने वाले आनन्द का विशेषकर अनुभव है। यह शुद्धआत्माका ज्ञान आनन्दको पैदा करता हुआ प्रकट होता है।

जो समभाव परिट्ठियइ जोइह कोई फुरेइ।
परमाणँद जणँतु फुडुं सो परमप्पु ह्वेइ ॥३५॥

यह परमात्मा उनको दृष्ट होता है जिनको जीवन और मरण आदिमे समता परिणाम हो। कोई अलौकिक निधि है यह जिसके देख लेन पर मरणकी भी यह उपेक्षा कर जाता है। मरण आता हो तो आगे यदि मैं अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपको उपयोगमे लिए हुए हू तो चाहे मरण आये उस समय भी समाधि परिणममे रहू, मृत्यु होनेका फल तो

उत्तम है। मरणका भय उन्हे होता हैं जिन्हे इन समागमोमे लोभ है, तृष्णा है, रुचि है, मेरा इस जगत्‌मे कही कुछ नही है, मेरा तो मात्र यह मैं आत्मा हू और यह शुद्धआत्मा मेरे उपयोगमे रहे ऐसी स्थितिमे मैं इस दुनियाको छोडकर किसी भी दुनियामे चला जाऊ तो मेरी हानि नही है। विकल्प क त हो, राग और द्वेषकी परिणतिया बनी हो तो चाहे डाक्टरोके बीचमे हो, लडका लडकियोके बीचमे हो तो भी हानि ही हानि है। ये लोग क्या स थ दे देगे ? इसलिए ज्ञानी सतोका ऐसा दृढ चित्त रहता है कि समता परिणममे रहू। मे । कुछ भी बना रहे अथवा न रहे, कुछ भी हुआ करे उसमे मेरा लाभ ह है। जीवन और मरण इन दोनोमे जरा सोचो कि अनर्थ काय कौन है ? जन्म है अनर्थं काय कि मरण है ? मरणके बाद मुक्ति होती है और मलिन जोवसे सम्बन्धी गतिया होती हैं। पर जीवनके बाद मुक्ति किसमे हुई ? निर्विकल्पका पूवरूप जन्म है कि मरण है ? जब आयुकर्मका क्षय होता है तो वह जीव मुक्ति को प्राप्त होता है। अयुकर्मका क्षय कहो या मरण कहो, एक ही बात है। अरहत भगवान्‌के मरणका नाम पडित-पडितमरण है। मरण शब्द को लोग असगुन बताते हैं। भगवान्‌के मरणका नाम मरण नही कहा उसको निर्वाण कहते है, किन्तु मरणका नाम यही है ना आयुका विनाश। आयुका विनाश अरहत भगवान्‌के भी होता है। सभी कर्मोका विनाश मरणके बादमे होता है पर जन्मके बाद किसीका निर्वाण होता है दूसरी बात यह है कि जन्मका समय कोई समता परिणमको लिए हुए नही होता पर मरणके समयमें समतापरिणाम हो सकता है, और समतापरि-णाम जिस स्थितिमे रहता है वह ना है उपादेय और जिसके समतापरिणाम नही रहता हैं वह है अनुपादेय। जन्मके समयमे समतापरिणाम किसीमें हो, पुराणोमे पाया हो या कही समझा हो तो बतलावो। जन्ममे समतापरिणाम होता ही नही है। चाहे तीर्थकरका भी जन्म हो मगर जन्मके समय भी तीर्थकरके भी समताआत्मसमाधि परिणाम नही होता है। मरणके समयमे ही समाधिपरिणाम होता है। समाधिमरण तो लोग कहा करते हैं पर समाधि जन्म भी कोई कहता है क्या ? अच्छा जन्म और मरणमे से भला कौन है ? मरण। मगर ये मोही लोग इस मरणसे भय खाया करते हैं, सो भय खानेकी चीज मरण नही है। भय जो उत्पन्न होता है जीवके वह मोह रागद्वेषके कारण होता है। कोई भी पुरुष मर रहा हो ऐसे मरणके समय उसके घरमे राग नही है, परिवारमे राग नही है, किसीका विकल्प नही है और अपने एक शुद्ध ज्ञानस्वरूपका ही तक रहा है तो उसको कोई सकट नही। साधुजन जीवन और मरण, इनमे समतापरिणाम रखते है। लोभ और अलोभमे भी जिन योगियोमे समतापरिणाम होता है उन योगियोमे परम शुद्ध आनन्द उत्पन्न करते हुए यह शुद्धआत्मा प्रकट होता है। एक जगत्‌मे की टीकामे दृष्टात दिया है कि नई बहूके जब उसके गर्भ रहा और गर्भका दिन पूर्ण हुआ तो सास से कहती है सासजी जब बच्चा हो तब मुझे जगा लेना। ऐसा न हो कि मेरे सोतेमे ही बच्चा हो जाय तो सास जवाब देती है कि बहु डर मत। बच्चा पैदा होगा तो तुझे जगाता हुआ पैदा होगा यह कारणपरमात्मा शुद्धआत्मा जिनको दृष्ट होता है, उनके उपयोगमे प्रकट होता है। प्रभुके दर्शन हो चुके, उनका चिन्ह क्या है ? उनका चिन्ह है अनुपम अलौकिक शुद्धसहज आनन्दका अनुभवन। इन लौकिक भोगविषयोके कल्पित सुखको छोडकर वास्तविक आत्मीय सुखका अनुभव जिसे हुआ उसे प्रभुके साक्षात् दर्शन हुए समझना चाहिए। हम सकल्प विकल्प मचाया करते है और चाहते हैं कि मुझे प्रभुके दर्शन हो तो यह नही हो सकता है। परपदार्थोकी रुचिपूर्वक बैठाले हुए आसन पर प्रभु विराजमान नही होता। जब आपके घर कोई मेहमान आफि सर आदि आते हैं तो आप अपने घरकी बहुत सफाई किया करते हैं। तो जब हम प्रभुको अपने हृदयमे विराजमान करना चाहते हैं तो प्रथम कर्त्तव्य तो हमारा यह है कि हम अपनी हृदय भूमिको हृदयआसनको स्वच्छ बनाए। हृदय की स्वच्छता यही है कि किसी परपदार्थोमे राग द्वेष न बसे। लोग परिवारमे मौज मनाते है धन वैभवमे मौज मनाते हैं, हर्ष मनाते हैं पर ये सब खाक है विनाशीक है भिन्न है, विकल्प उत्पन्न करनेके कारण है। इन दृश्यमान् मायामय पदार्थोसे इस मुझ आत्माका कभी भी हित नही होता है। प्रभु तो यह बताओ कि मैं आनन्दस्वरूप हू मुझमे मेरा मत्स्य स्वभाविक आनन्द प्रकट हो मुझे इस आनन्दकी चाह है। मैं अन्य मौजो को नही चाहता हू। यह आनन्द

निधान शुद्ध आत्मा, परमात्मदेव, कारणपरमात्मा समयसार इन आपमें नित्य विराजमान है। पर हम उसकी ओर दृष्टि न करें तो उस आनन्दनिधिका हमे अनुभव कैसे हो ? हमारी इस ओर दृष्टि नही है। इसका कारण है कि अज्ञानवश हमने पचेन्द्रियकी ओर, मनके विषयोकी दृष्टि दी है, वे विषयोका ही परिचय पाया करते है और उनका ही अनुभव किया करते है। पर जो नित्य व्यक्त है अतरगमे, अतरगमे प्रकाशमान सदामत् यह शुद्ध प्रकाशमान् आत्मतत्त्व कही ढूढा नही जाता है, कही पैदा नही करना है किन्तु अपने एक उपयोग नेत्रको निरखना है। यह निरखना जब होगा तब पचेन्द्रियके भोगविषयोमे रुचि न रहेगी। पचेन्द्रियके विषयोकी रुचि न रहे इसके लिए यत्न करना होगा वस्तुस्वरूपका यथार्थज्ञान करनेका। हम और आपकी यदि कुछ शरण है तो वह ज्ञानमात्र शरण है। भटकते बहुत जिन्दगी तो हो चुकी है। कितना तो भटक चुके है। जन्मसे लेकर अब तक क्या क्या कल्पनाए नही की है, किन-किन स्वप्नोमे नही रहा हू ? इतना-इतना करनेके बाद भी आज पूछो तो शाति मुझमे नही आयी है, शाति यदि अपनेमे खोजें तो शायद हो मिलेगी। शांति नही पाई कुछ आनन्द नही पाया तो हम तो ज्योके त्यो रह गये। अब रही सही जिन्दगी है। कुछ ही रही सही जिन्दगीमे कुछ अनोखा काम करनेकी सोचे जैसे काम करते आये हैं उन कामोमे तो शांति और आनन्द अब तक नही मिला। अब तो कुछ विलक्षण काम करिये। लगातार ८-१० वर्ष तक जिस दुकानमे टोटा पड़ता है उसको बद करके नया व्यापार करनेकी सोचते हैं। तो ४०-५० वर्ष तक रागद्वेषोंका रोजगार करते हो गये, टोटा ही टोटा क्षोभ ही क्षोभ रहा नुकसान ही होता चला आया, तो अब हमारा कर्तव्य है कि अपने खोटे रोजगारको बद करके कोई अनोखा रोजगार करें। खोटा रोजगार है परदृष्टि, अनोखा रोजगार है निजदृष्टि। निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नही लेश निदान। आप तो यह सोचते होंगे कि ऐसा साधु सत ही कर सकते होंगे, गृहस्थके वसकी बात नही है। पर विचारो यह कि आत्मस्वभावका स्पर्श होना, श्रद्धान् होना यह किस बल पर हुआ करता है ? ज्ञान बल पर। जैसे हम अन्य-अन्य चीजोंको जाना करते है उनको न जानकर कुछ अन्तरमे ही अपने आपके जाननेमे लग जायें तो क्या हमे अन्य चीज जाननमें न आ सकेंगी ? आयेंगी। अन्तर इतना होगा कि चू कि हमारी स्थिति गृहस्थीके वातावरण की है सो थोडी देर हम उपयोगका ज्ञानस्वभावका स्पर्श कर लेंगे, मगर स्थिरता नही आ सकती है। फिर विकल्प आ पड़ेंगे उन बाधक विकल्पो को दूर करनेके लिए जिस तरहके ज्ञानानुभवका उत्कृष्ट आनन्द मैंने सदाकाल बर्ता उसको बर्तूं। इन भावोंसे गृहस्थी का त्याग किया जाता है। परिग्रहका सन्यास किया जाता है क्योकि सन्यास अवस्थासे किसी परपदार्थमे यदि उसकी बुद्धि नही लगती है तो ऐसी स्थितिमे हम अपने शुद्ध ज्ञानके अनुभवमे स्थिर हो सकते हैं। चाहे एक तोला भर रसगुल्ला खा लें, चाहे पावभर रसगुल्ला खा लें एकसा स्वाद आता है। यह तो तोलाभर खाने वाले लोग जान जायेंगे। छक कर नहीं खा सके इतनी ही बात है और वह स्वाद आये बिना इस स्वादको निरन्तर लेते रहनेके लिए उत्सुकता कैसे आ गयी ? गृहस्थावस्थामे भी ज्ञानानन्दका अनुभव होता है, यदि न हो ज्ञानानन्दका अनुभव तो श्रवण बननेके लिए, परमेष्ठित्व प्रकट करनेके लिए उसको उत्सुकता कैसे आ गयी ? यह शुद्ध आत्मा समाधिभावमे स्थित ज्ञानी सतोको एक अलौकिक आनन्द देते हुए प्रकट होता है। जिनका जीवन और मरणमे समतापरिणाम है, जिनका लाभ और अलाभमे समतापरिणाम है, जिनका सुख और दुःखमे समतापरिणाम है, आप बतलावो गृहस्थीमे कौनसा सुख भोगा ? बीते हुए सुखको आप दुःख ही मान जायेंगे। पर आगामी काल तक भोगे जाने वाले सुखको दुःख मानना कठिन पडेगा। कितना कितना तो रोज खानेका सुख लूटा, परिवारमे राग करनेका सुख लूटा, पर आज आपसे पूछें कि बतलावो कितना सुख आपने लूटा ? तो आपकी समझ जल्दी आ जायगी कि सुख नही लूटा वह दुःख ही था। जब आपके पिता लोग जीवित थे और कितने प्यारसे आपको देखते थे पर गुजरनेके बाद आप यह कह उठेंगे कि वह भी कुछ सुख न था, वह दुःख ही था। मोहसे उनके लाडसे समझकर मैं उनकी ओर झुक रहा था पर जब वियोग

हुआ तो अनन्तगुणा कष्ट हुआ। वह सब सुख दुःख ही था। एक पिताकी बात क्या ? और जितने भी आपके सुख है स्त्रीसुख विषयसुख, आज पूछा जाय तो उन भोगोंको भी आप दुःख मान जायेंगे। जैसे भोगे हुए सुखोंको आप दुःख मान सकते है इसी प्रकार भावी कालमे जिसकी आशा लगाये है ऐसे सुखको भी दुःख मान जायें तो समतापरिणाम मे क्या रुचि हो सकती है ? कौनसा सुख वास्तवमे है सो बतलावो। ये भोग सुख प्रथम तो कर्माधीन है, कर्मोका अनुकूल उदय हो तो ये भोगोंके सुख मिल सकते है। इतना ही नही उदय तुम्हारा ठीक है तो सुख मिल ही जाय। उदय है पर साथ ही ६ कर्मोका भी समागम उचित मिला नही तो कितने ही कर्मोके उदय योग्य साधनोके न मिलने पर यों ही खिर जाया करते हैं। अभी कुछ गप्पोंमे सिलसिला यदि छोड़ा जाय तो नींद लेते होंगे तो उनकी भी नींद खतम हो जायगी और गप्पोंके सुननेमे बड़ी सावधानीसे हाथ पैर कमरको ठीक सीधा करके सुनने लगेंगे। सम्भव है निद्रा कर्मोके उदयमे भी चल रही हो मगर ६ कर्मोके साधनसे मौज मिल रही है। गप्पोंके सुननेमे मौज मिलता हो तो गप्पोंका काम खतम हो गया है। इसी तरह कितना ही उदय परिवर्तित हो जाता है तो साधन सब कुछ हो जाने पर आपको कल्पनाओंसे सुख मिल गया तो वह सुख क्षणमे खतम भी तो हो जाता है और उस सुखके मिट जानेके बाद दो बातोंका पछतावा आता है कि लो बड़ी मुश्किलसे सुख मिला और वह भी खतम हो गया अथवा लो वह सुख नही था, बड़ा कष्ट था। मैंने अपनी बड़ी बर्बादी की, यों पछतावा होता है। यह सुख विनाशीक है। विनाशीक भी हो किन्तु आप कहेंगे कि जब तक सुख मिले हैं तब तक तो मौजसे सुख भोगेंगे ना ? तब तक भी मौज नही है। उन सुखोंके बीचमे अनेक दुःख आया करते है।

आपको अपने बच्चेकी शादी करनी है। एक सुखकी बात है ना ? शादीके प्रसगमे महीना दो महीना तो लग ही जाते है तैयारी करनेमे, आमन्त्रण पत्र छपानेमे। कही उन रिश्तेदारोंको मनाओ कहीं वे रूठ गये उनको मनावो। ये पच रिश्तेदार लोग शादी ब्याह आदिक मौके पर जब कि भोज होता है तब बड़े दाव पच करते है तो उस सुखके प्रसगमे भी यह बतलावो कि कितने दुःख भोग रहे है यह नही हुआ वह नही हुआ इधर-उधर दौड़ रहे है, कितने-कितने दुःख आ रहे हैं। एक कल्पनासे मान लिया कि सुख है पर वास्तविक सुख नही है। हुए हैं ये समारम्भ, पर बच्चेकी शादी करके इसके बाद आत्मामे वृद्धि क्या हो गई सो बतलावो। है यह काम गृहस्थीका पर श्रद्धाकी बात पूछ रहे है। कौनसा आत्महित होगा ? इस प्रकारके अनेक दुःख देख लिये। अभी लड़केकी शादीमे यह इच्छा हुई कि मिष्ठान्न भोजन बनवाना चाहिए तो सामग्री जुटवायी मिठाई बनाने वाले को मनाया, जब मिठाई बन रही है तो ऐसी जो प्रतीक्षा है टाइम लग रहा है उसमे व्याकुलता मिष्ठान्न पक गया। उसके बाद भी व्याकुलता, भोजन करते समय भी आकुलता, भोजन खाने पानेमे भी बेतहाशा। जल्दी खाने पीने लग जाते है चाहे आप अपने बड़प्पन की वजहसे सुखको थोड़ासा बनायें जिससे कि लोग जाने कि ये बड़े पुरुष है, खाने पीनेके लोभी नही है पर खाने समय अन्दरमे जो जल्दी चल रही है उसके भोगने वाले जानते हैं कि कितना विह्वल होकर सुखको भोगा करते है। कौन सा सुख है जो सुख कहा जाय ? प्रारम्भमे दुःख, मध्यमे दुःख अन्तमे दुःख। जो ज्ञानी सत पुरुष है वे सुख और दुःख दोनोंको समान समझते हैं। शत्रु और मित्र दोनोंको समान समझते हैं। हे आत्मन् सर्वपदार्थोसे भिन्न ज्ञानमात्र हे प्रभु ! तेरा परिणमन क्या जगतके अन्य जीवोके कारण हुआ करता है ? नही। फिर जगतके अन्य जीव तेरे साथी कहा और मित्र कहा ? जैसे तू अपने विषय कषायको चाहता है वैसे ही लोकमे विषय कषाय चाहने वाले ये सभी है। इस विचारमे यह समझमे आया कि इनको इनकी वजहसे हमारी इन विषयकषायोंमे बाधा हुई। तो वे कदाचित् दुर्वचन बोलने लगे। पर सच तो बतलावो दुर्वचन बोलने वाला क्या किसी परिणमनको कर रहा है ? वह तो अपने कषायोंकी चेष्टा करके अपने आपमे समाप्त हो रहा है। तू भ्रम करता और शत्रु मान रहा है। इसी प्रकार क्या तुम्हारा कोई मित्र है ? अपना स्वार्थ निकला तो मित्र मानने लगे। नही तो कोई शत्रु मित्र नही है। सब जीवोंका स्वरूप एक समान है ऐसा शत्रु मित्रका विवेक समताभाव जगा इस समतापरिणामके कारण शुद्ध आत्मा

का सच्चा विश्राम सच्चाज्ञान और उसमे ही रमण होता है। इसको ही रत्नत्रय कहते हैं। इसको ही निर्विकल्प समाधि कहते हैं। इसको ही वीतरागभाव कहते हैं। ऐसे पवित्र समतापरिणाममें ठहर कर परम योगियोंको कोई शुद्ध आत्मासे प्रकट करता हुआ व्यक्त होता है। उनके ज्ञानमें आता है। हे ज्ञानीसत समझो वही परमात्मा है। वह परमात्मा मुझमे ही बसा है। उसके ज्ञान बलको देखकर तुम अपने सकटोंको मिटा लो बस यही बड़प्पन है और यही विवेक है।

प्रकरण चल रहा है शत्रु और मित्रका। जगतमे जितने भी जीव हैं वे सब अपने-अपने परिणामोंसे अपने कषायोंके अनुसार अपने साधनोंके पूर्तिकी चेष्टा करते है। उन जीवोंकी कोई चेष्टा यदि तुम्हें अपने कषायोंके प्रतिकूल मालूम पड़ जाय तो मानने पर वे जीव तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। जैसे इसको अपने विषयकषायोंकी रुचि है इस ही प्रकार सब जीवोंको समस्त प्राणियोंको अपने-अपने कषायोंकी रुचि है। तुम्हारा कोई शत्रु नहीं और किसीको शत्रु मानकर अपने विरुद्ध ही करोगे, कुछ भलाई न पाओगे। किसी जीवकी यदि अपने पर शत्रुता जैसी चेष्टा हो गई है तो तुम उससे विनम्र व्यवहार करके उस शत्रुताको तुडा सकते हो। जैसे कोई जगतमे मेरा शत्रु नहीं है। इस ही प्रकार जगतमे कोई मेरा मित्र नहीं है। घरके लोग जो परस्पर प्रेम व्यवहारमें रहते है, वे लोग कहीं आप पर प्रेम नहीं करते हैं। उन्हें अपना विषय अपनी साधना, अपना स्वार्थ है, उनकी पूर्ति आपके निमित्तसे होती है तो आपको स्नेहभाव दिखाते है, यह स्नेह परिणाम उनका ही है, तुम्हारा नहीं है। एक चुटकुलेमे कहते हैं कि एक स्त्री अपने पतिसे बहुत कहती थी कि हमारा तुम पर इतना अनुराग है कि तुम न रहोगे तो हम जिन्दा न रह सकेंगी। बारी और और वाले करे। एक दिन पुरुषने परीक्षा लेनेकी सोची। तो बहुत दिनोंसे श्वास रोकनेकी साधना सिद्ध किया कि श्वास रोकलें तो आपको यह पता पड़े कि यह मर गया। रात्रिके १० बजे के समय खीर हलुवा सब कुछ तैयार हो चुका, खानेकी देर थी। खानेके ही समय पुरुष श्वास लेकर मरने जैसी अपनी वृत्ति बना ली। अब स्त्री बुलाती है कि आवो भोजन करो तो वह रखती है कि ये तो मर गये। सोचा कि १० बजे रात्रिको मर गये हैं, तीन चार बजे दिनको मर जाते तो रात्रिभर रोना न पड़ता। ये खीर हलुवा आदि बनाया है, अगर अभीसे रोने लगी तो सारी रात रोना पड़ेगा और खीर हलुवा बेकार हो जायगा। ये मर गये है तो मर गए है पहिले भोजन करें। खूब छककर भोजन किया, रात्रिभर सोई, सुबह ५ बजेसे रोना शुरु किया, लोग जुड़ आये। वह मरे जैसा टांगें पसारकर पड़ा था, मरनेका रूपक बनाए हुए। जब उसे दरवाजेसे बाहर निकालने लगे सो दरवाजा छोटा था। वह टांग पसारे था इस वजहसे न निकल सका। उसे औंधाया, फिर सीधा किया, अनेक उपाय से निकाला पर न निकला। कुछ लोगोंने कहा देर क्यों करते हो? कुल्हाडी और कुदाली लाकर दरवाजेको तोड दो। स्त्री कहती है पच लागो अब हम ऐसी हो ही गये। अब दरवाजा न कटाओ इसमें ५००) लगेंगे। ये तो मर ही गये, आखिर जला ही देंगे, इनकी एक टांग कुल्हाडी से काट कर निकाल लो। कुछ युवक पार्टी थी, मुसाफरनी, उनकी समझमें आया कि ठीक है, ये तो मर ही गए आखिर जला ही दिए जायेंगे कुल्हाडीसे टांग काट लो। वह तो बनावटी था ही। उसने समझ लिया कि अब ऐसे तो काम न चलेगा। जब काटने ही वाले थे तो उसने एडियाई ली जिन्दा होनेका रूपक बनाया। सब लोगोंने समझ लिया कि जिन्दा है, चले गए। यो देखलो, जगतमे जितने भी जीव हैं सब अपनी अपनी कषायसे अपनी अपनी चेष्टा करते हैं। कोई प्राणी मेरा चाहने वाला नहीं है। कौन मित्र है? और मित्र भी हो तो वह तब तक निमित्त है तुम्हारे सुखमे जब तक तुम्हारे पुण्यका उदय है। श्री कृष्ण नारायण जी का और बलभद्र जी का कितना प्रेम था? होता ही है नारायण और बलभद्रका परस्परमे प्रेम, पर जब आपत्ति आयी तो बलभद्रने परस्परमे क्या कर दिया जगतमे? यह तो सब लोग मानते हैं। सीताजी का और रामका कितना प्रेम था, पर हुआ क्या कि जीवन भर दुःख ही रहा। और वर्तमानमे भी देख लो परस्परमे प्रीति भी हो तो भी सुख अपने कर्मोंके आधीन है। अभी देख लो हमारे हितैषि ब्र० जयानन्द जी हर एक घरमे कह देते हैं कि लाल मिर्च न डाला सुनने

स्थिति हो तो यहाँ भी यह शुद्ध आत्मा निरखा जा रहा है अर्थात् सब परसे भिन्न अपने स्वरूपास्तित्वमें निबद्ध यह शुद्ध आत्मा सर्वसमाधि परिणति योग्यतामें प्रकट दृष्ट होता है। कैसा भी हो ? और प्रयोग अर्थात् आत्माके सहज-स्वरूपके अवलोकनमें उपयुक्त हो रहा है। इस व्यवहारसे मेरी स्थिति अलग रहती है। इस कारण उस योगीको इस समाधिभावकी वजहसे कोई उत्कृष्ट आनन्द प्रकट होता है। जन्म लिया है, कुछ पढ़ लिख गये हैं बड़े हो गए, चतुर हो गये, अब भी बहुत आगे पढ़ रहे हैं। अमुक अमुक विषयका अध्ययन किया है, व्यावहारिक बड़ी बड़ी चतुराइया भी जानते हैं। यह इतनी बड़ी प्रगति है। अध्यात्मदृष्टि कहते हैं कि तुमने अपने उपयोगको अपने केन्द्रसे हटकर इतना दूर जरूर फैला लिया इतना तो तब भी फैला था, जब तुम थोड़ा समझते थे। श्रद्धा तो पुष्ट थी। उपयोग इतना फैल गया है, तर्क वितर्क भी बहुत चलते हैं। यह उपयोग बहुत दूर भ्रम गया था। हां तो आत्मस्वभावके प्रसंगमें आत्माका स्पर्श हो सकता है। तो उन जीवोंके लिए यह बात नहीं कह रहे हैं किन्तु आत्मस्वभावसे बहुत हटकर बहुत बहुत लौकिक ज्ञानपटुतामें बढ़ गये हैं, तो क्या बढ़ गये हैं ? बढ़ नहीं गये हैं पर जितना बढ़ा प्रतीत हो रहा है उतना हटना है। लौकिक ज्ञानसे और ज्ञानोंमें चतुराई हो जाना है पर वास्तविक ज्ञान तो अध्यात्मसे मिलता है। अध्यात्मज्ञानमें हमको लगनेकी आवश्यकता है तब जाकर शांति प्राप्त कर सकते हैं इसलिए चारों गतियों में भिन्न भिन्न कषायोंकी मुख्यता रहा करती है। नरकगतिमें क्रोधकषायकी मुख्यता है। तिर्यञ्चगतिमें मायाकषाय की मुख्यता है, देव गतिमें लोभकषायकी मुख्यता है और मनुष्यगतिमें मानकषायकी मुख्यता है। मान, पर्यायबुद्धि अभिमान। मैं कुछ हूं चारके बीचमें मुझे कुछ बनना है। अरे ये चारों भी माया जाल हैं, ये भी एक स्वप्न हैं। ये भी मिट जाने वाले हैं और यह चाहे करने वाले भी मिट जाने वाले हैं। सबसे बड़ा रोग हमारे आत्महितमें बाधक है तो यही अभिमान अहंकार पर्याय बुद्धि। धर्म मार्गमें समाजपद्धतियोंमें, परिवारकी योजनाओंमें प्राय कोई बाधक आ पड़ता है तो भूलमें यह मान बैठा है। कोई आत्महित मिले और किसी प्रसंगमें आकर मान हट रहा हो, मान चूर हो रहा हो, मान न रहता हो तो वह मानहितैषी अपनी ओरसे मानको धूलमें मिला देनेका जोर लगाता है। मान हो रहा हो तो उसे धूलमें मिलता है। मुझे कुछ नहीं चाहिए यदि मैं मनुष्य ही न होता, किसी अन्यभवमें होता तो मेरे लिए ये प्रसंग क्या थे ? कुछ नहीं जैसे अनेक संकट ऐसे आये होंगे कि जिनमें मृत्युकी पूरी सम्भावना थी। यदि उस स्थितिमें ही गुजर जाते तब मेरे लिए ये प्रसंग क्या थे ? मेरे लिए ये प्रसंग कुछ न थे। जब किसी दोषीकी प्रशंसा करदी जाती है तो वह दोषी उठ खड़ा होता है। किसी क्लासमें किसी लड़केने कोई बदमाशीकी हो, कोई बेंत तोड़ डाला हो, जो कुछ किया हो और अध्यापक यदि उस कार्यकी तारीफ क्लास भरमें करने लगे, देखो तो कितना बढ़िया यह बेंत टूटा है, इसे तो चाकूसे भी ऐसा नहीं काटा जा सकता है ऐसी प्रशंसा कर दे तो वह दोषी स्वयं उठ खड़ा होगा जिसने बेंत तोड़ा होगा। इसी तरहसे ये जगत्के जीव वसमें आया करते हैं। प्रशंसा कर दिया तो जिसके लिए प्रशंसा की, उसे क्या नफा हुआ ? नफा तो वह था कि मैं निर्विकल्प होता, ज्ञाता द्रष्टाकी स्थितिमें चलता पर प्रशंसा सुनकर क्षोभ आ गया, अपने आपको भूल गया। उस प्रशंसासे तो महान् विकार हो गया। हां कभी कोई प्रसंग ऐसा होता है कि प्रशंसामें जहां कि सम्हाल है ऐसा कुछ प्रसंग होता है। जैसे बहुत बड़ी पद्धतिसे किसी विषयमें झूठी या सच्ची कोई निन्दा फैल गई, उसमें शल्य रहा और ऐसा शल्य चुभ जाय जिससे मेरा जीवन भी कठिन हो जाय, ऐसी स्थितिमें तो प्रशंसा हितका कारण हो सकती है पर प्राय प्रशंसा अहितका ही कारण होती है। जगत्में क्या चीज है ? दुर्लभ नरजीवन पाया है। इसमें अपने आपमें हम शांति पायें इसकी दृष्टि और करना है। रहा सहा जीवन कुछ स्वयं देनेमें समाप्त हो जायगा। तो देखो ये सब चीजें अध्रुव हैं। शरीर पाया, वह भी अध्रुव है मन भी विनाशीक है, वचन भी विनाशीक है, धन पाया है वह भी विनाशीक है। ये तो सब नष्ट होंगे ही पर विनाशीक साधनोंमें कोई ऐसा उपयोग कर लिया जाय कि कोई अविनाशी लाभ हो सकता है, अर्थात् अविनाशी लाभ मार्गमें लग सकते हैं तो यह बहुत बड़ी लाभकी बात है। यह व्यवहार धर्म है, हम सबको रमनेकी व्यवस्था बनाए रखना है।

जो व्रत तप आदि साधन है ये स्वय निर्जराके निमित्त नही बन पाते है किन्तु व्रत तपके साधन विषय-कषायोसे बचनेकी एक स्थिति बना देते है कि ये तीव्र विषयकषा येमे न लग पाये । ऐसी तीव्र स्थितिमे यह जीव सभाले तो अपने मूल उद्देश्यमे सुगमता आ सकती है । ऐसे व्रतोको धर्म कहते है । धर्म तो निश्चयमे आत्माके स्वभाव का नाम है । आत्माके स्वभावकी दृष्टि करनेका नाम धर्मका पालन है । और फिर इस धर्मके पालनेकी योग्यता इस ज्ञानवृत्तिके प्रसादसे बनी रह सकती है । इस ही प्रवृत्तिको व्यवहारधर्म कहते है ।

यह योगी आत्मा अनुष्ठानिष्ठ है । इसका व्यवहार अलग है । इसका कोई ऐसा विचित्र आनन्द उत्पन्न होता है कि जो आनन्द कर्मोके क्षयका कारण बनता है । कर्मोका क्षय आनन्दसे होगा, क्लेशोसे कर्मोका क्षय नही होता । सो हे प्रभाकर भट्टजी ऐसा कोई स्फुट होने वाला कारणपरमात्मा तत्व है उसको तुम उपमेय समझो । यह कारणपरमात्मा स्वय वीतराग निर्विकल्पमे रत पुरुषोके उपयोगमे रहता है । तो यह कारणपरमात्मतत्त्व अज्ञानी जीवोको हेय हो रहा है । वह अज्ञानी उसका त्यागी हो रहा है । एक कथानक है, यो किम्वदन्ती है कि एक बार नारद घूमते हुए नरकमे गए तो वहा खडे होनेकी जगह न थी इतनी भीड थी । वहासे झट स्वर्गमे पहुचे तो वहा देखा कि विष्णु महाराज पलगपर लेटे हुए है और सब खाली पडा है । नारद बोले विष्णु तुम बहुत पक्षपाती हो, नरकमे इतने जीव भर दिए कि खडे होनेकी जगह नही और यहा स्वर्गमे सब खाली पडा है तो विष्णुने कहा, जावो तुमको मैं पासपोर्ट देता हू जितने जीव तुम स्वर्गमे ला सको ले आवो नारद पहुचे । एक बूढे महाराज मिले, कहा—चलो तुम्हे स्वर्ग ले चलें । यह तो सभी जानते हैं कि बिना मरे कोई वहा जा नही सकता है, तो बूढा बोला कि हमी तुमको मिले स्वर्ग ले चलनेके लिए और किसीको ले जावो । इसी तरहसे ५ ७ से कहा सबने जवाब दिया । अतमे नारदने यह निर्णय किया कि बूढोसे हमारी दाल न गलेगी, चलो जवानोके पास चलें । ४-६ जवानोके पास भी गए, नारद बोले चलो हम तुम्हे स्वर्ग ले चलें । जवान बोले कि अभी कच्ची गृहस्थी है, नई दुकान खोली है, नया नया काम शुरु किया है हम नही चलेंगे । खैर इन्होने तो ठीक कहा । सोचा कि अब बालकोके पास चलना चाहिए । एक १८ वर्षका बालक तिलक लगाए पाठ कर रहा था, माला फेर रहा था, उसको नारदने कहा तो वह चलनेको तैयार हो गया, लेकिन थोडा सा ख्याल आया कि अभी ४-६ महीना पहिले सगाई हुई थी, तीन दिन बादमे शादी है, कुछ रिश्तेदार भी आ गये है सो अभी नही चलूगा । पर महाराज कृपा करके आप ५ वर्षके बादमे आना, जरुर चलेंगे । नारद ५ वर्षके बादमे आए । बोले चलो । उसके एक लडका भी हो गया था । कहा महाराज लडका हो गया है इसको पैरोके बल खडा करदें फिर चलेंगे । लडकेको पैरोके बल खडा होनेमे कितने साल लगेंगे ? बीस साल सो अब २० सालको हमे छुट्टी दो । २० सालके बादमे जब नारद आये कहा चलो तो कहा महाराज लडकेकी शादी करदी है, नाती हो गया है नातीका मुख तो भोग ले, आप २० वर्षके बादमे आना तब जरुर चलेंगे । २० वर्षके बादमे फिर नारदजी आये बोले चलो स्वर्गमे अब तो वह वृद्ध हो गया कहा महाराज नाती पुत्र कुपूत हो गए हैं । मैंने लाखोका धन बडे परिश्रमसे जोड रखा है इसकी कौन सभाल करे ? आप इस भवमे तो दूसरे भवमे जरुर आना, मैं दयाकी भीख मागकर कहता हू कि जरुर आना मैं चलूगा । सो नारद वहा भी आये बोले चलो अब तो स्वर्ग । अपना फन उठाकर कहता है कि इस धनकी रक्षा करनेके लिए मैं यहा पैदा हुआ हू पुत्र नाती कुपूत थे, कही कोई धन न उठा ले जाय । नारद बैकुण्ठ पहुचे, विष्णुसे बोले महाराज हम भी हैरान हो गये मनाते मनाते । यहा कोई नही आना चाहता है । सो उपाधि ऐसी लगी है कि जीवके सुगमतामे विषय आगे और परकारणपरमात्मा जो स्वय शरणभूत है इसकी ओर दृष्टि रखो और ऐसा होना बडा कठिन लग रहा है । किन्तु यह साहस तो करना ही पडेगा यदि अपनेको सुखी होना है, किसी दूसरेके बलके भरोसे पर उत्थान नही होगा । सुख नही मिलगा । अनन्तभावोमे सब कुछ भोग भोगा अनेक पराजय हुए लेकिन लोगोकी निगाहमे उल्लू जैसा ही बना रहा । गुरुजी कहा करते थे कि अगर दुनियामे सुखी रहना है तो उल्लू बनकर रहो । चतुर बनकर रहे तो अनेक आपत्तिया आयेंगी । प्रयोजन

उनका यह था कि व्यवहारमे खटपटे करनेमे आपत्तियां ही आयेगी। सब अन्यकी आशा छोड़कर हमे रहना है, बाहरमें कही हमे लगन नही लगाना है, लगन इतना अन्तरमे होना चाहिए, चाहे मोज हो, चाहे क्लेश हो, पर स्थिनि में इतनी आदत रहे, धुन रहे कि निसगत हम वीतराग सर्वज्ञ परमात्मस्वरूपकी ओर झुकें। हम अपने वीतराग सवज्ञके स्वरूपमे ही झुकना चाहिए। जैसे बालकको कोई पीटता है तो वह भागकर अपनी मा की गोदमे शरण पाता है। इसी प्रकार हम आप बालको पर कोई उपद्रव ढायें तो हम भागकर अपनी अनुभूति और परमात्मतत्त्व मा की गोदमें जाकर बैठ जायें। यही हम आपका शरण है और यही हम आपकी शांतिका उपाय है।

प्रत्येक पदाथ अपने शुद्ध अस्तित्वमे रहना है। शुद्ध अस्तित्वका अर्थ है कि केवल अपनी सत्तासे सत् है। कोई भी पदाथ किसी दूसरे पदाथकी सत्ताको लेकर सत् नही हुआ। यह आत्मा भी शुद्ध अस्तित्वमे है अर्थात् केवल अपने अस्तित्वमे है। कमका या शरीरका अस्तित्व लेकर सत् नही है और जब इस कम और शरीरसे मिले हुई आत्मामे भी आत्मको आत्माके अस्तित्वसे देखा जाय तो यह आत्मा कर्म और शरीरसे बधा है तो भी शरीरसे रहित और कर्मसे रहित यह आत्मा स्पष्ट प्रतीत होता है या शुद्ध आत्माका विरोधी है कम और शरीर सो इन कम और शरीरमे यद्यपि यह आत्मा बध है तो भी निश्चयतया यह आत्मा शरीरसहित नही हुआ है। इस तत्त्वका वणन करते हैं तथा इस दोहेमे आचायदेव उपदिष्ट करते हैं—

कम्मणि वद्ध ु वि जोइ ा देहि वसतुवि जोजि।
हाइ ण सयलु कयावि फुडु मुणु परमप्पउ सो जि ॥३६॥

हे योगी ! यह आत्मा यद्यपि कर्मसे बध है, देरमे रहता है, फिर भी कभी भी यह देहरूप नही होता है। जो देहमे रहकर भी देहरूप नही होता है ऐसा केवल चैतन्यस्वभावमय आत्मा है उसको ही परमात्मा जान। परमात्मा कोई अलगसे स्वतन्त्र सारे विश्वका अधिकारी नही है कि कोई हम आपको जैसा चाहे जब चाहे सुखी बना दे, दुःखी बना दे। इस स्वरूपतत्र स्वतत्र जगतमे ऐसा न हुआ, न होगा। परमात्मतत्त्वका अपने घटमे स्वरूप देखो तो सब ज्ञात होगा। जैसे इस प्रजातन्त्र राज्यमे कोई एक अपने ही कुटुम्बमे राजा बनता ही चला जाय ऐसा क्यो है ? इसी प्रकार इस स्वतत्र जगतमे प्रत्येक पदाथ स्वतत्र सत् हैं और स्वतत्र सत् पदार्थोका समूह ही लोक है। तो ऐसा क्यो हो जाय कि किसी एकको अधिकार हो कि जैसे चाहे जीवको सुख और दुःख दे, अनक आत्माओको बधन मे रह कर सुख और दुख भोगना पडे ऐसा क्यो हो ?

परमात्मा क्या है ? इसका दशन अवश्य करणीय है। देखो भैय्या, आप लोग भी सब धमरुचिक हैं, विवेकी हैं, श्रद्धालु हैं प्रेमी हैं प्रभुकी भक्तिके लिए सदा उद्यमशील रहते हैं। इतने बडे महीनोके बाद यह मदिर बना। धमके लिए व्यय करना यह धमरुचिका द्योतक है। प्रभुके भक्त कितने ही अब भी हैं, लाखो रुपये व्यय करके विशाल मदिर बनवाते है। एक ही पुरुष लाखो करोडो रुपये खच कर स्कूल, कालेज अनक प्रकारकी सस्थायें बना देता है। यह सब काय धमरुचिका ही तो द्योतक है। अब भय्या सब ऐसी दृष्टि करें कि हमें तो प्रभुके दशन हो साक्षात् करना है। ऐसा प्रत्येक धमप्रेमी चाहता ही है। भक्तकी आशा रहती है कि इस प्रभुका मुख दशन मिले किन्तु प्रभुके दर्शन पानेका उपाय लक्ष्यमे नही है। हम इन्द्रियोको खोलकर और बडी उत्सुकतासे इन इन्द्रियकी ओर से निरखकर चाहते हैं कि प्रभुके दर्शन हो सो यो हमको प्रभुके दशन नही हो सकते। प्रभुके दशन करनेकी विधि निराली है। अपने आपकी भूमिकाको स्वच्छ बनानेमे ही प्रभुके दशन होते हैं। गदे हृदयसे विषयकषायसे मलिन आत्मासे, परिवारके ममता वाले उपयोगसे प्रभुके दर्शन नही हो सकते हैं।

यद्यपि गृहस्थ अवस्थामें अनेक प्रकारका सयोग है। नाना समागम जुटा हुआ है। चित्तकी चचलताके साधन है, अनेक उलझनोसे सम्बध इतना है कि उलझनोंके कार्य सामने आते हैं, किन्तु भय्या ! ज्ञानमे भी तो ऐसा

बल है, कितने ही झझटोमे फसा हुआ मनुष्य हो, ज्ञानबलके द्वारा उन सब झझटोको एक साथ भूलकर, छोडकर अपने आपमे एक क्षणको तो निर्दोष चैतन्यस्वभावी निजप्रभुके दर्शन कर सकता है। उत्तम गृहस्थ वही है, उसका जीवन सफल है, धन्य हैं ज्ञानी गृहस्थ कि प्राप्त सब समागमको भी एक साथ भूलकर इस देहमे बसने वाले, देहसे निराले शुद्ध ज्ञानभावात्मक स्वरूपके दर्शन कर लिया करते हैं। परमात्मा अपने आपमे ही दर्शन देता है। उसके दर्शनके पाने योग्य अपने उपयोग बनाने पडता है। हे योगी ! देखो, इस देहमे बसता हुआ देहसे निराला एक ज्ञान-स्वरूपको देखो। इन कर्मोमे बसते हुए कर्मसे निराले इस ज्ञानस्वरूप प्रभुको देखो। इन राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादि अनेक प्रकारके विकारोमे उलझे हुए होने पर भी इन विकारोसे रहित स्वभाव वाले शुद्ध ज्ञानस्वरूप मे देखो यह ज्ञानानदमात्र एक अमूर्तितत्त्व अनुभूत होगा। उस ही को तू परमात्मा जान। एक इस परमात्माको जाने बिना इस जीवमे अनतकाल ससारमे जन्म मरणके दुख उठाए। यह हजार लाखोकी विभूति अपना क्या हित करेगी ? इस जन्मके बाद फिर भी तो और जन्म लेने होगे। अगर कोई जन्म बेतुका मिल गया, कीडे मकोडे वृक्ष आदिमे मिल गया तो फिर इसकी क्या पोजिशन रही ? क्या बडप्पन रहा ? इन प्राप्त विभूतियोको अपनेमे मिला मत दे। इसको जड ही जड निरख। इसमे रहकर इससे निराले, अपने ज्ञान ज्योतिमात्रको देख और तो क्या राग द्वेषमे रह कर भी राग द्वेषसे निराले केवलज्ञानस्वरूपको देख। यही परमात्मा है इस ही परमात्माके दर्शनसे यदि राग अवशिष्ट है तो तीव्र पुण्य होता है कि इसके फलमे महाराज राजधिराज इन्द्र चक्री आदि हुआ करता है। अपने शुद्ध परिणामका भरोसा रख और इस हड्डी, चाम वाले हाथ, मुह, नाक, कानका भरोसा न रख। इसका बडप्पन नही है। तेरे धन सम्पदाके कमाने वाले हाथ पैर नही हैं। लोकोमे अपना महत्त्व जाने वाला नही है। अपने परि-णामोको निर्मल रख। इस प्रभुके प्रसादमे, प्रसाद कहते है निर्मल परिणामोको, इस प्रभुके निर्मल परिणामोमे ही इस लोकके सुख, परिवारके सुख, निर्वाणके सुख प्राप्त होते है। हे आत्मन् ! तुझ सुख ही इष्ट है। उस सुखका उपाय निर्मल परिणाम है। इस जगतमे यह बात देखी जा रही है कि कोई नेता है, राष्ट्रपति है, मिनिस्टर है, करोडपति है और कोई तुच्छ है, निर्धन है, यह जो देखा जा रहा है, सब धर्म और अधर्मका प्रसाद है। इस मास चमडे वाले नाक आखका काम यह वैभव नही है। पूर्व समयमे जिस जीवने धर्म किया, दयाकी, क्षमाकी, तपस्याकी, समस्त जीवोको सुखी होनेकी भावनाकी उनको इस ही प्रकारका पुण्यबन्ध हुआ कि जिसके उदयमे जो ऊंची-ऊंची स्थितिया उपस्थित हैं। क्या चाहिए तुझे सुख ? कोई तो सुख यो चाहता है कि धन खूब आने लगे कि लोग मुझे बडा बडा कहे, चलो यह भी सुख धर्मके प्रसादसे मिलेगा। अर्थात् धर्मसाधन करते हुए जो राग रहता है उस राग के प्रसादसे मिलेगा। जैसे बड़े मिनिस्टरके चौकीदारका भी महत्व है। केवल चौकीदारके चौकीदारीके कारण नही है किन्तु एक मिनिस्टरके प्रसगमे चौकीदारी करते हुआ है, वह इसमे उसका महत्व है। उस रागका भी बडा महत्त्व है। देखो तीर्थंकर चक्रवती राजा महाराजा इन्द्रको जो इतना भी भव मिलता है वह रागके प्रसादसे मिलता है, धर्मके प्रसादका है। धर्मका जो अश है उसका फल तो मोक्ष मार्ग है और जो यह लौकिक वैभव प्राप्त हुआ है, ये सब रागके फल हैं परन्तु किन रागोके फल हैं जो राग धर्मपालनके कार्योमे जीवके साथ लगा हुआ है उन रागोमे इतना बल हो जाता है कि चक्री और तीर्थंकरके उत्पन्न करने वाले कर्म बध जाते हैं। क्या चाहते हो सुख ? यह सब सुख, धर्मके सम्बन्धसे मिलेगा। ये परिवारी लोग मेरे बहुत सुन्दर हैं, यह सब सुख जो कुछ है, परिवार लोगो से मिलेगा—यह सोचना गलत है। वह भी धर्मके प्रसगमे मिलेगा। कभी कभी इस लौकिक सुखमे विलक्षण सहज शुद्ध आनन्दमे रहना चाहते हो तो यह सुख भी धर्मके प्रसादमे मिलेगा। निर्वाणका सुख चाहे तो वह भी धर्मके प्रसादमे मिलेगा। सुख नामकी चीज चाहे वह लौकिक सुख हो चाहे निर्वाणका सुख हो, धर्मके सम्बन्धसे मिलता है। अन्तर इतना है कि लौकिक सुख तो धर्म करते हुए के साथ जो शुभ राग रहता है उसके कारण हुए कर्मके उदयमे

मिलता है और निर्वाणका सुख केवल धर्मके कारण मिलता है उसके साथ रागद्वेष तनिक भी नही होने चाहियें। धर्मके सम्बन्धके विना सुख नही मिलता और न किसीको कभी भी मिला। हे योगी! अपनी देहमे वसता हुआ भी जो देहमय नही होता है उसको तू परमात्मा जान।

एक पाच सेर शुद्ध निर्मल पानीमे कोई पीले रगकी पुडिया डालदी जाय। वह पानी सारा पीला हो गया, पीला हो गया? पीला दिखता है। किनको, जो भेद विज्ञानके उपयोगी नही हैं। जैसी दशा बाहरमे है वैसा ही अन्दरमे समझते हैं। उन अभिलाषी जीवोको वह पानी पीला दिखता है। इस समय इस पानीको यदि पीयेंगे तो वह पीला रग भी पेटमे चला जायगा पानीकी स्वच्छता पीले रगकी स्थितिसे अभी अलग नही है फिर भी पानी पीला नही हुआ, पानी वैसाका वैसा ही स्वच्छ निर्मल अब भी है। तुम पानीके शुद्ध अस्तित्वको देखो। पानीकी ही सत्ताके कारण पानी पीला जो कुछ हुआ है वह देखा! यह जितना पीलापन है पीले रगका पीलापन है, जलका पीलापन नही है। तभी तो ३-४ घटे वह भगोनियामे निश्चल रखा रहा तो रग नीचे बैठ जाता है और पानी बहुत कम पीला रह जाता है। ऐसा ही कुछ और देर उस पानीको यथावत् ही रखा जाय जैसा कि था, तो वह निर्मल रह सकता है। देखो! मनुष्य जन्म पाया है, श्रेष्ठ मनुष्य जीवन पाया है यदि इसको वैभवका हिसाब ही लगानेमे लगा दिया तो इस उपयोगको फसानेसे लाभ नही रहेगा। धर्मके लिए बहुत अधिक काम पडा है। धर्मका काम कहीं बाहरमे नही, मदिरमें नही, प्रजा समूहमे नही, ठाटबाटमे नही आपकी अपनी ही आत्माके प्रदेशोमें करना है। अपने ही अन्दर बहुत अधिक काम पडा हुआ है। धर्म करनेके लिए दृष्टि लगाकर अपनमे देखो कि कितना काम पडा हुआ है। पहिले तो एक यही बडा काम पडा हुआ है कि ऐसी वासना वसी हुई है कि उनमे एक, दो, चारको अन्दरमे अपना माना जा रहा है। यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह जो एक भूल है वासना है उस वासनाको समाप्त करना है। कितना बडा काम पडा है अन्दरमे। अन्दाज लगाओ। शका हो जाती है कि मेरी यह वासना भी समाप्त हो सकती है घरमे रहते हुए क्या? हा, क्यो नही? हो सकती है। अगर स्त्री पुत्रका कोई झगडा हो जाय या मेरे साथ छल कपट पूर्ण व्यवहार किसी स्त्री पुरुषने किया, ऐसी बात समझमे आ जाय, उनके अन्याय, दुर्व्यवहार आदि यदि ज्ञानमे आ जायें तो पहिले ही उस वासनाको मिटा डालता है। अब ऐसी बात उसके ध्यानमे नही है कि यह मेरा ही है। जाते, सोते, जागते पूजा करते, धर्म करते जो यह बात बनी रहती थी अब वह बात नही रही। उसके स्थानमें कुछ द्वेषरूप उपयोग ही आ जाय, ऐसे छली लोग हैं, ये घरके मेरे साथ भी ऐसा कपटपूर्ण षडयन्त्र रच रहे हैं। यह जानकर चाहे द्वेषरूप उपयोग हो जाय किन्तु वह रागवासना तो नही रहती, फिर ज्ञानी सतको जिनको प्रत्येक पदार्थोंके शुद्ध अस्तित्वका बोध हुआ तो जिसके उपयोगमे यह स्पष्ट हो गया है कि सर्व पदार्थ अत्यत जुदे जुदे सत् हैं। ये अपने परिणमनसे परिणमते हैं। इन जीवोके साथ इसके पुण्य और पाप कर्म लगे है। यह जो कुछ भोगता है अपने कर्मके अनुसार भोगता है। यह जो कुछ करता है यह खुद अपनमे अपने ही द्वारा अपने ही लिए अपने परिणमको करता है। इनमे अपनेका रच भी सम्बन्ध नही है। यह बात वस्तुके यथार्थस्वरूपकी है। इसको कोई मना नही कर सकता। ऐसी वस्तुका जैसा स्वरूप है वैसा ही ज्ञानमे आ गया तो परजीवमे परिवारकी, जो आत्मीयताकी वासना लगी यह नष्ट न भी हो जायेगी क्या? पदार्थका जैसा स्वरूप है उसको उल्टा माननेमे दिक्कत होनी चाहिए कठिनाई होनी चाहिए। यह चौकी है। हम आपसे कहे भय्या! थोडी देरके लिए इसको घडी मान लो तो आपको माननेमें परेशानी होगी। कृपाकर आप इस चौकीको ही ४५ मिनटके लिए घडी मानलें जब तक प्रवचन चल रहा है और आपकी दृष्टि इस ओर है कि जल्दी प्रवचन पूरा हो जाय कितने बजे हैं? अच्छा आप इस चौकीको घडी मान लें, तो जो चीज नही उसको उस अन्य वस्तु रूप माननेमे, उल्टा माननेमे बडी दिक्कत हो जाती है। इस खिलौनेके रिक्शेको तुम सच्चा रिक्शा मान लो। जाना है कहीं, कोई सवारी नही मिल रही है फिर

इसीमे बैठनेका काम कर लोगे क्या ? इसको माननेमे बडी दिक्कत जान पड रही है कि जो चीज जैसी नही है वैसी माननी नही चाहिए, जो चीज जैसा है वैसी ही मान लो । सब जीव स्वतत्र सत् हैं । अपने अपने स्वरूपको लिए हैं । वे जो कुछ करते है अपने कषायसे, अपने कषायकी पूर्तिके लिए अपने ही परिणमन करते हैं । उनका किसी भी कायसे सम्बन्ध नही है । वे आपमे प्रेम नही कर सकते । वे अपने कषायमे अपने कषायकी पूर्तिके लिए अपनेमे अपने काम करते हैं । बात यह सही है ना, पर ऐसा माननेमे बडी कठिनाई हो रही है । बस जो कुछ जैसा तैसा जान लो तब सुगम हो जाय तब समझना कि अब हमने धर्म किया । अन्दरमे तो अधम बस रहा है । पदार्थोका सत्यस्वरूप अपनेमे नही पाया जा रहा है, सही ज्ञात नही हो रहा है । जान रहा है उल्टा ही उल्टा और जाप, सामायिक, पूजा स्वाध्याय, भजन सब कुछ प्रभुके किये जा रहा है तो वह स्थिति तो है कि जैसे 'ऊपर असन्न मल भरा भीतर कौन विधि घट शुचि कहे ।' यह कम हमारे हाथ, पैर, मुहकी चेष्टा नही देख सकते कि भाई ? यह आरतीमे हाथ फैला रहा है । इस आत्मासे अपने मत बचो । कममे ज्ञान नही है कि वह धोखा खा जाय । जानने वाला ही धोखा खा सकता है । कमबन्धका निमित्त कारण तो विषयकषायका भाव है । जिसमे विषयकषायरूप परिणाम हुये कि तुरन्त कम बन्ध हो जाता है । इस ५०–६०–७०–८० वर्षको पाई हुई आयुमे जो किया उसे करना क्या है ? मुख्य काम मेरा क्या है ? इसका क्या समाधान किया ? मुख्य काम मेरा यही है कि मै अपनेमे अपने बसे हुए अपने अस्तित्व-मात्र स्वभावको पहिचानू और यह मान लू कि मुझमे तो मैं हू, अन्यरूपमे नही हू, न अन्य वस्तुसे मेरा सम्बन्ध है । ऐसा अन्तरदृष्टि द्वारा सत्यस्वभाव ज्ञात हो जाय, बस, करनेको यही एक काम है । बाहरकी चिंताए अधिक न करो । अर्थात् वैभवको केवल उदयके ऊपर छोड दो । बाहिरी पदार्थमे अपना अधिकार नही है । परवस्तुके प्रसगका हमने विचार किया है, हित कुछ और होता है, इस बारेसे तो ऐसे दृढ हो जाओ कि मैं अपनी इच्छाके अनुसार यहा कुछ भी नही करता, कुछ नही देखता, कुछ व्यवस्था बनानेकी नही सोचूगा किन्तु इस गृहस्थ अवस्थामे जो बाहिरी समागम है उसके अनुकूल व्यवस्था बनाऊगा । मेरी व्यवस्था किस चाहे पद्धतिसे बन सकती है । करोडके वैभवके योग्य भी व्यवस्था बन सकती है । लाखो, हजारो, सैकडा रुपयेके योग्य भी व्यवस्था बन सकती है । यह सब भ्रम है । मैं जान चुका हू कि मैं तो केवल अपना शुद्ध अस्तित्वमात्र हू । मेरा काम केवल जानन और आनन्द दो ही अपने काम है । ये मेरे काम भावात्मक है ? मैं भावात्मक हू । मैं सबवस्तु व्यवस्थाको जान सकता हू पर मुझे तो प्रधानतया अपनी ही व्यवस्था बनानेकी पडी अपने आपमे बसे हुए इस परमात्मतत्त्वको देखो जो स्वतत्र है अरहन्तके रूपमे पूजा जाता है, सिद्धत्वके रूपको पूजा जाता है । हे योगी ! इस देहमे बसे हुए इस शुद्धज्ञान प्रभुसे देख । इस प्रकार योग दु देव इस आत्मतत्वके स्वरूपको प्रभाकर भट्टको समझा रहे हैं ।

परमात्मतत्त्वका विकास परमात्मतत्त्वकी भावनामे होता है । शुद्धनिर्दोष ज्ञानमात्रकी स्थिति चाहते है तो शुद्ध निर्दोष ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी भावना करनी होती है । शरीररहित होना चाहते हैं तो अपने शरीररहित निज-स्वरूपास्तित्वमात्र आत्माको देखो और शरीररहित माननेका सस्कार रहा तो शरीररहित होनेकी स्थिति कभी नही आ सकती । लक्ष्यको शुद्ध कर लो यही सबसे बडा पुरुषार्थ है और सबकार्योमे मिलकर तो लक्ष्यकी सिद्धि नही है । मेरा लक्ष्य इतना महान् है कि मुझे इन झझटोसे काम नही है । १०–५ जीवका परिवार मिल गया तो उससे कोई मेरा कल्याण होनेका नही है । मेरा कल्याण तो मेरा स्वय स्वरूप ही है । मैं कल्याण मूर्ति हू । अपने ज्ञानको अपने आपमे बहुत अन्दर लजाकर देखें । इन विकल्पोसे भी पार होकर अपने अपने अस्तित्वके कारण जो अपना स्वरूप है उसके निकट जाकर देखो, कल्याणकी मूर्ति तो यह आत्मा स्वय है । इसकी भावना करो तो कल्याणका विकास होगा । हम अपनेको बहुत बहुत जैसा सोचा करते है वैसे हम नही हैं । अपनेको निज सहजस्वरूपमय जान लें तो सब विह्वलता समाप्त हो जायगी । एक ऊधम करने वाला बालकको यदि कोई बडा यह कह दे कि अरे राजा भैया !

तू तो बडे कुलका है, तुझे उद्यम नही करना चाहिए। बारबार यह जानकर कि अरे मैं राजा भैया हू तो वह अपने मे जिस प्रकार राजा भैया, सत् व्यवहार होता है वह व्यवहार कर सकेगा। आपको किसीसे प्रान भ्रम हो जाय कि यह तो मेरा बुरा चाहता है तो बार बार इस परिणाम रहनेपर और ऐसा व्यवहार कर डालेंगे जिससे तन तनी हो जायगी। यदि आप अपनेमे अनुभव लगाए कि मैं इतने बच्चोका पिता हू तो इस भावनामे आपको उन बच्चोके प्रति ऐसा बर्ताव करना होगा जिसमे पितृत्व सहा कहलाने लगे। आप एक जीव है, केवलज्ञान स्वरूप है, ज्ञानभावके अतिरिक्त और कुछ स्वरूप नही है, भले ही यह मनुष्य इस देहमे बधा हुआ है तिसपर भी यह तो ज्ञानमात्र है। यह जीव जब ज्ञानमात्र निजस्वरूपकी भावना नही करता है और अपनेको मैं मनुष्य हू मैं मनुष्य हू ऐसा मानता रहता है तो वह मनुष्य जैसा व्यवहार करता है। यदि यह अपनेको ज्ञानमात्र ही माने मैं ज्ञानमात्र हू, जानन ही मेरा काम है और जाननेमे जो कुछ गुजरता है उसको हो भोगना मेरा काम है, मैं ज्ञानके अतिरिक्त और कुछ नही करता हू, मैं तो ज्ञानस्वभाव हू, जाननभाव हू—यदि ऐसी भावना बन जाय तो ज्ञाता दृष्टा रहनेका व्यवहार बनेगा। यह जीव अपनेको जैसा मानता है वैसी भावना करता है। उसरूप ही इसका व्यवहार हो जाता है। यदि ससारसे मुक्त होना है, यह कुटुम्ब वैभवका सा असार जल गया है सो इससे छूटकर, शरीरसे मुक्त होकर अपने आपके शुद्ध आनदमे मग्न रहना है तो ऐसी भावना करनी चाहिए कि मैं ज्ञानमात्र हू। जाननमे ही मेरा सम्बन्ध है जाननभावके अतिरिक्त मुझमे कुछ नही है। यह मैं ज्ञानस्वरूप सब पदार्थोसे निराला हू, केवल अपना स्वरूपमात्र हू। सबसे निराले अपने आपका अनुभव करो तो वह परमात्मतत्त्वकी स्थिति हो लेगी। क्यो अन्य अन्य रूप अपनेको मान मानकर हम अपना समय व्यर्थ गुजार रहे हैं ?

इतना तो श्रम किया इस आयु तक सभी जानते हैं अपना अपना परिश्रम किया, आज सतोष है क्या ? शाति है क्या ? न शाति है, न सतोष है। किसी भी क्षण आदमीको सतोष, शाति नही है। यह विडम्बना क्यो हो गई ? इसका कारण है कि पदार्थ है अपने अपने स्वरूप चतुष्टयरूप और हम मानते हैं उसको अपनी इच्छानुसार अदृश्य स्वरूपमे बसा। इतनी ही भूल इतने बडे विषवृक्षका कारण बन गयी। बड़का पेड कितना बडा होता है कही कही तो आधे फरलाग तक फैल जाता है किन्तु उसका बीज कितना ? सरसोसे भी छोटा। उस बीजका परिणाम इतना बडा वृक्ष है सो यह चाहे सरसोंसे भी छोटा है किन्तु है तो कुछ। लेकिन इस भ्रममे तो कुछ है भी नही, और झगडा साचा बन गया। पशु बनेगा, पक्षी हो जाना, कीडे मकोडे हो जाना, पेड बन जाना और नाना कषाय और विषयका भाव उत्पन्न हो जाना। झगडा देख लो सच्चा खडा हो गया।

यह भ्रम कोई सत्य चीज नही है किन्तु इस जरा सी भ्रातिमे इतना सारा ससार विष वृक्ष खडा हो गया। यह जीव, मनुष्य, पशु पक्षी आदिके आकारोमे बध गया है। यह तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानका कोई आकार नही है। वह तो ज्ञेय ग्रहण स्वरूप है। यह इन आकारोमे बध गया इसका कारण क्या है ? इसका कारण कर्मका उदय है। ऐसा कर्म क्यो हो गया ? क्यो बध गया ? कर्मका जाल भी बहुत विस्तृत है। करणानुयोगके जानने वाले समझते है कि एक जीवके साथ अनन्त स्पर्धक लगे हुए हैं। एक स्पर्धकमे अनत वर्गणाए होती हैं। एक वर्गणामे अनत वर्ग होते हैं इतने कर्म परमाणुओका जाल एक एक जीवके साथ लगा हुआ है। फिर उनमें अनुभव शक्तिका तो कहना ही क्या है ? एक एक वर्गमे अनत अनत अनुभाव शक्ति होती है। ऐसा कर्मोका यह विचित्र जाल इस जीवके कषायका परिणाम क्यो होता है ? यो होता है कि इसका परद्रव्यमे यह मैं हू यह मेरा है, इस प्रकारका भ्रम हो गया। देखो—इतना बडा पहाड देखकर इसका पूरा खुदवाया तो यो था कि इसके नीचे धन मिलेगा। इतना बडा पहाड सरकारने खुदवाया पर उस पहाडको खोदनेपर मिला क्या ? निकला एक चूहा तो जैसे यह सरकार करोडो रुपये खर्च कर देती है पर तत्त्व कुछ नहीं निकलता, इस प्रकार इस चिकने चोपडे मकान सोना चादी वैभव आदिक

मायामय चीजोका तो कुछ पार पाना चाहिए, विवरण लेना चाहिए। यह क्यो हुआ है ? कैसे हुआ है ? क्या कारण था ? खोजते खोजते अतमे निकला क्या ? एक तुच्छ बात गलती केवल इतना ही परिणाम कि किसी परद्रव्यके प्रति यह उपयोग बन बैठा यह मैं हू, यह मेरा है। इतने भ्रमके ऊपर यह इतना बडा जगजाल खडा हुआ है। हम घवडाते हैं इस दु खको देखकर, सकटमे हम अधीर हो जाते हैं। सकट तो सचमुचका हो गया पर उसका बीज-कारण केवल भ्रम निकला। देखो ना शरीरमे फस गया। यह सच तो हो गया है। झगडा तो सच हो गया मगर इस झगडेका आधार भ्रम एक हसीके आधार पर इतना बडा झगडा बन गया। कई कोर्टोमे जाना पड रहा है, दोनो पक्षका धन बरबाद हो गया। इतने बडे झगडेकी मुख्य नीवका कारण एक मामूली हसी है। तुमको बडा सकट लगा है। इस सकटका कारण केवल एक दृष्टिका भ्रम है। लो, दृष्टिका भ्रम नही रहा तो जहा बडे हैं वहा पर भी मोक्षमार्गी है। जो निराकुल है उसके कोई सकट नही है। कितना बडा यह ससारका रूप, कितनी बडी विपत्ति ? यह जन्म मरणका चक्र है किन्तु यह भ्रमपर खडा है।

और साधारण सकटोकी तो चर्चा ही क्या करे। घरके गृहस्थीकी वातचीतके कितने ही सकट तो ऐसे है कि खाली दिमाग शैतानका घर उसके आधार पर हैं जिनमे कोई सार नही है। ख्याली इतने बडे सकट उनको दूर करनेमे अपने कषायका प्रयोग करना पडता है। पर हे दयावान् आत्मन् ! तू सकटोकी चिन्ता तो करता है, किन्तु जन्म मरणके चक्रके लगा जा रहा है, इसको कुछ चिता नही है। इस मनुष्य जीवनके और अपने कल्पनामे माने हुए सकटोको दूर करनेमे परिश्रम कर रहा है। अरे सारा जहा मेरेमे उल्टा चलता है तो चल ले। वह जहाका परिण मन परवस्तुमे समाप्त हो जाता है। इससे बाहर मेरेमे कुछ नही आता। परिवार तो क्या सारा, परिचित वर्ग भी मेरे प्रतिकूल हो जाय तो भी उनसे मुझमे कोई आपत्ति नही आती है। मैं ही अपने कल्पना जाल रचता हू तो मैं स्वय दु खी होऊ गा। किसीकी कुछ चेष्टासे मेरेको क्लेश नही होता है। मैं अपनी स्वयकी कलामे पूर्ण सुरक्षित हू। यह आत्मा स्वय अपराधी है और उन अपराधोके कारण ऐसा अयोग्य, अशक्त हो गया है कि बाह्य पदार्थोके परिण-मनका अर्थ अपने आपमे हटाता रहता है। तुम्हे क्या बनना है ? इसका तो निर्णय करले। हम ५—७ लडके लड-कियोके बाप बन गए है, अच्छा बन लो। बाप बननेका कितना लाभ लूट लोगे ? तुम्हे इस नगरमे एक ख्याति प्राप्त बनना है तो ख्याति प्राप्त बन लो, इन मोही कषायवानो मरमिटन वालोमे तुम्हे ख्याति प्राप्त बनना है अच्छा बन लो। लेकिन तुम्हे क्या कोई सहारा देगा और भी तुम सोच लो, क्या बनना है तुम्हे। भैया किसी भी बाह्य रूप बननेकी मत सोचो। किन्तु सहज जो हैं वही रहना है ऐसा सकल्प करो। मनुष्य होना सहज होनेकी बात नहीं है। इसलिए ज्ञानी आत्मा मनुष्य भी होना नही चाहता। नेता पिता, गुरु, शिष्य आदि बनना भी आत्माकी सहज बात नही है, इसलिए यह सब भी नही बनना चाहता। जैसे कोई ज्ञानी सत जब अपने वैराग्यमे पटता है तो उससे पूछो कि तुम क्या बनना चाहते हो ? क्या उत्तर मिलेगा ? एक साधु बनना चाहता हू, यह उत्तर नही। यह बननेकी बात है साधु बननेमे लाभ नही है। तो क्या बनन चाहिए ? अरे ! वह कुछ बनना ही नही चाहता है, न साधु, न गृहस्थ और न गुरु न शिष्य। मैं तो जैसा सहज हू वैसा रहना चाहता हू। अच्छा तो तुम जैसे सहज हो वैसे रहनेकी योजना करलो, हा वह यत्न करता है, करता है करले, बाहरमे आपने क्या देखा, कुछ नही केवल शरीरमात्र नग्न। अच्छा अब हम समझ गए हम कल्याणके लिए नग्न बने। न न, हम नग्न नही बन मुझे तो कुछ बनना कि ही नही है किन्तु वैभवको रखनेमे बहुत विकल्प होता है तो वैभवसे छुट्टी पाई है। परिवारमे रहनेसे बहुत विकल्प होता है तो परिवारसे छुट्टी पा ली है। पैसा, वस्त्र रखनेसे बहुत विकल्प होता था तो पैसा और वस्त्रोमे भी मुक्ति पा ली है। हम नग्न नही बनते पर निवृत्ति करने करते ऐसा रह गया तो क्या ? मैं तो चाहता हू कि यह भी रूप नही बने। मैं तो ज्ञानमात्र रहू। यह बात मेरे अन्दरसे ज्ञानमे उत्पन्न हुई परिणतिकी बात है। साधु रह जाता है

पर साधु बनना नहीं है। बनना तो सब [illegible] है। बननेमें लाभ नहीं। इस गृहस्थपना [illegible] उसे प्रयोजन नहीं रहा। सो सब छोड़ा। छोड़ा गया तो छोड़नेकी स्थितिमें वह शरीरमात्र रह गया। इसीको कहते हैं साधु अवस्था, जैसे कोई सन्यासी [illegible] सन्यासी बनना चाहिए तो लाल कपड़े रंगा लो। [illegible] चिमटा और भस्म भी शरीरमें रमा लो। कुछ सन्यासी बनना है तो यों कोई यह कहे कि मुझे साधु बनना है। भले लिए कपड़ेका [illegible]। [illegible] अमुक चीज मुझे [illegible] यह सब बात रहेगी। किन्तु ऐसा साधु बनना और [illegible] जो कुछ [illegible] जावेगी उसका फल [illegible] है। जिस ओरसे रह सब [illegible] है उसका प्रयोजन न रहनेसे साधुता हो जानेका फल शान्ति है। इसका वस्त्रोंका प्रयोजन नहीं सो उसके छूट जाते हैं। वस्त्रका ढंग नग्नरूप रहे और साधु बनकर जीवन सफल कर। यह विकट [illegible] बननेका है साधुता रह जानेमें नहीं। यह अच्छी बात है बाहरसे तो देखा तो दोनोंका यही रूप है जो साधुका रूप होता है पर बनने और रहनेमें आशयमें [illegible] और आत्मावके जानना अन्तर है। बनना तो एक गाली है। [illegible] कहते हैं कि वाह! तुम तो बड़े बन गए हो। सुनने वाला जानता है कि समझ गया है यह बड़ी बड़ी बात बोल रहा है, [illegible] जान बूझकर बोल रहा है। वाह! तुम तो बड़े बन रहे हो। एक कथानक है कि एक बार गुरु और शिष्य चले जा रहे थे। एक राजाके बागके पास सायंकाल हो गया सो राजाके बागमें चले गए। उस बागमें [illegible] कमरे बहुत अच्छे साफ सुथरे थे। कमरेमें एक पलंगपर या अच्छे गद्दे पर शिष्य बैठ गया और एक कमरेमें गुरु बैठ गया। गुरुने शिष्यको समझा दिया कि रे शिष्य यहां पर कुछ बनना नहीं, बनोगे तो बुरी तरह पिटोगे। कुछ देर बाद राजा ४ सिपाहियोंके साथ घूमने बागमें आया। राजाने नौकरोंको कहा कि कमरेमें कौन है? महाराज इस कमरेमें कोई दो आदमी बैठे हैं। अच्छा जाओ उनसे पूछो। सिपाही शिष्यके कमरेमें गया और सिपाही शिष्यसे कहता है कि तू कौन है तो शिष्य कहता है कि तुम [illegible] अंधे हो क्या? जानते नहीं कि मैं सन्यासी हूं। सिपाही ने राजासे कहा कि वह इस प्रकार कह रहा है कि तुम अंधे हो दीखता नहीं कि मैं सन्यासी हूं। राजाने कहा कि इसे कान पकड़कर निकाल दो। सिपाही ने कान पकड़कर निकाल दिया। एक कमरेमे बैठा था गुरु। सिपाही ने उससे पूछा तुम कौन हो? उसने कुछ उत्तर नहीं दिया और वह गुरु मौनपूर्वक प्रभुके भजनमें लगा रहा। सिपाही आया और बोला कि महाराज वह आदमी मौनपूर्वक बैठा है। निश्चल बैठा है न हिलता है, न डुलता है। राजा बोला अच्छा वह कोई योगीश्वर होगा। उसके दर्शन करके वह राजा वापिस चला गया और सिपाही भी चले गए। जब भजन काल पूरा हुआ तब शिष्य गुरुसे कहता है कि अच्छे ठहरे इस कमरेमें। तब गुरुने शिष्यसे पूछा कि शिष्य! तुम कुछ बने तो नहीं थे। शिष्य बोला महाराज मैं कुछ नहीं बना, मैंने सिपाही से तो सिर्फ यह कहा कि अरे अंधे हो दीखता नहीं कि मैं साधु सन्यासी हूं। गुरु बोले यही तो बनना हुआ। साधु भी बनना अच्छा नहीं। करना क्या है? बनना क्या है? कुछ नहीं बनना। बननेका तो यह प्रसाद है कि आज जन्म मरणके इतने चक्कर लग गए हैं। महाराज बननेका नाम मत लो। बनना बहुत बुरा है। मैं क्या क्या नहीं बना? कीड़ा बना, मकोड़ा बना, मनुष्य बना अथवा साधु सब कुछ बना मगर वह सब नाटक रहा। ज्ञानी की दृष्टि इस ओर है। साधु होकर भी ज्ञानी अपनेको ज्ञानमात्र निरखता है जबकि बने हुए साधु अपने शरीर पर दृष्टि देकर और चाहे वह दिगम्बर सम्प्रदायका साधु क्यों न हो? सत्य साधु ज्ञानी साधु अपनेको दिगम्बर साधु रूप भी अनुभव नहीं करता। इस कारण ज्ञानमात्र, अपने आपके अस्तित्वके कारण जो सहज ज्ञान और आनन्द स्वरूप है तन्मात्र अपने स्वरूपकी श्रद्धा रखता है। यही तो बड़ी बात है जिसके कारण शत्रु और मित्र दोनोंमें समान दृष्टि रहती है। शरीर को साधु न मानने पर इतना परिणाम हो सकता कि शत्रु को शत्रु नहीं मानना और मित्र को मित्र नहीं मानना। अन्यथा किसीने नमस्कार नहीं किया, कुछ प्रतिकूल व्यवहार किया तो इस प्रकार की वृद्धि हो जाती है कि उसके

पिटे जुआरी को उस अड्डेमे और लुटने के लिए बैठना पडता है। इसी तरह यह समस्त जीव लोक परमार्थमे जुआरी हैं। इनमे से कोई पुरुष किसी प्रकार वैराग्यसे मन रहा हो, विरक्त हो गया हो और इस अड्डेमे हटना चाहता हो तो उसे कठिनाई मालूम होती है। हटने वाले हट जाते हैं पर कठिनाई बहुत मालूम होती है। स्त्री, पुरुष, मित्र इतनी भली भली बात कहकर मोह लेते हैं और उस सकटको सहन नही कर सकने की योग्यता वालोको यह तूफान आकर सकट हो जाता है। भूल यह होती है कि ऐसे निमन्न दुर्लभ जीवनको पाकर भी हम अनेक कारणो से उत्थानकी ओर नही बढ पाते है और इस सीमाके अन्दर ही घूमते रहते हैं। निकलने का तो अन्दरमे ही एक सरल तरीका है। बाह्यका सकोच छोडो। जिसमे कि सकट नजर आया है। उसकी ओर दृष्टि तो कितने ही समय से हो रही है। इस सकोचके कारण भी अपन मन मे आये हुए सन्मार्ग पर यह नही चल पाता। उदय सुन्दरके बहनोईकी कथा है। उदय सुन्दर का बहनोई वज्रमानू नामका था। वह स्त्रीके साथ ही स्त्री के मायके चला भाई लेने आया था। एक दिनका वियोग नही सह सकता था। इतना मोही वह उस मागके जगलमे एक युवक को शात आनन्द मग्न जब निरखता है तो उसका मोह दूर हो जाता है कितना विचित्र आनन्द है इस आत्माको। वैसा ही तो यही मैं हू। वह अपने मोहको देखकर मुनिराजकी ओर एकटकी लगाकर देखता है। पर ये दो जीव साथमें हैं स्त्री और साला। इनमे क्या कहकर छुट्टी मागे। देखो भैया बडे प्रोग्राममें बधे हुए आये थे, जाना कही है और हो क्या रहा है ? अवसरने साथ दिया कि उसका साला दिल्लगी करता है कि क्या तुम मुनि बनना चाहते हो ? बस सकोच मिटने का उपाय बन गया। मैं इनसे कुछ कहता, कष्ट करता अब इन्होने कह दिया तब बोला कि हम मुनि बनेंगे तो क्या तुम भी बनोगे ? साला उसके अन्तरका सही भाव नही जान सका और अब भी वह दिल्लगी करता है हा तुम बनोगे तो हम भी बन जायेंगे। वह तो लो मुनि बन गया। जो कि इतना तीव्र मोही था कि अपनी स्त्रीको एक दिन भी नहीं छोड सकता वह सदाके लिए मोहयुक्त हो गया। यह देखकर उदय सुन्दरका भी मोह टूट गया। कुछ विचित्र आनन्द आ गया सो वह भी मुनि हो गया। दोनों की दशाओंको देखकर स्त्रीको भी वैराग्य आ गया। भैया देखो ना, कठिन अवस्था, कठिन सकट उपकारके लिए होते हैं। मोही उन सकटोसे तनिक भी लाभ नहीं लेता परन्तु ज्ञानी उन सकटोसे लाभ उठा लेते हैं। आज सब चिल्लाते हैं, कहते हैं कि सदाचारी बनों, योग्य नागरिक बनों, सद् व्यवहार वाले बनों किन्तु जो कुछ अच्छापन निर्बाध चलता है। उस सबका मूल है आत्मस्वरूपके सत्य ज्ञानके बिना कोई सदाचार टिक नही सकता। आत्मज्ञान बिना सदाचार बनने की धुन कोरी उफान है। यह समझते कि एक लौकिक वृत्तकी अतवुनिसवार है कि ठीक ठीक काम करो। अज्ञानियोको उन सदाचारोंको पालनेमे भी आत्म-सन्तोष नही हो सकता है। क्योकि आत्मज्ञान होनेसे सदाचार तो होता ही है किन्तु आत्मसन्तोष भी होता है जिसे अपने स्वरूपका परिज्ञान हो गया, यह मैं आत्मा केवल ज्ञान-आनन्द भाव मात्र हू। अन्य पदार्थोंमे न मेरा कर्तृत्व है, न स्वामित्व है, न भोक्तृत्व है और मुझमे उपाधिका निमित्त पाकर उत्पन्न होने वाले विकार भी स्वय नही आते हैं, ये उपाधिकी झलक हैं। ऐसा सही ज्ञान जिन्हें हो गया वे पुरुष दूसरोपर कैसे अन्याय करेंगे ? उन्हें इस अपने आप पर अपनी भूलमें हो रहे अन्यायको करने की क्या गरज पडी है। वह दूसरो पर अन्याय क्यो करेगा ? दूसरो पर अन्याय न करना ही सदाचार है। सबसे अमूल्य वैभव और पुरुषार्थ आत्मा की सहज ज्योतिकी झलक है। आज इस आध्यात्मिकत्वके रुचिक कम हैं। समस्त ससारमे अपने मडल पर ही दृष्टि न देकर सब मनुष्यों पर दृष्टि करके देखो। जैसे आज मास न खाने वालोकी गिनती की जाय तो उनकी हुई गिनतीमे मासत्यागी लोग शायद एक प्रतिशत भी न बैठने पायें। सौ मे एक निकलेगा जो मासका त्यागी होगा। यह सुनकर त्यागीको अचरज होता है कि ये सब तो मास न खानेवाले हैं, फिर बतलाते हैं कि एक प्रतिशत मास त्यागी है। दुनियामें दृष्टि लगाओ तो यह [illegible] निकलेगा कि एक प्रतिशत मास त्यागी हैं। अपनी ओर को ही न देखो। सारा बगाल, सारा उडीसा, [illegible] और विदेश चीन वगैरह सब पर दृष्टि लगाकर देखो तो एक प्रतिशत भी मांसत्यागी मुश्किलसे निकलेंगे। वहां तो

लें। पुण्यके उदयमे कुछ बडा हुआ तो क्या हुआ ? गृहस्थके झझटोंमें ऐसा ही तो हुआ करता है। बडप्पन तो यह है कि विवेकका कार्य करें, सत्यस्वरूपको समझे, परमात्मतत्व आत्मतत्वको शरण गहे निर्मोह रहकर सबसे प्रेमका व्यवहार करे। यह तो है विवेककी बात, किन्तु स्वच्छद होकर मोही बनकर परवस्तुकी ओर झुके तो यह तो प्रकट अविवेक है। दुःखी तो मोहीको, अविवेकीको होना ही पडेगा। जगलमे एक साधु महाराज ग्रीष्म कालमे कही विहार करते हुए जा रहे थे। एक राजा वहासे निकला। राजा बोला महाराज तुम बडे दुखी हो। ऊपर भी धूप और नीचे भी धूप आई हुई है तो हम आपके पैरोके लिए जूतिया बनवा दे। कमसे कम नीचेकी गर्मी तो मिटेगी। साधु बोला अच्छा बनवा देना। पर, नीचेकी गर्मी तो मिट जायेगी, ऊपरकी गर्मी कैसे निकलेगी ? राजा बोला महाराज हम बढिया छतरी दे देंगे। साधु बोला फिर लू जो गर्मीमे सताएगी ना उसका क्या होगा ? राजा बोला कि बढिया रेशमी कपडे बना देंगे आप किसी बातकी परवाह न करो। अब साधुजी बोले, इतने सजधजके बाद पैदल चलनमे आलस्य आयेगा तो राजा बोला कि आपको एक कार दे देंगे और कारके खर्चके लिए ४ गाव लगा देंगे। साधु बोला कि राजन् फिर मुझे पडगाहेगा कौन ? मेरे लिए रोटी कौन करेगा और जब रोटी करने वाली ही नही होगी तो फिर क्या भूखे मरेंगे। राजा बोला—नही महाराज हम आपकी शादी कर देंगे। फिर आपकी स्त्री खाना बनायगी और आपको बढिया बढ़िया भोजन खिलायेगी। साधु बोला कि बच्चे होंगे, खर्च बढेगा। राजा बोला महाराज हमारे ५०० गांव लगे हैं आपको और चार गांव दे देंगे। साधुजी बोले कि बच्चे फिर बडे होंगे। उनमेसे कोई लडका अथवा लडकी गुजर जायेगी तो फिर रोयेगा कौन ? साधुने सोचा कि शायद राजा यह कह दे कि हम रो लेंगे। पर राजा साधुसे क्या कहता है कि और तो सब कुछ कर देंगे मगर रोना तो तुमको ही पडेगा। जो भी विकल्प करेगा, मोह करेगा रोना तो उसको ही पडेगा। यह ठाट बाट मिला है, सब कोई चाहता तो यह है कि इसमे मस्त रहा करें, बडे सज धजसे बनकर रहे किन्तु ऐसा अधिकार तो किसीका है ही नही। हा अपने पर अपना अधिकार है, आत्मज्ञान तत्त्वज्ञानकी चर्चासे अध्यात्मिकतासे अपनी आत्माको पुष्ट बना सके। पुण्यके ठाटोमे मस्त रहने वालेसे कई गुण आनन्द आत्म ज्ञान तत्वज्ञानमे होता है। किसीसे पूछो मीठा क्या है ? प्रत्येक कोई कहेगा कि दूध मीठा है, दही मीठा है, गुड मीठा है शक्कर मीठी है। अरे ! मीठा क्या है ? जिसका जहा मन लग गया उसको वही मीठा है। क्या नमक कम मीठा है ? यदि नमक कम मीठा है तो बिना नमकके रसोई बनाकर देखो आनन्द नही पावोगे। आनन्द तो क्या, खाया भी न जायगा। जिसका जहा मन लग गया, वहा उसको आनन्द प्राप्त है, जो चीज मेरे पास सदा नही रह सकती और जब रहती है तब भी मेरी इच्छाके अनुकूल परिणत नही होती हो तो भी नही रुच सकती, उसमे मन लगाना व्यर्थ है। यदि कोई यह निणय देता कि हमे जो भोग कभी नही मिटेंगे, सदा रहेंगे और जो हमे इन्द्रियामे मिली है ये भी कभी नही मिटेंगी, सदा रहेगी। सो नि सदेह ऐसा कह सकते हैं कि धर्म ढूढना व्यथ है किन्तु ऐसा तो हुआ ही नही है। और भी इसके कारण हैं कि सदा क्लेश बने रहते हैं।

भैया ! सत्य बातकी ओर आचार्य देव प्रेरणा करते हैं, यह वहकानेकी बात नही है। आचार्यको वहकाने की बातोमे क्या था ? जो किसीको अदृश्यकी ओर ले जाए। बात ऐसी है कि यह दृश्यमात्र पदार्थोमे सार कुछ नही इसलिए परमार्थसार है, परमाथ शरण है जो निजचैतन्य स्वभाव है उसकी ओर उपयोगके लिए उपदेश किये जा रहे हैं। भूख लगती है और भूखको हम खाना खाकर मिटाते हैं किन्तु अगर ऐसी अवस्था हो जाय कि भूखे लगेही नही तो इससे सुख है कि नही ? कोई ऐसे भी रोगी हैं जिनको कोई भूख नही लगती, हम उनकी कथा नही कर रहे हैं। वे मोही हैं। भूख बिना उनका गुजारा नही है। ज्ञानी चाहता है कि मेरी आत्माकी शुद्धि हो जाय। अरहत बनकरके शुद्ध होगा। जब अठारहो दोप नही रहते तब तो आनन्दकी पूरी स्थिति हो जायगी। जहा विकल्पजाल नही रहा वही आनन्दकी उत्कृष्ट अवस्था है। विकल्पजाल नही रहे इसके

लिए उपाय आत्मस्वरूपका परिचय करना है। स्वपरिचय बिना विकल्पजाल मिटनेका उपयोग कैसे होगा ? अपनी शुद्ध आत्माको सत्ताके कारण सहज स्वत सिद्ध जो भाव है वह निर्विकल्प है, जन्ममरणस रहित है, शरीरसे रहित है, कर्मोसे रहित ज्ञायकमात्र है। उस ज्ञायकस्वभावका परिचय इतन उत्थानका आधार है। हम अपनेमे गडते जाये और किसी ऐसी गुप्त जगह पहुच जायें कि जहा पहुचनेके बाद इस जीवको रच भी अशाति नही रहती है। परमात्मतत्व का परिचय करले और उस परमात्मतत्त्वके ज्ञानमे सुदृढ रह ले तो यह बडे वीर पुरुषोका काय है। कायरजन तुरन्त वह जाते हैं। रच भी धैय नही रख सकते वे गृहस्थ परिवार धन्य हैं। जहा सबके सब बच्चे भी पुत्र भी उस आत्मतत्त्वकी चर्चा करते है। वह गृहस्थ जीवन सफल है।

भैया! जो शातिका मूलमूल है ऐसे अपने परमात्मतत्त्वके परिचयके लिए तन क्या ? मन क्या ? धन क्या है ? वचन क्या ? सब कुछ न्यौछावर करना पडे, सब कुछ त्याग भी करना पडे, यह सब न्यौछावर करके भी एक इस सहज परमात्मस्वरूपका परिचय पा ले तो सब कुछ पा लिया और फिर यह तन, मन, धनके त्यागनेकी भी बात नही है। एक दृष्टि पडनेकी बात, लगने लगनेकी बात है। यदि आत्मज्ञानकी उत्सुकता हो गई तो भैया! बहुत बडी निधि पा ली।

जो परमत्थे णिक्कलवि कम्मविभिण्णउ जो वि।
मूढा सयलु भणति फुडु मुणि परमप्पउ सो जि ॥३७॥

जो आत्मा परमात्मा शरीरसे रहित है, कर्मोंसे रहित है यदि ऐसा ही बननेका भाव हो कम नोकर्म रहित अपने आपकी भावना करना चाहिए।

मुनिजन अपनेको शरीररहित कमरहित देखते है। ज्ञानी सत उसे अपना अस्तित्व मात्र देखता है। अपने स्वरूपमात्र जो ज्ञानस्वभाव आत्मा है उसे परमात्मा जानो। मूख पुरुषोको तो जो आखो दीखे वही सच है, जो इन्द्रियके द्वारा ज्ञात हो वही सच है। उनको छोटी बुद्धिमे जितनी बात समाई है वही सच है। जैसे एक हस उडकर आया और एक कुयेंके पाट पर बैठ गया। कुएमे था एक मेढक तो वह मेढक बोलता है कि तुम कौन हो ? हम हसराज है। कहा रहते हो ? मानसरोवरमे रहते है। वह मानसरोवर कितना बडा है। बहुत बडा है आखिर वह मेढक एक टागपसारके बोलता है कि क्या इतना बडा है। अरे इससे बहुत बडा है। दूसरी टाग पसारके बोला कि क्या इतना बडा है। भाई वह तो बहुत बडा है। तीसरी चौथी टाग पसार कर बोला कि इतना बडा है। अजी इससे बहुत बडा हैं। तो वह मेढक एक पारसे दूसरी पार पहुचता है तो क्या इतना बडा है ? अजी बहुत बडा हैं, तो फिर मेढक कहता है कि इससे बडी तो दुनिया भी नही जितना कि मैंने उछलकर नापा है। इससे बडी तो दुनिया भी नही है, तो मूखकी बुद्धिमे जो बात आती है उसके लिए वही सच है। और यहा झगडा किस बात पर चलता है मूर्खोको अपनी बुद्धि पर ही विश्वास है कि विवेकी है तो हम हैं और बुद्धिमान है तो हम हैं। इस जगत् मे डेढ अकल है। एक पूरी अकल तो हमे मिली और आधी अकल सारी दुनियाको बट गई, ऐसी दृष्टि होती है मूखकी, वह तो आखो देखी सच मानता है। जो आखोसे देखा गया है यह है भौतिक जाल। नास्तिक जन इस शरीरका ही तो प्रमाण मानते है, जीव इसमे अलग कुछ नही है। लोग कह भी देते हैं कि—"यावज्जीवेत्सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृत पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत जत तक जीवे, सुखसे जीवे। ऋण हो जाय तो भी घी पीवे, भोजन करे तो अच्छा, रुखे सूखे नही रहे, खूब घी खाये। अरे यह शरीर भस्म हो जायेगा, फिर आयेगा नही। यह तो उपहासकोका कहना है पर नास्तिकोमे से पढे लिखे तो यह कहते हैं कि तर्कोऽप्रतिष्ठ श्रुतयो विभिन्ना, नासौ मुनिर्यस्य वच प्रमाणम्। धर्मस्य तत्त्व निहित गुहाया, महजनो येन गत स पन्था ॥

मैं किसका सहारा ढूढू ? जितनी बुद्धिया है उनकी कोई प्रतिष्ठा नही। वकील लोग जानते हैं कि सत्य क्या है झूठ क्या है ? सत्यको झूठ बना देते हैं और झूठको सत्य, तर्ककी कोई प्रतिष्ठा नही है। आगमकी बात देखो

तो सब जुदे जुदे भिन्न भिन्न हैं, ऐसा कोई आचार्य है नही एक, जिसके वचन प्रमाण माने जायें और फिर धर्मका तत्त्व तो गुफामे रखा है इस तरह गुप्त है, अंधेरेमे है ? सो हम तो यही जानते है कि जिस रास्तेमे महाजन निकले हैं, जैसे आचारको महाजन लोग करते हैं, हम तो इस ही को मार्ग समझते है। यह पढे लिखे नास्तिकोंका कथन है। यह सब ऊपरी ऊपरी भ्रमण है।

जैसे कोई एक ऐसा खेल होता है। बच्चे उसमे गोली रख देते हैं और उसे हिलाते रहते हैं जब तक कि वह गोली निश्चित किए गड्ढेमे नही आ जाती तब तक वह गोली फिरती रहती है। कब तक हमारे तक विचार, कल्पनाए घूमती रहेंगी, जब तक एकस्वरूप निजज्ञानमात्र आत्मतत्त्व उपयोग नही पहुचे, घूमती है। कारण यह है कि ढूढलो कोई ऐसी वस्तु जिसमे चित लगा दे तो उस वस्तुकी तरफसे धोखा नही हो, चाहे हम अपनी कल्पनासे हट जाये किन्तु उस वस्तुमे धोखा नही हो, ऐसी जगतमे कोई वस्तु है ? नही है। स्त्री पुत्र हैं उनमे ऐसी विचित्र कषाय भरी है, आपके भावके अनुकूलके सब परिणमन कार्य भी मुश्किल हैं। ८–१० वर्षका बालक है, खेलमे लगा हुआ है। तुम उससे कहो कि एक गिलास पानी ला दो, हमे प्यास लगी है। वह सुनता ही नही, आपका प्रिय बालक है पर उसके कषायमे आये तो सुनेगा। आपकी कषायके कारण नही सुनेगा। किसी दूसरेसे मन भी मिल जाय तो वह मेल क्षणिक है, नष्ट हो जाने वाला है, नष्ट हो जायगा तो उसका सहारा क्या है ? और परमात्मतत्त्वकी तो यह बात है कि जो परद्रव्य शुद्ध परमात्मा है उसका सहारा तो होता ही नही क्योंकि आत्मा अपना ज्ञान दर्शन-स्वरूप है। केवल आधार लगा तो वह अपना ही लेगा पर आपमे आधार लेनेकी सामर्थ्य ही नही। कदाचित् कहे कि अरहत सिद्ध भगवानका सहारा मिल तो वह तो धोखा न देंगे। वे अपने स्वरूपमे लीन हैं, आप कितने ही जोरसे स्तवन पढे। तपस्या कर करके थक जाते है पर अपना उन्हे जरा भी ध्यान नही है। वे अपना ज्ञान सभाले या इस मलीन आत्माका उद्धार करें। उनका क्या सहारा है ? हा सहारा इसमे है कि हम उनके गुणोका स्मरण करते रहे। हम अपने आपकी स्वभाव दृष्टिमे लीन रहते है तो सारा काम बन जाता है। यह तो तीनों कालमे सब परसे व सब परभावसे जुदा है। यदि मेरे कहनेसे भगवान अपना निजासन छोड करके मुझे उठाने आ जायें तो समझो कि जैसे खोटे सगसे खोटी बाते यहा लोकोंमे जल्दी आ जाती हैं, उसी तरह भगवानमे भी खोटापन जल्दी आ गया। फिर महिमा क्या रही ? भैया वह तो शुद्ध हैं अनन्त केवलज्ञानदर्शन शक्ति व आनन्दके लिए है। यदि वे कुछ करने लगे तो उसकी सब इज्जत धूलमे मिल जायेगी कि हजारो आप जैसे करोडों पुरुष उनको तो ध्यान करते हैं, फिर तो उनका बहुत काम बढ जायेगा। सो निश्चय करो—परमात्मा अपनेमें हो अपना काम करता है। किसीका सहारा ले यहा जो अशुद्ध प्राणी हैं, उनका सहारा लेनेसे लाभ नही और जो शुद्ध परमात्मा है वह परद्रव्य है उनका सहारा उन्हे स्वीकार नही। फिर किसका सहारा लें कि हम अपनेको सकटोंसे बचा सकें। वह सच्चा सहारा है अपने आपके सहजस्वरूपको अपने आपमे देखना। इस प्रकार कि केवल मैं अपने सत्वके कारण जैसे स्वरूप वाला हू। दर्पण यद्यपि किसी न किसी छायारूप परिणमता रहता है, उसे कही भी ले जाओ, ट्रकमे बन्द कर दोगे तो ट्रकके पटलाकी छाया आ जायेगी और कपडेमे बाध देंगे तो कपडोकी छाया आ जायेगी। आप उस जहा भी रख देंगे तो उसके पास जो भी उपाधि होगी उसकी छाया आ जायेगी। पर ज्ञान बलसे उस साफ स्वच्छ दर्पणके कारणदर्पणका क्या स्वभाव है ? क्या छाया पडना स्वभाव है ? उसका तो स्वच्छ स्वभाव है। इसी तरह यह पुरुष घरमे रहता है तो वहा भी विकल्प हो जाता है और समाजमे बैठता है तो वहा भी विकल्प, राग, द्वेष कल्पनायें चलती रहती हैं। उदय है, फिर भी अपने आपमे सोचो तो मेरे अपने आपके अस्तित्वके कारण आत्मतत्त्वके नाते मेरा क्या स्वरूप है। क्या विकल्प करना ? रागद्वेष करना, यह मेरा स्वरूप है ? नहीं। मेरा तो केवल प्रतिभासमात्र स्वरूप है। जगतके सब-पदार्थोंसे उत्कृष्ट विलक्षण स्वरूप इस आत्माका तत्व है। कल्पना करो कि दुनियामें ये तो सारी चीज हो, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। एक जीव भर नही हो तो इस लोककी क्या स्थिति होगी ? कुछ है ही नही समझिये।

बडी तपस्या है। मोहका त्याग करना, सत्य बातको समझते रहना, रागके वहकावेमे नही आना, यह सब परमार्थ की बडी तपस्या है। इसमे कठिनाई है, बडा बलिदान है, त्याग है, यह सब कुछ त्याग विवेकीजन कर सकते हैं। पर इस तपस्याके एवजमे जो उन्हे आनन्द आता है वह स्व स्वाधीन सहज, सत्य आनन्द आता है। अपनी २४ घटे की जीवनीमे ही देख लो कि जब यह ध्यान हो जाता है कि अब मेरेको करनेको काम नही रहा। इस समय शाति रहती है और जब मेरे करनेको काम पडा है यह भाव है तब तो शाति नही रहती। जब आत्माकी ओर कुछ झुकाव होता है तब सतोष होता है, जब बाह्यकी ओर झुकाव होता है तब असतोष होता है। हम सब केवल भूलमे ही दु खी बने है। दु खी कर कोई नही रहा। कमके उदय भी मेरा दु ख परिणमन नही करते वह तो अपन विपाक समयमे हाजिर होता है। यह तो उसका निमित्त पाकर अपने आपके परिणमनमे दुखी हो रहा है। कोई बाहरक लोग मेरेको दुखी नही कर रहे हैं। मैं विचित्र कल्पना कर अपन आपमे दुखी होता हू। एक कथा एक टीकामे है। वेदान्त जगदीश टीकामे है कि १० जुलाहे थे। बडे मित्र थे। सबके सब कपडा बेचने बेचारे एक गावमे गए। उस गावके बीचमे नदी पडती थी। जब वे लौटकर घरको आए तो नदीमें से निकल आये तो उनमेसे एकने कहा कि अपने सब मित्रोको गिन तो लो कि १० के १० ही हैं ना, कोई बह न गया। जब वे गिनने लगे तो सामने वालोको तो सबको गिन ले पर खुद पर दृष्टि नही पहुचे। उनके ध्यानमे तो गिनने वालोको ९ के ९ लगे। दूसरे भी ऐसे ही गिने, अब सबके सब रोने लगे। गए थे दो तीन रुपयेका नफा लेनेको और एक मित्र खो आये। दसोने गिन डाले, सबको ९ ही लगे, तब दसवेने कहा कि वास्तवमे हम ९ ही हैं तो यह बात पक्की हो गई और वे सबके सब पासमे पडे हुए पत्थर ककडियोसे सिर फोडने लगे। कुछ देर बाद वहासे एक घुडसवार निकला देखा कि ये सिर फोड रहे हैं कारण पूछा तो उन्होने बता दिया। उसने एक निगाहमे देख लिया कि ये सबके सब दस हैं। वह कहने लगा कि तुम ९ तो जरुर हो पर अगर १०वें को हम तुम्हे दिखा दें और मिला दें तो क्या दोगे? सब बोले महाराज आपका बडा ऐहसान होगा और आपको नामको जन्म भर नही भूलेंगे। उसने एक छोटी लाठी ली। वह मारता हुआ कहता जाय कि १-२-३-४-५-६-७-८-९ और तू ही तो १० वा हैं और उसने फिर दूसरेसे शुरु किया और फिर जोरसे कहा कि तू ही तो १० वा है। इस तरह वे बडे खुश हुए। अब इस समयकी स्थिति देखो पहिले जो उन्हें भ्रम था कि एक मर गया। इस भूलमे जो घबराहट अब है क्या? मगर उस घबराहटके समय सिर फोड दिया था वह वेदना अवश्य है। घबराहट नही है। भ्रमकी वेदना नही है किन्तु सचमुचकी वेदना है। इस प्रकार जब यह जीव मोहमे रहता है अज्ञानमे बसा है, जबकि घबराहटका वणन कौन कर सकता है? सहज चैतन्यस्वरूप भगवान्की भूलकी घबराहटका कोई भी वणन नही कर सकता है। केवलज्ञान अनत है, यह मोह भी अनत है। मोहसे होने वाली विह्वलता बहुत कठिन विह्वलता है और कभी मोह मिट जाय तो मोहके मिट जाने पर भी पुराने सस्कारके कारण जो राग है अभी उस रागकी वेदना है। ऐसे भी तीव्र होते हैं कि उन्हे रागकी वेदना नही मगर रागकी वेदना सताती है। एक बूढी बुढिया जब अपने बापके घरसे ससुरालको जाती है, बुढियाके भी ससुराल होती है, चाहे उसके मा बाप नही है पर नाती तो होते हैं, नातियोकी छातीसे लगाकर रोकरके ससुराल जाती है पर उस रोनेमे मोह है। कमसे कम २२५ बार बुढिया ससुराल जा चुकी होगी और अब २२५वी बार फिर जा रही है। पद्धतिका राग है। उस रागके कारण बुढिया रो करके जा रही है। पद्धतिके कारण इतनी वेदना तो उस बुढियाको भी है। ज्ञान वालेको अज्ञानकी वेदना नहीं है किन्तु जो राग है उसकी वेदना तो सहनी पडती है। रागकी वेदना भी इतनी प्रबल हो जाती हैं कि जब राजा रामचन्द्र जी वनको गए और वहा कुछ समय बाद सीता हरी गई तब सीता के हरे जानेके समय उनको कितना राग था, लक्ष्मणके गुजरजाने पर कितना राग किया, उस प्रवृत्तिको आप सुनें और भगवान् रामचन्द्रका नाम न लें तो क्या निणय होगा? एक आदमी था उसका छोटा भाई गुजर गया और उसकी लाशको लेले कर फिरा और फिर लाशको घर करके कहा कि भैया! खाना तो खा लो। एक ऐसा आदमी

है तो आप उसे क्या कहेंगे ? भगवान् श्री रामचन्द्रजी का पूर्व चरित्र सुनाओ तो कहोगे, उनके अन्तरमे सम्यक्त्व पर चेष्टा रागकी इतना प्रबल थी कि बाहर सम्यक्त्वके कारण ऐसी वृत्ति हुई। तभी तो अवसर आने पर सब-विकार दूर हो गये। सम्यक्त्वकी वतनासे उनका भी उद्धार हो गया। परोपकारकी बात धमकी धुनिमे आ करके हमे बडी सुहा जाती है और पहिले सरल लगती है। परोपकार करने वालोमे कोई ऐसा भी पुरुष है जो निश्छल परका उपकार कर सके विरला ही कोई है। हम लोकमे बडे है, लोग हमको बडा समझते है ऐसी बात जब चित्तमें बैठी है तो उस बडप्पनकी सभार भी इस तरह होती है कि दूसरेकी बातको करे ढोंग रचे। यह बात कह रहे हैं एक सत्यकार्यकी। कोई पुरुष ऐसा है जो इस भावसे उपयोग करता है कि यह जीव भी शुद्धतत्त्वकी प्रतिमूर्ति है। इसकी सेवामे कुछ समय लगाए तो मेरेमे विषयकषायको बातका विकल्प नही आये। अपने आपके विषयकषायके विकल्पोसे बचानेकी भावनासे जो उपकार किया जाता है वह तो है सही पद्धतिका उपकार और इस लक्ष्यको छोडकर जो उपकार किया जाता है तो वह तो उस प्रकारका उपकार है जैसे कोई मारबलमे नाम खुदवा दिया। इस प्रकार के उपकारी दुनियाम मिलते हैं। यह चाहते हैं कि इस मारबलपर लिखे मेरे नामको बात कर सब लोग जाया करें। धन्य है वह विवेकी पुरुष जो विषय कषायके विकल्पोसे बचनेके ध्येयसे दूसरे जावोका उपकार करता है। यह सम्पदा आ पडी है मेरे घरमे जरूरतसे कई गुनी है और मेरे विकल्पोका कारण बनी है और उसे छोड कर जाना पडेगा। व्यय करदे धम हेतु उपकार हेतु, इस प्रकारकी भावनासे जो धनका व्यय होता है वह है पद्धतिका त्याग, इस भावसे धनका त्याग करना और इस भावसे उपकार करना यह है सही पद्धतिका उपकार। जो कुछ भी करे अपने बचावके लिए, निमलता रखनेके लिए करें। इसका उपाय बताया जाता है कि हम किसकी शरण जाए कि हमको वहा सत्य आनन्द प्राप्त हो। यह सबसे वडी सम्पदा यह है कि हमे वस्तुतत्त्वका सही स्वरूप दृष्टिमे आ जाय। यह बात कुछ कठिन लगती है और कठिन नही भी है। थोडा सा कुछ अध्ययन करने पर मनन होने पर यह बात सुगम हो जाती है। बडे-बडे ग्रथकारोने जो आपके कुदकुद महाराज समतभद्र महाराज अकलकदेव इत्यादि अनेक आचार्य हुए उन्होने ज्ञानपर बल दिया है उनकी टीकाओमे वस्तुस्वरूपका वणन आया है। यह समझो कि उन्होने विशेष आव-श्यकता नही समझी कि ये सब लिख जायें कि लोग यो रहे या करें या सभ्यता सीखें जिसे इसानियत कहते हैं, नागरिकता कहते हैं। ऐसा वर्णन किसी ग्रथमे नही आया और आ गया तो कभी एक सूत्रमे आ गया सो वह भी तत्त्वका प्रकरण है तो आ गया जैसे सूत्रजीमे लिखा है—

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसयमादियोग क्षान्ति शौचमिति सद्वेद्यस्य।

सो देखो उस तत्वका प्रकरण था अत वह एक सूत्रमे बता दिया किन्तु वहा भी यह उपदेश नही दिया कि तुम क्षमा करो, दया करो, सयम पालो। इसमे यह कहा है कि क्षमा, दया आदि भाव साता वेदनीयके बध करने वाले हैं। करना चाहो कर लो। शास्त्रोमे सम्यग्ज्ञानमे भी मुख्यतया वस्तुस्वरूपका ज्ञान बताया है। कोई स्रोत ऐसा मिल जाय चाहे वह १० वर्षमे मिले जिससे कि फिर जलकी धारा नही टूटे। ऐसा ज्ञान मिल जाय चाहे १०-१२ वर्षमे मिले पर जिस ज्ञानके बाद हमारी सद्वृत्तिकी परम्परा नही टूटे उसमे आचार्य महाराजकी दृष्टि थी और ऐसी ही दृष्टि भक्तको अपने मनमे रखनी चाहिए। भैया अपने आपमे ही कोई तत्त्व ऐसा है कि जिसके दीख जाने पर मोह ठहर नही सकता। वह तत्त्व क्या है उसका वणन इस परमात्म प्रकाश ग्रथमे है। जैसे हड्डीका फोटो लेनेवाला एक्सरा कपडेको छोडकर, चमडेको छोडकर खून मासको छोडकर सीधा हड्डीका फोटो ले लेना है उसी प्रकार यह प्रज्ञा, वैभवको छोडकर परिवारको छोडकर, शरीरको छोडकर, कमको छोडकर, राग, द्वेष भावोको छोडकर, अपूर्ण ज्ञानको छोडकर, विकारको छोडकर अनादि अनत शुद्धचैतन्यस्वभावका अपने उपयोगमे ले लेता है।

यह सब ज्ञानका ही तो प्रताप है। आपकी दुकानकी तिजोरीमे बक्स है उस बक्समे भी बक्स, बक्समें

डिबिया, डिबियामे, कपडा, कपडेमे एक हीरेकी अगूठी है। आपको जब उस अगूठीका ख्याल आ जाता है तो आपका ज्ञान न तो दुकानके किवाडसे अडता, न तिजोरीसे अडता, न डिबियासे न कपडेसे अडता, सीधा हीरा जडी अगूठीको जान जाता है। ज्ञानकी गति सवपदार्थोकी गतिस विलक्षण है। सम्यक्ज्ञानी पुरुष ही ऐसा कर सकता है इसका ज्ञान किसीमे नही अटकता, सीधा जो अपना शुद्ध सहजस्वरूप है, पावन है, उद्धार करने वाला सवस्व है उसकी शरणमे पहुच जाता है। वह परमात्मतत्त्व क्या है ? इसका वणन इस ग्रन्थमे है कि जो देहमे रहता हुआ भी शरीर-रहित है, कमसे भिन्न है उसको ही तुम परमात्मा जानो। जो बात कई प्रकारसे सुनी जाती है, परिचयमे आती है, अनुभवमे आती है उसमे लगाव हो जाता है। जो कभी सुननेमे नही आये, परिचयमे नही आये, अनुभवमे नही आये उसका लगाव कैसे हो ? कमसे कम इतना तो ज्ञान सामने रख करके इस मुझ पर्यायको गुजर ही जाना है। कभी और यह सारा सगम छूट जाना है, कभी वियोग हो ले कुछ समय लगे वियोग तो होगा ही फिर मेरा जो मैं रहूगा उसका क्या होगा ? उसका मुझे क्या करना है ? इतना सामान्य बोध सामने रखकर इसकी उत्सुकता बना ले कि हम अपने आपके रहस्यको समझ लें, मर्मको समझ लें जिसके लिए बडे बडे तीर्थंकरोने बडी विभूतियोका त्याग किया और अपने आपके स्वरूपमे मग्नताकी। देखो—प्रभु सर्वोत्कृष्ट हैं तभी तो हम मूर्ति बनाकर पूजते हैं। मूर्ति बनाकर पूजनेका अर्थ यह है कि यह महान् पूज्य है। यहा भी भैया आप लोग हाथ जोडते रहते है ब्रह्मचारीके, पडोसियोके जजके पर किसीकी मूर्ति बनाकर भी आपने हाथ पैर जोडे।

किसीकी मूर्ति बनाकर हाथ जोडनेका तात्पर्य यह है कि वह महान् पूज्य है। कभी किसीसे कोई बात अटक गई तो उसके हाथ जोडकर पैर तक भी पकड लेते हैं पर उसकी मूर्ति बनाकर एक अगुलीसे भी जसे आजकल परम्परामे सलाम किया बताते हैं इतना भी करते है क्या ? और जाने दो पिता की भी आप फोटो बनाते है। उस फोटोकी जानकारी भी औरोको कराते हैं देखकर सुखी होते हैं पर क्या कभी उस फोटोके भी हाथ जोडे हैं। किसी की मूर्ति बनाकर पूजना बहुत बडा महत्व रखता है। हमारी प्रभु मे बहुत बडी श्रद्धा है जिसको हम सकुचित नही रख पाते और मूर्ति बनाकर हम उसके दर्शनमे रहते हैं। यह सम्यक्दशनकी एक विशेषता बताने वाली बात है। मूढ लोग नही जानते, न जानें। ज्ञानी पुरुष भी दो चार ही जानते हैं जानें। यह कोई प्रजातन्त्र निणय नही है कि बहुत से लोग जानें तो बहुत तत्त्वकी बात है और कम लोग जिसे जानें वह असत्यकी बात है। यहा यह बात नही चलती। जैसे प्रजातन्त्र राज्यमे ऐसे कई समूह राज्य होते है कि जिसमे प्रजाके वोट से काम नही होते हैं। लोग यह देखते हैं कि समझदार कौन है ? ज्ञानी कौन है ? योग्य कौन है ? किसे मिनिस्टर बना दे। मिनिस्टर बना देना प्रजाजनोकी वोटमे नही होता होगा, विचारसे होता होगा। यह तत्त्वकी बात है अनते जीव इस तत्त्वकी निन्दा करने वाले हैं और गिने चुने पुरुष इस तत्त्वको पसन्द करने वाले हैं। तो गिने चुनोकी ही बात सही है। एक भिल्लनीको एक जगलमे गज मोती मिल जाये और उसे वह पत्थर मानकर अपने पैरोका मैल छुटाया करे तो वह मूर्ख है रहे मूर्ख। किन्तु वे गजमोती क्या रानियोके गलेमे हार बनकर शोभा नही दिया करते ? यह तत्त्व अज्ञानी जन चूकि उन्हें पता नही है उनकी दृष्टिमे यह पत्थर के समान है, रहे। किन्तु ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमे यह तत्त्व परम शरण ज्ञात हुआ कि जिससे हम प्रभु बन सके तो बनने की तैयारी कर सकते। इसके जानने से वीतराग समाधि बना सकें तो बना लें। भैया, राग द्वेषसे प्रभुके दर्शन नही होगे। रागद्वेष नही है, सबमे समताका परिणाम है निज स्वरूपमें भी विश्राम मिलता है तो प्रभुके दर्शन हो जायेंगे। एक साथ दो बातें न होगी कि रागद्वेष भी किये जायें व प्रभुके दर्शन भी पा लें। एक टीकामे एक कथानक है। दो चीटी थी। एक तो चीटी नमकके बोरे पर थी और दूसरी चीटी घरमें शक्करके बोरे पर रहा करती थी। दोनो नमक और शक्करमे रहा करती। एक बार शक्कर वाली चींटी नमक वाली चीटी के

पास आकर बोली—मेरी बहिन यहा क्या करती है ? यह तो तुम खारा खारा खा रही हो । तुम हमारे साथ चलो ना, हम आपको मिठा मिठा खिलायेंगी । बहुत आग्रह करने पर कि तुमको ता हमारे घर पर चलना ही पडेगा, चली किन्तु उसने यह ख्याल करके कि वहा कुछ नही मिला तो भूखा रहना पडेगा सो एक दिनके लिये भोजन तो ले चले तो अपनी चोचमे नमककी डली लेकर वह चली । शक्करवाली चीटीके साथ और वह वहा पहुची और शक्कर खाया तो शक्कर वाली चीटी ने पूछा बहिन कैसा स्वाद आया ? हमे तो वैसा ही स्वाद आया जैसे पहिलो था, उसे मधुर स्वाद नही आया । शक्कर वाली चीटी के लिये तो मीठा मीठा स्वाद था तो वह कहती है कि हमे तो मीठा मीठा स्वाद आता है उसने गौरसे देखा कि यह नमकीन डली चोचमे लेकर आयी है । अरे बहिन इसे छोड, चोचसे निकाल यदि हमारे यहा भोजन करने पर यह विश्वास नही है तो पासमे ही इस डलीको रख लो । उसने चोचसे डली निकालकर डलीको हटा दिया और उसने शक्करके दाने खाये । बोली बहिन, तुम ऐसा मजा कब से ले रही हो ? यह तो बडा मिठा लग रहा है । सो भैया ! हमारे मनमे मोह, रागद्वेष ममताका भाव भरा है तो हम प्रभुके दर्शन शुद्धात्मतत्त्वका अलौकिक अनुभव कैसे कर सकते हैं ? ज्ञानी पुरुषमे ही ऐसा साहस होता है जो बच्चोके घरकी तरह तुरत बनावे और तुरत बिगाड दे । जैसे बच्चे वर्षात की रतीली जमीन पर पहुचकर पैरके ऊपर धूल डालकर थोपकर घर बना लेते हैं इस प्रकार उन्हे घर बनानेमे समय नही लगता घरको बिगाडने मे भी एक लातकी देरी है। इस प्रकार ज्ञानी जीव दुकानमे रहता है, दुकानका काम खूब करता है और परिवारका शोषण भी खूब करता है किन्तु समय समय पर जब चाहे उन सब बातोको बिल्कुल भूलकर एक अपने सहजस्वरूपको भी देख लेता है। बाहरी काम करनेमे भी उसके पास कला है और उन बाहरी बातोको छोडकर अपना अनुभव करले ऐसी भी कला है । ऐसा योग्य पुरुष ज्ञानी पुरुष है । प्रभुके दर्शन करनेकी पद्धति यह है कि अपने आपको निर्विकल्प स्पष्ट बना लिया जाय तो प्रभुका दर्शन हो सकता है । एक बार दो चित्रकार राजाके पास आये, उन्होने कहा महाराज हम बडा अच्छा चित्र बनाना जानते हैं । राजाने कहा अच्छा तुम दोनोके चित्र हम मुकाबलेमे बनवायेंगे । राजाने एक ही हाल के बीचमे एक पार्टीशन कर दिया तो एक भीत एक चित्रकारको दे दी और दूसरी भीत दूसरे चित्रकारको दे दी और उनको चित्र बनाने के लिये राजाने ६ माहका समय दे दिया । दोनो मे से जिसका चित्र बढिया होगा उसको भरपूर पुरस्कार मिलेगा । हो गई तैयारी । एक चित्रकारने जिसको अपनी कला पर गर्व था बढिया रग मगाकर अच्छी चित्रकारी करना शुरू किया । जो दूसरा चित्रकार जो कि विवेकी था उसने अपनी भीतको घोटना शुरू किया । ६ माह हो गये तब राजाने कहा तुम लोगोके बनाये चित्र अब देखते हैं । उस पार्टीशनको अलग कर दिया । राजा चित्र देखने पहुचा तो गर्वीले चित्रकारके चित्रोको देखने लगा तो चित्र तो बहुत सुन्दर था । क्योकि कलाकार था लेकिन उसमे विशेष क्रांति नजर नही आयी और दूसरी भीत को देखा जो घुटी थी तो वे सारेके सारे चित्र चमकने लगे । राजाने उसको पुरस्कार दिया । इस प्रकार हम धर्मके नाम पर ४-६ घटा श्रम तो करते हैं । जाडे मे भी सुबह नहा धोकर मंदिरमे आते हैं भक्ति करते है, पूजा करते है स्वाध्याय करते है, गुरुवार्की सेवा भी करते हैं । बडा श्रम करते है । धर्मकी धुनि भी इतनी सही है , कोई काम आ पडे श्रम पर तो व्यय करने मे भी नही चूकते । क्या कर रहे हैं ? धर्मका काम कर रहे है । ऐसे धार्मिक कामका तो एक विवेकी पुरुष भी करता है और जिसके विवेक नही है और धर्मकी धुनि है तो वह भी ऐसा किया करता है । काममे अतर नहीं पडता है किन्तु जिसने अपनी उपयोगरूपी भीत को माझ लिया, साफ किया, सुथरा किया है उसको उस स्वच्छ ज्ञानमे आ टिका कि इसका स्वरूप यह है । व्यवहार धर्मसे भी लाभ लूटता है । भैया ! जानो तो सही इस आत्माका ढग क्या है ? किससे बना है ? कैसा आकार है ? क्या इसको जाना नही जा सकता ? उत्तर सही मिलना चाहिये कि यह ज्ञानमात्र है । यह मैं मात्र प्रतिभासका कर्त्ता हू । यह मैं अमूर्तिक जानन मात्र हू । उसका अन्य पदार्थसे भी सम्बन्ध नही । यह स्वय अपने

स्वरूपमे स्वतन्त्र है। यह बात अनुभवमे आ जाय तो ऐसी स्वच्छता हो जायगी कि हमारे फिर यही सब काम व्रतके तपके स्वाध्यायके ये सब चमक जावेंगे, शृंगार होगे। १० गुने फायदे देंगे एकके अकके ऊपर अगर हम एक बिंदी रख दें तो वह १० गुना सख्या हो जाती है। बिंदी १० गुनका प्रभाव डालती हैं। इस तरह अपनी आत्माका वोध सम्यक है तो यह सब कार्य १० गुने क्या कई गुन फैला करते हैं और एक का अक पहिले न हो तो क्या उससे एक केला भी खरीदा जा सकता है। उससे कोई काम निकल सकता है ? कुछ भी नही निकल सकता, व्यर्थ है। हा बिंदिया धरी है और कोई चुपचाप आकर कोई उनके पहिले एक लिख जाय तो वह बात अलग है। इस तरह जो व्रत तप किया जाता है उस स्थितिमे चुपचाप कभी किसीको आत्मतत्त्व दीख जाय तो वह बात अलग है। तो वह सब काम ऐसे हो जायेगा जैसे एक धनी कजूस कोई है, इस समय तो कजूस है पैसा खच नही कर सकता और कदाचित् उसके सद्बुद्धि हो जाय तो पैसा खर्च करने मे एक मिनट भी देर नही लगती। इसी प्रकार ये सब व्यवहार धर्मपालनके सस्कार है तो ठीक काम तो अच्छा है पर आत्मज्ञान बिना हितमे कजूस है जिसके कारण उसे आत्म-सन्तोष नही है। किन्तु धर्मके काममे सद्उपयोग है सो यद्यपि इस समय कर्मको सवर व निजरा तनिक भी नही होता फिर भी कदाचित् इन कामोंको करनेमे कभी आत्मज्योतिकी झलक आ जाय तो कल्याण हो जायेगा। इसलिये बिना आत्मज्ञानके ये हमारे धर्मक कार्य कजूस के धनकी तरह है। इस कालमे तो कजूस अपने आरामके लिये भी कुछ व्यय नही कर सकता किन्तु आगे कभी कर तो सकता है। धन तो है उसके पास। इस प्रकार इन कार्योंमे उसे शाति जरा भी नही रह पाती। देखो ना, विधान करते हुए विह्वलता क्यो रहती है ? कोई हमारा विधान बिगड नही जाय। ये लोग यह कह न जायें कि इनका विधान अच्छा नही हुआ। कितने प्रशगोमे तो गुस्सा आ जाता है। उसका लाभ नही ले पाता इसका कारण क्या है कि हम आत्मबोधपूर्वक काय नही करते हैं। पहिले समयमे तो वडो साधारण रीतिसे विधान होता था, वडी भक्तिसे, शातिमे विधान होते थे, खच भी अधिक नही होता था। बिना विविध व्यय व आडम्बरके कितना उत्तम होता था। जो बूढे आदमी हैं वे सब जानते हैं कि उस समय भक्ति शाति कितनी मात्रा मे रहती थी। आज हमारे कुछ लोग इसकी विधिको इतना बढ़ाते हैं कि एक विधानमे ५-६ हजार सभी खच करा है। जब इस विधानके करने वालेकी समझमे यह न आये कि इस विधानके करने में ५०००) खच हुआ तब तक कराने वाले को ५००) कैसे मिला, यदि वह देखता है कि मेरे विधानमे १००) खच होते हैं तो पडितजीको क्या मिलेगा ? कितना आडम्बर व श्रम बन गया विधानमे, सो विधान करने वाले जानते होंगे कि हम कितनी भक्तिमे अपना समय गुजारते हैं। जब तक आत्मज्ञान नही है और यह उद्देश्य नही बना है हमारी इस शुद्ध पूजामे कि प्रभुका स्वरूप ऐसा है और ऐसाही मैं हो सकता हू उस एक भावमे भरने के लिए मैं पूजा कर रहा हू—यह उद्देश्य नही आये जब तक शाति का उद्योग नही बन सकता। एक पुरुष साधुके पास गया बोला महाराज मुझे कुछ उपदेश दीजिये। साधु बोले—सुनो मैं ब्रह्म हू। फिर—मैं ब्रह्म हू। दो चार बार दिया यह उपदेश और महाराज और क्या ? और बतलाओ। साधु बोला, कि अच्छा तुम यहा से चले जाओ। अमुक गावमे पडितजी रहते है उनसे कुछ सीखो अध्ययन करो। वह गया और पडितजी से प्राथना की। उन्होने कहा जैसा कि पहिले यह रिवाज था कि कुछ काम करना पडता था गुरुका तब उससे कुछ शिक्षा मिलती थी। गुरुने कहा कि गाय भैंसकी शालामे गोबर को उठाने वाला कोई है नही सो तुम गोबरको फेंक आया करो और कुछ गोबर के कन्डे बना लिया करो। काम मिल गया और वह पढने लगा १२ वर्ष तक उसने गोबरका काम किया और १२ वष बाद जो कहते है दक्षिणाका समय तो उस समय कहने लगा कि गुरुजी मुझे सब उपदेशोंका सार बता दो तो गुरुने कहा सुनो। 'अहं ब्रह्म अस्मि, मैं ही ब्रह्म हू। शिष्य कहता है कि इतनी बात तो हमे एक साधुने बता दी थी तो क्या मैंने १२ वर्ष गोबर मुफ्तमे उठाया ? गुरुने कहा कि अब तक तुमने जो अध्ययन किया उस सब अध्ययन की बातका सार है, इसको अध्ययन किये बिना नही जान सकते थे। एक राजा था तो घोडे पर सवार हुआ। वह मन्त्रीके घरके सामने से निकला तो

उसने मन्त्री से कहा कि हमे आत्मा और परमात्मा दिखा दो। तो महाराज घोडेसे उतरो, राजा बोला हमे जल्दी है। हमको तो ५ मिनट मे ही दिखा दो। मन्त्री बोला महाराज अपराध क्षमा करो तो आपको पाच मिनटमे दिखा दूगा। मन्त्रीने राजाके हाथसे कोडा लेकर राजामे ३-४ कोडे मारे तो जो उन कोडोके पडनेसे राजाके मुहसे निकला अररे - भगवान्! मन्त्री बोला यही तो परमात्मा है, आत्मा है। जिसे तुम पुकारते हो वह भगवान् है जिसमे अरे कहा वह आत्मा है, जल्दी समझने का तो यही तरीका है, पर इस तरह कोई स्थाई बोध नही हुआ। आत्मज्ञान करना सबका काम है और उसके धनके लिये हमे विधिपूवक अध्ययनमे जुटना चाहिये। यह कमाई आपकी सच्ची कमाई होगी। आपका कमाया हुआ धन जब तक साथ है तब तक आकुलता है मगर यह आत्मज्ञान ही आपकी शातिका कारण है। उस ही परमात्मतत्त्वको इस ग्रथमे विशदरूपसे बताया जा रहा है।

जैसे इस अनन्त आकाशके बीचमे कोई एक नक्षत्र शोभायमान रहता है। इस ही तरह इस केवलज्ञानरूपी अनन्त आकाशके बीचमे यह समस्त तीन लोक और अलोक, तीनो लोक ये सब नक्षत्रके समान प्रकाशित होते हैं। यह प्रभुके ज्ञानकी महिमा बताई गई है। यह प्रभुके ही ज्ञानकी महिमा नही है, हमारे आपके ज्ञानकी भी महिमा है। तुम अपनी असली महिमाको नही जान रहे और व्यर्थमे जो नष्ट हुए जाने वाले है, जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नही रहेगा उनमे उपयोग बढाये हुए है। जैन शासनको पाकर भी यदि पुरानी रफ्तारसे तनिक भी नही टला तो किस लिये यह जैन शासन है? यह लोकाकोक इतनी जगहमे पडा हुआ है जैसे अनन्त आकाशके बीचमे एक नक्षत्र जितनी जगहमे पडा हुआ है। वस्तुके नापने के अविभाग प्रतिच्छेद होते है। डिग्रियाँ भगवानके ज्ञानके अभिभाव प्रतिछेद इतनी हैं कि थोडेसे अविभाग प्रतिच्छेद ही सारे विश्वको जान लेते है। देखो मोटी चीजमे बहुत सी चीज समाती है या पतली चीजमे बहुत चीज समाती है। उत्तर मिला पतलीमें बहुत सी चीज आया करती है मोटी वस्तु मे नही आया करती। दुनियामे देखलो जमीन मोटी है या पानी मोटा है। उत्तर मिला जमीन मोटी है तो जमीन का हिस्सा बडा है अथवा पानीका हिस्सा बडा है? पानी का हिस्सा बडा है। पतले मे अनेक मोटी वस्तुयें आया करती है। जैन सिद्धातके हिसाबसे भी जितना विस्तार स्वयभूरमणका का है उसका प्राय आधा विस्तार सारे द्वीप समुद्रोका है, तो जमीन का हिस्सा अपने इस मध्यलोकमे कितना है तो पानीके मुकाबलेमे उसका ८वा हिस्सा हो सकता है। पानी पतला होता है या हवा? हवा पानीसे पतली होती है। इस पानी और पृथ्वीका जितना विस्तार है वह सब हवाके अन्दरमे है हवा का विस्तार जमीन और पानीसे बडा है। हवा पतली है कि आकाश पतला है? आकाश हवासे पतला है। यह हवा पानी जमीन सब कुछ आकाशके अन्दर समाया हुआ है और आकाश जैसी पतली चीज भी एक ज्ञानके कोनेमे पडी है। यद्यपि अमूर्ति होने के कारण आकाश सूक्ष्म है पर आकाश सारा अनन्त आकाश ज्ञानके कोनेमे पडा है तो इस ही युक्तिसे अर्थ लगाया जाता है कि यह ज्ञान आकाशसे भी सूक्ष्म है। ऐसे ज्ञान होने की चर्चा सुनकर कुछ इच्छा हो जाया करती है कि मेरा भी ज्ञान बढे अवधिज्ञान बढे, केवल ज्ञान हो, बहुतसी बातोको जाना करें और उस ज्ञानके लिये इतनी उत्सुकता होनी है और इस विशाल ज्ञानकी उत्सुकता तो है ही। उस ज्ञानस्वभावपर हम दृष्टि दे तो हम भी इस ज्ञानविकासको, प्रभुताको पा सकते है। इस जीवनमे निणय तो यथाथ रखो। सत्य ज्ञान करने मे भी दिक्कत होती है क्या? घर है रहने दो, दुकान है रहने दो, काम करना है तो काम भी कर लो, पर सत्यज्ञान करने मे कोई भी दिक्कत है? सब पदाथ अपना सत्त्व लिए है। मेरी आत्माका दूसरे पदार्थोंमे कुछ भी नही लगता, ऐसा सत्यनिणय करनेमे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। बहुत अधिक त्याग तो सच्चा ज्ञान करनेमें ही आ जाता है। बाहरमें चीजोको छोडना, अब इस चीजको अपने पास न रखना, यह तो उस ज्ञानकी उत्कृष्टताका ही फल है। जिस समय आपकी दृष्टिमें यह समा जाए कि मेरा स्वरूप मुझमे है अन्य जीव अपने अपने सत्वमे है। उनमे गुण पर्यायका असर कुछ भी मुझमे नही आता ऐसा जिसमे सत्यका निर्णय है, वहाँ त्याग हो जाता है अन्दर से। अब राग जो सता रहा है उसको त्याग करने की आवश्यकता है। अन्दर

श्रद्धामें त्याग हो गया है। जैसे दो पड़ौसियोंने एक धोबीके यहां अपनी अपनी चद्दर धुलने डाली। उनमें एक आदमी पहिले धोबीके घर आकर उस चद्दरको ले आया लेकिन धोबीने धोखेसे चद्दर दूसरेकी दे दी। अब वह नहीं जानता है कि यह मेरी चद्दर है तो चद्दर उसने पहन ली और ओढ़कर सो गया उसे नींद भी आ गई। अब दूसरा गया चद्दर लेनेको जो कि धोबीके पास थी। अब धोबीने उस चद्दरको तो कहा है कि यह मेरी चद्दर नहीं है, अरे! तुम्हारी चद्दर उसके पास पहुंच गई है सो ही तो चद्दर थी। वह अब उस चद्दर ओढ़ने वालेके पास जाता है और चद्दर खींचकर उसे जगाता है कि यह चद्दर मेरी है, तुम्हारी नहीं है। वह जागा और इतनी बात सुनकर कि यह चद्दर मेरी नहीं है वह उन चिन्होंको देखने लगा जो उसके पहिचानके थे। वह उसे न मिले तो झट ज्ञान हो गया कि यह चद्दर मेरी नहीं है। उस चद्दरका भीतरसे त्याग हो गया क्योंकि यह मेरी चद्दर नहीं। वह मेरी नहीं है। कितना त्याग हो गया? जितना वह हाथसे छोड़ता उतना त्याग। कितना समझो उसको? बहुभाग त्याग हो गया। अब समझ लो कि ज्ञान द्वारा वस्तुके भिन्न भिन्न हो जानेके निर्णयमें भी बहुभाग त्याग हो जाता है। अल्प त्याग करनेको रहता है। जैसे राग कम होगा वैसे ही त्याग हो जायेगा। मगर केवल कहनेसे त्याग नहीं होता, गप्पसे त्याग नहीं होता। यदि श्रद्धामें यह जम जाय कि यह पदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न है तो उसका त्याग हो गया। अब वह चद्दर वाला सब कुछ समझ गया। उस चद्दरसे मोह भी कम हो गया। अब चद्दर उतारनेमें उसे कुछ विलम्ब तो होगा। उस ज्ञानी जीवको बाह्य वस्तुका अलग करनेमें कितनी देर है जितनी कि इस शरीरसे निकलने करने देर है। थोड़ा और समझ लो कि वह बनावट करके झूठ मूठ बोले कि यह चद्दर मेरी है ताकि मेरी चद्दर तो मिल जाय। भले ही उसको दिन में ४-६ घंटे लगें तो उसका भीतरी ज्ञान तो यह कह रहा कि यह मेरी चद्दर नहीं है और वह बनावट करके कह रहा है कि यह मेरी चद्दर है।

जब ज्ञानी पुरुषमें कोई तीव्र राग होता है तो उसको अर्थों लग जाते हैं। ज्ञान तो यह स्वयं कर चुका कि अपनी आत्मामें मैं हूं दूसरा कोई नहीं। भैया! जिनेन्द्रदेव का कितना उपकार है? हमारे लिये कितनी सरल चिकित्सा बनाई है जिसमें कोई कष्ट न हो। इस सरल चिकित्साको हम स्वयं नहीं करना चाहते तो आपरेशन जैसी? चिकित्सामें तो सोचता है रोगी कि चाहे मैं मर जाऊंगा पर आपरेशन नहीं करवाऊंगा। यहां आपरेशन जैसी चिकित्सा तो नहीं की जा रही है। हम बैठे सुनें जानें, वस्तुके स्वरूपको परखो। उसमें भूखे नहीं मरना पड़ता, उपवास नहीं रखना पड़ता। घर छोड़नेकी बात नहीं कह रहा दुकानके लिये मना नहीं कर रहा, उस गृहस्थ धर्मका पालन करो, पर वस्तुके सत्यस्वरूपको समझ लो। कितनी सरल चिकित्सा हमारे आचार्य देवकी है। आत्मा का यथार्थ मर्म जान जायेंगे तो हम उसकी सही व्यवस्था बना सकते हैं अन्यथा लक्ष्य बिना भटकते रहेंगे। नाव चलानेकी तरह, कुछ पूर्वकी ओर चलाई और उसका मन हुआ तो दक्षिणकी ओर चलाई, कभी पूर्वकी ओर चलाई तो कभी पश्चिम की ओर चला दी, फिर नाव चलाई, मगर यह पार नहीं जा सकता। इस तरह सत्य लक्ष्य हुए बिना आत्मसेवाके भाव बिना प्रेमकी रीतिमें लगो, इज्जतकी रीतिमें लगो, कुटुम्बकी इच्छाकी पूर्तिमें लगो और रूढ़ी धर्म की रीतिमें कितना भी श्रम करो तो भी परम विश्रामको नहीं पा सकते। इतने बड़े भारी रोग लगे हैं और कैसी आरामकी यह चिकित्साकी जाती है? कुछ नहीं करना, तुम इस निजके पाटलेमें बैठ जाओ अपने आपका राज जानो। ऐसा आराम व आरोग्य का उपाय, उसको भी यह श्रमी रोगी स्वयं नहीं करना चाहता और वह वैभवमें गद शरीरमें ही मनना चाहता है ओह! प्रभुका स्वभाव जैसा है वैसा ही मेरा स्वरूप है - ऐसा जाननेमें एक अन्दरमें महान् उत्साह जागता है। अपना तुच्छ वृत्तियोंमें मन नहीं लगता। कोई जान जायें कि मैं तो राजाका पुत्र हूं तो उसके अन्दर तुच्छ कल्पनायें नहीं आयेंगी। यदि हम जान जायें कि हम पूजा करते हैं अरहंत देव भगवान् की वैसे ही मैं शुद्धस्वभाव वाला हूं तो उसका इस विषय कषायमें चित्त नहीं लगेगा। जो अपने ज्ञानस्वभावकी महिमाकी ओर

उपयोग करता है वह ' हम सब, हम समझ चुके, हम जान चुके" ऐसा ख्याल नही कर सकता । उसे यह विदित हो जाता है कि अहो ज्ञानका बडा विस्तार है । जितना जानो उतना मानोगे कि मैंने कुछ नही जाना । यह तो ज्ञान वाले की वृत्ति है । अज्ञानी थोडा जान जाता है तो समझ लेता है कि मैं बहुत जानता हू । जैसे कोई तालावमे पैर डालता चलता है कि तालाव कितना गहरा है तो वह समझ जाता है कि वह बहुत गहरा है । गहराईमें चले भी नही और पैर डाले भी नही और उसकी गहराईका अनुमान करना चाहे तो कैसे कर सकता है ? और जो तालाब की गहराई को जान चुका है वह तो विना चले ही मालम कर सकता है । परमावधि सर्वावधि, मन पर्यायज्ञान जैसे विशाल ज्ञान के धारी पुरुष भी ज्ञानी नही हैं । केवलज्ञान ही एक परिपूर्ण ज्ञान है और उस ज्ञानका मेरा स्वभाव है। एक पढा लिखा जवान बी० ए० पास लडका पास होकर आया और खुशीमे वह समुद्रकी सैर करनेके लिये चला । समुद्र तट पर जाकर एक नाविकसे बोला । वह २०-२२ वर्षका लडका था, हमे समुद्रकी सैर करादो । नाविक कहता है बैठिए एक रुपया किराया है । अच्छा लो । वह बढ गया समुद्रकी सैर करने । कुछ दूर नाविक गया वहा उस नाविकसे वह बी० ए० बोलता है । क्या ? भाई तुम कुछ पढे हो ? नही साहब । अच्छा तू अ आ इ ई हिन्दी जानता है नही साहब तेरा बाप भी जानता है नही साहब । यह तो हमारी परम्पराका काम चला आ रहा है तो वह लडका बोला कुछ गम होकर कि बेवकूफ, नालायक ऐसे ही लोगोने तो भारतको गारत किया है । वह नाविक बिचारा सुनता गया जब वह नाव आधे मील पहुची और वहा ऐसी तेज भवर आई कि नाव भी डगमगाने लगी । नाविक बोला बाबूजी यह नाव नही बच सकती, यह तो डूबेगी और हम तो तैर कर निकल जायेंगे और आप कैसे निकलोगे ? लडका बोला मुझको बचाले १०० ले लो १००० ले लो, मुझे बचा लो तो नाविक कहता है कि बच नही सकते । अच्छा बताओ तुमने तैरना सीखा है या नही ? बाबू बोला—नही तो नाविक उतनी ही गालियो को फिर से दुहरा कर कहता है कि नालायक बेवकूफ ! ऐसे ही लडकोने तो भारत को गारत किया है ।

सोचो तो भैया ! अगर भारतमे सबके सब हाईस्कूल शिक्षित हो जायें तो खेती व्यापार आदिका कार्य कौन करेगा ? अगर यह किसान नही रहे जो कि अन्न पैदा करता है तो भुखमरी बढे कि नही ? तो किस ज्ञान को पूर्ण कहोगे ? अगर सबके सब जीव ज्ञानी हो जाये तो भुखमरी नही बढेगी । तो ज्ञानमे क्या गर्व करना ? केवलज्ञान मे ही सर्वज्ञान आते हैं ' मम स्वरूप है सिद्ध समान । अमित शक्ति सुख ज्ञाननिधान ।। किन्तु आप बस खोया ज्ञान । बना भिखारी निपट अजान ।।" यह मेरा स्वरूप सिर्फ भगवान्‌की तरह है, देखलो भीतरमे अपने आपके स्वरूपको यहा कुछ घर जैसा पिण्ड मिलेगा नही, यहा स्वाद मिलेगा नही, यहा गन्ध आयेगी नही, इसे छुआ जा सकता नही, बेधा जा सकता नही, जलाया जा सकता नही बहाया जा सकता नही तो एक विलक्षण जाननस्वरूपमय चैतन्यशक्ति है इसका काम जानन है । स्वसत जाननमे यह वृद्धि करता है, जानता जाने देखता जाये । यह सम्यक्‌ज्ञान ही हम और आपको सङ्कटोसे मुक्ति दिलाने वाला है । पर अज्ञानी जीव इस ज्ञानके बजाय आशाको महत्व देता है तो आशा के वश होकर हमने ज्ञान खो दिया और निरे मूर्ख निपट अज्ञानी बन गए यहा बीचमे मिलना जुलना कुछ नही । सट्टेके व्यापारसे भी सदा काम केवल एक भाव कर रहा है । जब भाव ही हम कर सकते है तो उत्कृष्ट भाव क्यो न करे ? कोई जो गन्दे भावके लिए बढे, बढकर अन्यत्र क्या कर सकता है ? जैसे बच्चे लोग कभी प्रीतिभोज का खेल खेलते है, उनके पास है तो कुछ नही, पर वे अपने साथियोको बुलाकर एक एक बडा पत्ता परस देते है कि यह

थाली परस रहे हैं और एक एक छोटासा पत्ता परस देते हैं कि यह रोटी परस रहे हैं। एक एक ककडी भी परस देते हैं कि यह चना परस रहे हैं। गरीब बच्चे तो उस पत्ते को रोटी कहकर परसते है। और बच्चे ! उसे कचौडी कहकर क्यो नही परसते ? एक छोटे ककडको परसे तो उसे बूदी कहकर क्यो नही परसते ? बड बड़े घरके बालक तो उन ककडोको केवल बूदी कहकर ही परसते हैं। ऐसे ही यहा दखो—करते कुछ नही वाहर मे। अन्तरमे ही अपने रागादि विकल्पोमें रहते हैं। हम अपने केवल ज्ञान स्वभावमात्र स्वरूपको देखेंगे तो हममे भी वही प्रभुता प्रकट हो जायेगी। यदि यह एक केवलज्ञान प्रकट हो जाये तो यह इस जीवमे फिर कोई सकट नही रहेगा। यह शुद्धविकाश जिस ज्ञानस्वभावी परमात्मतत्त्वके दर्शनके प्रसादसे प्रकट होता है उसी परमात्मस्वरूपका विवरण इस परमात्मप्रकास ग्रन्थमे किया गया है।

परमात्मप्रकाश प्रवचन प्रथम भाग समाप्त